रवीन्द्र-साहित्य : भाग २१-२२

आँखकी किरकिरी

उपन्यास

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

रवीन्द्र-साहित्य-मन्दिर
पी-१५, कलाकार पथ
कलकत्ता-७

रवीन्द्र-साहित्यका
प्रत्येक भाग
एक पृथक
पुस्तक है

रवीन्द्र-साहित्यकी
समस्त रचनाएँ
मूल बंगलासे
अनूदित हैं

इस संयुक्त भागका मूल्य
मजबूत गत्तेकी जिल्द ४॥)
नरम लिम्प-जिल्द ३॥)

प्रकाशक :
धन्यकुमार जैन और दौहित्र
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

मुद्रक :
आर्ट यूनियन प्रिन्टिंग वर्क्स लि०
८०/१५, ग्रे स्ट्रीट
कलकत्ता-६

संकेत

मेरे साहित्यकी पथ-यात्राका पूर्वापर अनुसरण करनेसे यह बात तुरत पकडाई दे जायगी कि 'आँखकी किरकिरी' उपन्यास आकस्मिक है, केवल मेरे अन्दर ही नही, उस दिनके बगला साहित्य-क्षेत्रमे भी। बाहरसे कौन-सा इशारा आया था मेरे मनमे, यह प्रश्न दुरूह है। सबसे सहज जवाब यह है कि धारावाहिक लम्बी कहानियोकी माँग मासिकपत्रोकी हमेशाकी भूख थी और उस भूखकी पूर्तिके लिए 'वङ्गदर्शन' मासिकपत्रने मेरा नाम दर्ज कर लिया था। मेरा उसमें प्रसन्न समर्थन नही था, और मनमें इस बातका काफी सकोच भी था कि किसी पूर्वतन ख्यातिका उत्तराधिकार ग्रहण करना एक सङ्कट मोल लेना है। किन्तु, मेरे मनमें उपरोध-अनुरोधका जहाँ भी कही द्वन्द्व हुआ है वहाँ प्रायः मै विजय नही पा सका हूँ, और अबकी बार भी वही हुआ।

हमने किसी जमानेमें 'वङ्गदर्शन'में बकिमचन्द्रके 'विषवृक्ष' उपन्यासका रस-सम्भोग किया है। तबका वह रस था नवीन। बादमें उस 'वङ्गदर्शन'को नवीन पर्यायमें भले ही खीच लाया जाय, किन्तु उसकी पुनरावृत्ति नही हो सकती। वस्तुत फरमाइश आई थी बाहरसे। इसके पहले मैंने कभी विशालकाय कहानीकी सृष्टिमें हाथ नही लगाया, छोटी-छोटी कहानियोकी उल्कावृष्टि जरूर की है। आखिर तय करना पडा कि अबकी बार कहानी गढनी होगी इस युगके कारखानेमें। शैतानके यहाँ 'विषवृक्ष'की खेती तब भी होती थी और अब भी होती है। हाँ, उसका क्षेत्र पृथक हो सकता है, कमसे कम कहानीके इलाकेमे। इस समयकी तसवीर बहुत स्पष्ट होती है, साज-सज्जा और अलङ्कारोसे उसे आच्छन्न कर दिया जाय तो वह धुँधली बन जायगी, उसका आधुनिक स्वभाव नष्ट हो जायगा। इसीसे कहानीके लिए जब स्नेहका हठ सामने आ खड़ा हुआ और उससे अपनी रक्षा न कर सका, तो घुसना पडा मुझे मनकी दुनियाके उस कारखानेमें जहाँ लुहारकी आग और हथौडोंकी पिटाईसे दृढ धातुकी मूर्तियाँ सजीव हो उठती है। मानव-विधाताकी इस निर्मम सृष्टि-प्रक्रियाका वर्णन इसके पहले कहानीका अवलम्बन लेकर बगला भाषामें प्रकट नही हुआ। इसके बाद तो फिर परदा उठनेपर सदर रास्तेमें क्रमशः दिखाई दिये है 'गोरा' 'घर और बाहर' और 'चतुरङ्ग'। 'नष्टनीड़' और 'सजा' आदि कहानियाँ भी इसी निर्मम साहित्यके पर्यायमें ही पड़ेंगी।

'आँखकी किरकिरी'की कहानीको भीतरसे धक्का देकर निदारुण कर डाला है माकी ईर्षाने। इस ईर्षाने महेन्द्रके उस रिपुको कुत्सित अवकाश दिया है जो सहज-स्वाभाविक अवस्थामे इस तरह नख-दन्त नही निकालता। मानो पशुशालाका द्वार खोल दिया गया हो, और उसमेसे निकल पडी हो हिंस्र घटनाएँ असयत होकर। साहित्यकी नवीन पर्यायकी पद्धति घटना-परम्पराका विवरण देना नही किन्तु विश्लेषण करके उनकी आँतोकी बातको निकाल दिखाना है। वही पद्धति दिखाई दी है 'आँखकी किरकिरी'मे।

वि० सं० १९७३ —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवाद

इसमें सन्देह नही कि किसी भी मूल-रचनाका अधिकसे अधिक रस उसी अनुवादमे मिल सकता है जिसमे मूल-रचनाकी कथनशैली, भाषाकी गतिभङ्गिमा अर्थात् पदक्षेपके छन्द-ताल और वर्णनके रस-प्रवाहकी, जहाँ तक सम्भव हो, पूर्णतः रक्षा की गई हो। इसके लिए अनुवादकको मूलकी भाषाका ज्ञान अनुवादकी भाषासे अधिक ही होना चाहिए, कम तो हरगिज नही, और मूल-लेखकके प्रति अनुवादककी पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए, और अनुवाद करते समय अनुवादकको एक क्षणके लिए भी यह नही भूलना चाहिए कि 'लेखक किस मानस-स्तरसे क्या कहना चाहता है, किस ढगसे कहना चाहता है, क्या उसका अभिप्रेत है, किसी भी वर्णनमें वह स्वय जितना निरासक्त है और उसके कथनमे जितनी शालीनता है उन सबकी मर्यादाका मुझसे उल्लघन तो नही हो रहा है।' अनुवादकका यह पवित्र कर्तव्य है, और धर्म-पालनके समान इसका पालन उससे होना ही चाहिए।

रवीन्द्रनाथकी बहुत-सी रचनाओके कितने ही अनुवाद प्रचलित हैं, और उनमें कइयोके विषयमें मेरी धारणा थी कि अच्छे होगे, किन्तु 'आँखकी किरकिरी' 'गोरा' जैसे प्रसिद्ध उपन्यासोंके अनुवाद देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई, और मन व्यथित होकर कह उठा, 'मूलके साथ इनका छन्द-ताल-सुर कहाँ मिलता है!' और उसी क्षण उसने निश्चय कर लिया कि 'आँखकी किरकिरी' और 'गोरा' आदि रचनाओके नये अनुवाद जल्दसे जल्द निकाल देने चाहिए।

कार्तिक-पूर्णिमा २००८ —धन्यकुमार जैन

आँखकी किरकिरी

१

विनोदिनीकी मा हरिमतीने महेन्द्रकी मा रजलक्ष्मीके घर जाकर धरना दे दिया। दोनो एक ही गाँवकी लड़की है और बचपनमे एकसाथ खेली है।

राजलक्ष्मीने महेन्द्रपर दबाव डालते-हुए कहा, "बेटा महेन्द्र, इस गरीबकी लड़कीका उद्धार करना ही है। सुना है, लड़की देखनेमे बडी सुन्दर है, और मेमने उसे पढाया-लिखाया है। तुमलोगोकी आजकलकी पसन्दसे उसका पूरा मेल बैठ जायगा।"

महेन्द्रने कहा, "मा, आजकलके लड़के तो मेरे सिवा और भी बहुतसे है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बेटा, यही तो तेरेमे दोष है। तेरे आगे ब्याहकी बात छेड़ना ही मुश्किल है।"

महेन्द्रने कहा, "मा, इस बातको छोडकर और भी तो बहुत-सी बाते है। ससारमे बातोकी तो कही कोई कमी नही। इसलिए मेरा यह दोष ऐसा-कोई खतरनाक नही।"

महेन्द्र बचपनसे ही पितृहीन है, और इसीलिए माके साथ उसका व्यवहार साधारण पुत्रो-जैसा नही है। महेन्द्रकी उमर लगभग बाईस सालकी हो चुकी, और अब वह एम० ए० पास करके डाक्टरी पढ रहा है, किन्तु फिर भी माके साथ उसका प्रतिदिनका बाल-हठ रूठना-मचलना और अपनी जिदपर अड़ जाना ज्यो-का-त्यो जारी है। कगारूका बच्चा जैसे मातृगर्भसे जन्म लेनेके बाद भी माके। बहिर्गर्भके थैलेमें अपनेको आवृत रखनेका अभ्यस्त बन जाता है, महेन्द्रकी भी ठीक वही दशा है। माकी सहायताके बिना उसका आहार-विहार आराम-विराम लगभग असम्भव-सा हो गया है।

अबकी बार माने जब विनोदिनीके लिए महेन्द्रपर काफी दबाव डाला, तो उससे कतराते नही बना; उसने कहा, "अच्छा, लड़कीको एक बार देख लूँ।"

और जब देखनेका दिन आया, तो बोला, "देखके क्या करना है! मुझे तो तुम्हे सुखी करनेके लिए ब्याह करना है, भले-बुरेका विचार करना ही व्यर्थ है।"

दस्तकारीका काम सिखाया था। लड़कीकी उमर बराबर बढती ही जाती थी, फिर भी उन्हे कुछ होश न था। अन्तमें, पिताकी मृत्युके बाद, उसकी विधवा मा उसके लिए लडका तलाश करते-करते हैरान है, कही कोई दिखाई ही नही देता कि जिसके हाथ लडकी सौपकर वे निश्चिन्त हो सके। एक तो रुपया-पैसेसे हाथ खाली, उसपर लडकी उमरमे बडी! अन्तमे, राजलक्ष्मीने अपनी जन्मभूमि बारासतके एक ग्राम-सम्पर्कीय भतीजेके साथ विनोदिनीका ब्याह करा दिया।

ब्याहके थोडे दिन बाद ही विनोदिनी विधवा हो गई। महेन्द्रने फीकी हँसी हँसते-हुए कहा, "मेरी तकदीर अच्छी थी जो ब्याह नही किया, नही-तो स्त्रीके विधवा होनेपर मै एक घडी भी ससारमे नही टिक सकता था!"

लगभग तीन साल बाद और-एक दिन मा-बेटोमे बात हो रही थी।

माने कहा, "बेटा, लोग तो मेरी ही निन्दा करते है।"

महेन्द्र बोला, "क्यो मा, लोगोका तुमने कौन-सा सत्यानाश किया है?"

माने कहा, "लोग कहते है, मै तेरा इस डरसे ब्याह नही कर रही हूँ कि बहू आनेपर लडका पराया हो जायगा।"

महेन्द्रने कहा, "डर तो होना ही चाहिए। तुम्हारी जगह अगर मै मा होता, तो लड़केका ब्याह हृदयसे हरगिज नही कर सकता था। लोकनिन्दाको मै खुशी-खुशी शिरोधार्य कर लेता।"

माने हँसते-हुए कहा, "लो सुनो, जरा लडकेकी बात सुनो!"

महेन्द्रने कहा, "बहू आकर तो लडकेको अपने बसमे कर ही लेती है। तब फिर इतना कष्ट उठानेवाली, इतना स्नेह करनेवाली मा न-जाने कहाँ हट जाती है! यह तुम्हे अच्छा लगे तो लगता रहे, मुझे तो अच्छा नही लगता।"

राजलक्ष्मीने मन-ही-मन पुलकित होकर अपनी हाल-ही-मे आई-हुई विधवा देवरानीको सम्बोधित करते-हुए कहा, "सुन लिया, मझली बहू! महेन्द्रकी बात तो सुनो! बहू आकर कही मासे बढ न जाय, इस डरसे बेटा ब्याह नही करना चाहता! ऐसी तीन-लोकसे-न्यारी बात सुनी है कभी?"

चाचीने महेन्द्रसे कहा, "यह बात तो, बेटा, तुम्हारी बेजा ही है। जिस समयकी जो बात हो उसीमे शोभा है। अब माका आँचल छोड़कर बहूके साथ घर-गृहस्थी

करनेका समय है, अब दुधमुँहे बच्चेकी तरह रहना थोड़े ही शोभा देता है। यह तो उलटी शरमकी बात है!"

किन्तु राजलक्ष्मीको यह बात विशेष मधुर नही मालूम हुई। और इस प्रसङ्गमे उन्होने जो-कुछ कहा वह सरल हो सकता है किन्तु मधु-लिप्त हरगिज नही। वे बोली, "मेरा लड़का अगर और-किसीके लडकेसे अपनी माको ज्यादा प्यार करता हो तो तुम्हारे लिए उसमे शरमकी कौन-सी बात है, मझली-बहू! तुम्हारे लडका होता तो लडकेका मरम समझती!"

राजलक्ष्मीने समझा कि पुत्र-सौभाग्यवतीसे पुत्रहीना ईर्षा कर रही है।

मझली-बहूने कहा, "तुम्हीने ब्याहकी बात छेडी थी, इसीसे बात उठी, नही तो मुझे बीचमे बोलनेका हक ही क्या था!"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरा लडका अगर बहू नही लाना चाहता, तो तुम्हारी छातीमें शूल क्यो चुभता है? मेरा तो ऐसे ही अच्छा है,—अब तक अगर मै लड़केको पाल-पोसकर इतना बडा कर सकी हूँ, तो आगे भी उसकी देखभाल कर सकूँगी, इसमें और-किसीकी जरूरत नही पड़ेगी।"

मझली-बहू आँसू पोछती-हुई चुपचाप वहाँसे चली गई। महेन्द्रके मनको इससे बड़ी चोट पहुँची।

कालेजसे जल्दी घर आकर वह सीधा अपनी चाचीके पास पहुँच गया।

चाचीने उससे जो-कुछ कहा था उसमे स्नेहके सिवा और कोई बात नही थी, इस बातको वह निश्चित-रूपसे जानता है, और यह भी उसे मालूम है कि उसकी चाचीके एक पितृमातृ-हीन बहनौत है, और महेन्द्रके साथ उसका ब्याह कराके यह सन्तानहीन विधवा किसी सूत्रसे अपनी बहनकी लड़कीको पास रखकर सुखी देखना चाहती है। यद्यपि ब्याह करना उसे स्वीकार नही, फिर भी चाचीकी इस भीतरी इच्छाको वह स्वाभाविक और अत्यन्त करुणाजनक समझता है।

महेन्द्र जब चाचीके कमरेमे गया तब दिन ढलनेमें बहुत ज्यादा देर नही थी। उसकी चाची अन्नपूर्णा अपने कमरेमे खिडकीकी छडोंपर सिर टेके शुष्क विमर्ष मुंह किये बैठी थीं। बगलके कमरेमें उनकी थाली ज्योकी-त्यो ढकी-हुई पड़ी थी, अब तक उन्होने खाया-पीया कुछ भी नही।

मामूली-सी कोई बात होते ही महेन्द्रकी आँखोमे तुरत आँसू भर आते हैं। चाचीको देखकर उसकी आँखे भर आईं। उसने उनके पास जाकर स्निग्धस्वरमें पुकारा, "चाची!"

अन्नपूर्णाने हँसनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "आ महेन्द्र, बैठ।"

महेन्द्रने कहा, "बडी भूख लगी है, चाची, तुम्हारा प्रसाद खाना चाहता हूँ।"

अन्नपूर्णा महेन्द्रका कौशल समझ गईं, और उमडते-हुए आँसुओको किसी कदर रोककर उन्होने खुद खाया और महेन्द्रको भी खिला दिया।

महेन्द्रका हृदय उस समय करुणासे भीगा-हुआ था। चाचीको सान्त्वना देनेके लिए भोजन करनेके बाद सहसा वह मनकी तरङ्गमें कह बैठा, "चाची, तुम्हारी वो जो एक बहनौत थी न, जिसका तुमने जिकर किया था, उसे एक बार दिखाओगी नही मुझे?" और, बात मुँहसे निकल जानेके बाद ही वह डर गया।

अन्नपूर्णाने हँसते-हुए कहा, "अब ब्याह करनेको मन चला है क्या तेरा?"

महेन्द्रने तुरत जवाब दिया, "नही, अपने लिए नही, चाची, मैंने बिहारीको राजी कर लिया है। तुम लडकी देखनेका कोई दिन तय करा दो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "आहा, उसके ऐसे भाग्य कहाँ! बिहारी जैसा वर उसके भाग्यमें कहाँ बदा है!"

चाचीके कमरेमेंसे निकलते ही दरवाजेके बाहर मासे भेंट हो गई महेन्द्रकी।

राजलक्ष्मीने पूछा, "क्यो महेन, अब तक तुमलोगोमे क्या सलाह हो रही थी?"

महेन्द्रने कहा, "सलाह कुछ भी नही, पान लेने आया था।"

माने कहा, "तेरे पान तो मेरे कमरेमे लगे रखे है।"

महेन्द्र कुछ उत्तर न देकर चला गया।

राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णाके कमरेमे जाकर उनकी रोनेसे फूली-हुई आँखे देखते ही बहुत-सी बातोकी कल्पना कर ली। और चटसे फुसकारती-हुई बोल उठीं, "कहिये, मझली-देवीजी, लडकेसे सब भिडा चुकी, या कुछ बाकी है?"

इतना कहकर राजलक्ष्मी उत्तरकी प्रतीक्षा किये बगैर ही बड़ी तेजीसे वहाँसे चल दी।

२

'लड़की देखने जाने'की बात महेन्द्र तो लगभग भूल ही गया था, किन्तु अन्नपूर्णा नही भूली। उन्होने श्यामबाजार लड़कीके अभिभावक ताऊको चिट्ठी लिख दी, और उसमे उन्होने 'लड़की देखने'का दिन भी तय कर दिया।

महेन्द्रने जब सुना कि चाचीने 'लडकी देखने जाने'का दिन भी तय कर दिया है तब उसने चाचीसे जाकर कहा, "इतनी जल्दी क्यो कर डाली, चाची? मैंने तो अभी बिहारीसे कहा भी नही।"

अन्नपूर्णाने कहा, "यह क्या बात, महेन्द्र! यह कैसे हो सकता है! अब अगर देखने नही गये, तो वे क्या समझेंगे अपने मनमे?"

महेन्द्रने बिहारीको बुलाकर उससे सब बात कह दी। फिर बोला, "चलो तो सही, पसन्द नही आई तो कोई जबरदस्ती तो लाद नही देगा।"

बिहारीने कहा, "सो मै नही कह सकता। चाचीकी बहनौतको देखनेके बाद 'पसन्द नही' कहना मेरे मुँहसे नही निकलनेका।"

महेन्द्र बोला, "यह तो और भी अच्छी बात है।"

बिहारीने कहा, "किन्तु यह तुमसे बडा बेजा काम हो गया, महेन्द्र-भइया! अपनेको हलका रखकर दूसरेके कन्धेपर ऐसा बोझा लादना तुम्हारे लिए उचित नही हुआ। अब चाचीके मनको चोट पहुँचाना मेरे लिए अत्यन्त कठिन होगा।"

महेन्द्र जरा लज्जित और रुष्ट होकर बोला, "तो क्या करना चाहते हो?"

बिहारीने कहा, "जब कि मेरे नामसे तुम उन्हे आशा दे चुके हो, तो मुझे ब्याह करना ही है। 'देखने जाने'का पाखण्ड करना कोई मानी नही रखता।"

बिहारी अन्नपूर्णाकी देवीके समान भक्ति करता है।

अन्तमे अन्नपूर्णाने खुद बिहारीको बुलाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है, बेटा! लड़की बिना देखे ब्याह करोगे,—नही, यह हरगिज नही होगा। लडकी पसन्द न आई तो मै तुम्हे हरगिज ब्याह न करने दूँगी, मेरा यह प्रण रहा।"

निर्धारित दिन भी आ गया। महेन्द्रने कालेजसे लौटकर मासे कहा, "मा, मेरा वो रेशमी कोट और ढाकेकी धोती तो निकाल दो।"

माने कहा, "क्यो, कहाँ जाना है?"

महेन्द्रने कहा, "जरूरत है, तुम निकाल दो न,—पीछे सब बता दूँगा।"

महेन्द्रसे जरा-कुछ सजधज किये बिना न रहा गया। दूसरेके लिए होनेपर भी 'लडकी देखने'के प्रसङ्ग-मात्रसे यौवन-धर्म अपने-आप बालोको जरा सँवार लेता है और दुपट्टेमे जरा सुगन्ध भी छिडक लेता है।

दोनो मित्र लडकी देखने चल दिये।

लडकीके ताऊ श्यामबाजार रहते हैं, नाम है अनुकूलचन्द्र। खाते-पीते खुश है; और अपनी कमाईसे उन्होने कलकत्तेमे बगीचा-समेत तिमजिला मकान भी बनवा लिया है, जो मुहल्लेमे अपना सिर ऊँचा किये शानसे खडा है।

गरीब भाईकी मृत्युके बाद पितृमातृ-हीन भतीजीको वे अपने घर ले आये है। लडकीकी मौसी अन्नपूर्णाने कहा था, "मेरे पास ही रहने दो।" इसमे खर्चमें कमी जरूर होती, किन्तु साथ ही इज्जतमे जो कमी पडती! इसलिए वे राजी नही हुए। यहाँ तक कि मिलने-जुलनेके लिए भी लडकीको वे मौसीके घर नही जाने देते। अपनी मान-मर्यादाके विषयमे वे इतने कडे है।

लडकी जब सयानी हुई तो 'विवाह-भावना' (ब्याहकी चिन्ता) का समय आ गया, किन्तु कठिनाई यह थी कि आजकलके जमानेमे कन्याके ब्याहके विषयमें 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'का नियम लागू नही होता। 'भावना'के साथ खर्च भी चाहिए। दहेजकी बात छिड़ते ही अनुकूल प्रतिकूल हो उठते है, कहते है, "मेरे अपनी लड़कियाँ भी तो है, मै अकेला कहाँ तक क्या कर सकता हूँ!" इस तरह दिन बीतते जा रहे थे। इतनेमे खूब सज-धजकर कपडोमे सुगन्ध लगाकर रङ्गभूमिमे मित्रके साथ प्रवेश किया महेन्द्रने।

चैतका महीना है, दिनान्तमे सूर्य अस्त होना चाहता है। दूसरी मजिलका खुला-हुआ बरण्डा है, चित्र-विचित्र चिकनी चीनी टाइलोका फर्श है, और उसके एक किनारे दोनो अभ्यागतोके लिए चाँदीकी तश्तरियोमे फल और मिठाइयाँ सजी-हुई है और बरफ-जलसे भरे चाँदीके गिलासोपर हिमकण शोभा पा रहे है। महेन्द्र बिहारीके सग सङ्कोचके साथ जलपान करने बैठा। नीचे बगीचेमे माली उस समय झारी लिये-हुए पेड़-पौधोको पानी दे रहा था, और उस भीगी-हुई मिट्टीकी सौंधी सुगन्धको ऊपर तक बहाये ला रही थी चैतकी दखिनी हवा, जो महेन्द्रकी

सफेद चुनी-हुई चादरको चचल किये दे रही थी। आसपासके दरवाजो और खिडकियोकी ओटमेंसे थोडी-बहुत दबी हँसी और कानाफूसी, और कभी-कभी गहनोकी हलकी खनक भी सुनाई पड रही थी।

जलपान हो चुकनेके बाद अनुकूल बाबूने भीतरकी ओर देखते-हुए कहा, "चुन्नी, जरा पान तो ले आ।"

कुछ देर बाद बडे सकोचके साथ पीछेका एक दरवाजा खुल गया, और उसमेंसे एक बालिका न-जाने कहाँसे अपने सर्वाङ्गमे दुनिया-भरकी लज्जा लपेटकर हाथमे पानदान लिये अनुकूल-बाबूके पास आ खडी हुई। अनुकूलचन्द्रने कहा, "इतनी शरमाती क्यो हो, बेटी! पानदान रख दो इनलोगोके सामने।"

बालिकाने झुककर काँपते-हुए हाथसे पानदान अतिथियोके आसनके पास जमीनपर रख दिया। बरामदेके पश्चिमकी ओरसे सूर्यास्तकी सुनहली आभाने आकर बालिकाके लज्जित मुखमण्डलको और भी आरक्त कर दिया। और ठीक इसी मौकेसे महेन्द्रने उस काँपती-हुई बालिकाकी करुण मुखच्छविको एक बार अच्छी तरह देख लिया।

बालिका उसी समय चली जा रही थी, किन्तु अनुकूल-बाबूने उसे टोकते-हुए कहा, "जरा ठहर जा, चुन्नी! बिहारी-बाबू, यह मेरे छोटे भाई अपूर्वकी लडकी है। बाप बेचारा असमयमे चल बसा। अब मेरे सिवा ससारमें इसका कोई भी नही।" इतना कहकर उन्होने एक गहरी साँस ली और चुप हो गये।

महेन्द्रके हृदयपर दयाने आघात किया। अनाथाकी ओर फिर उसने एक बार आँख उठाकर सार्थ-दृष्टिसे देख लिया।

लडकीकी उमर कोई भी साफ-साफ नही बताता था। आत्मीय-स्वजन कहते, "यही समझो, बारह-तेरह सालकी होगी।" अर्थात् चौदह-पन्द्रह वर्ष होनेकी ही अधिक सम्भावना है। किन्तु अनुग्रह-पालित होनेसे एक प्रकारके कुण्ठित भीरु-भावने उसके नवयौवनको सयत और सवृत कर रखा था।

आर्द्र-चित्तसे महेन्द्रने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

अनुकूलचन्द्रने बालिकाको उत्साहित करते-हुए कहा, "बता दो, बेटी, अपना नाम बता दो।"

बालिकाने आदेश-पालनके अभ्यस्त-स्वरमे कहा, "मेरा नाम आशालता।"

आशा! महेन्द्रको ऐसा लगा कि नाम बहुत ही करुण और कण्ठ अत्यन्त कोमल है। 'अनाथा आशा!'

दोनो मित्र नीचे उतरकर गाडीपर सवार हुए, और गाड़ी चल दी।

महेन्द्र बोला, "बिहारी, इस लडकीको तुम मत छोडना।"

बिहारीने उसकी बातका स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "लडकीको देखकर मुझे उसकी मौसीका खयाल आ जाता है। मै समझता हूँ, यह भी उन्ही-जैसी सती-लक्ष्मी होगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारे कन्धेपर जो बोझ लादा जा रहा है, शायद अब तुम्हें उसका भार उतना असह्य नही मालूम होगा!"

बिहारीने कहा, "नही, मालूम होता है सह सकूँगा।"

महेन्द्रने कहा, "जरूरत क्या है इतना कष्ट उठानेकी! न-हो-तो तुम्हारा बोझ मै ही अपने कन्धेपर लिये लेता हूँ। क्या कहते हो?"

बिहारीने गम्भीरताके साथ एक बार महेन्द्रके मुँहकी ओर देखा और फिर कहा, "महेन्द्र-भइया, सच कह रहे हो? अब भी ठीक-ठीक बता दो। तुम ब्याह करो तो चाची बहुत ज्यादा खुश होगी,—और फिर तो लडकी हमेशा उनके पास ही बनी रहेगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम पागल हुए हो! ऐसा होता तो बहुत पहले ही हो जाता।"

बिहारीने ज्यादा आपत्ति नही की, और वह अपने घर चला गया।

महेन्द्र भी सीधा रास्ता छोडकर इधर-उधर घूमता-हुआ बहुत देर बाद धीरे-धीरे घर पहुँचा।

महेन्द्रकी मा उस समय पूडी उतारनेमे व्यस्त थी। और चाची अब तक श्यामबाजारसे घर नही लौटी थी।

महेन्द्र अकेला निर्जन छतपर जाकर चटाई बिछाकर पड रहा। कलकत्तेकी गगनभेदी अट्टालिकाओके माथेपर उस समय शुक्ला-सप्तमीका अर्धचन्द्र चुपचाप अपना अपूर्व मायामन्त्र विकीर्ण कर रहा था।

माने आकर जब खबर दी कि खाना तैयार है, तो उसने कहा, "यहाँ बड़ा अच्छा लग रहा है, मा, उठनेको जी नही चाहता।"

माने कहा, "तो यही ले आऊँ न ?"

महेन्द्रने कहा, "अब आज मै खाऊँगा नही,—मै खा आया हूँ।"

माने पूछा, "कहा खा आया ?"

महेन्द्रने कहा, "बहुत बात है, पीछे बताऊँगा।"

पुत्रके इस अभूतपूर्व व्यवहारपर अभिमानिनी माताने कुछ भी नही कहा, और वे वापस जानेको उद्यत हो गई। तब महेन्द्रने तुरत अपनेको सयत करके अनुतापके साथ कहा, "मा, मेरी थाली यही ले आओ।"

माने कहा, "भूख न हो तो क्या जरूरत है!"

इस बातपर मा-बेटोमे कुछ देर तक रूठने-मनानेका क्रम चलता रहा, और अन्तमें महेन्द्रको दुबारा खाने बैठना पडा।

३

महेन्द्रको रात-भर ठीकसे नीद नही आई। वह सवेरे ही उठकर सीधा बिहारीके घर पहुँचा। और बोला, "भाई बिहारी, रात-भर मैं अपने कर्तव्यके विषयमें विचार करता रहा। चाचीकी भीतरी यह इच्छा है कि मैं ही उनकी बहनौतसे ब्याह करूँ—"

बिहारीने कहा, "इस विषयमे तो सहसा किसी नये दृष्टिकोणसे विचार करनेकी जरूरत नही थी। वे तो अपनी इच्छाको नानाप्रकारसे व्यक्त कर चुकी है।"

महेन्द्रने कहा, "यही तो बात है। मुझे लगता है कि आशासे मैंने अगर ब्याह नही किया तो चाचीके मनमें जिन्दगी-भरके लिए एक खेद रह जायगा।"

बिहारीने कहा, "सो तो है ही।"

महेन्द्रने कहा, "मेरी समझसे, मेरे लिए यह बडे अन्यायकी बात होगी।"

बिहारीने जरा-कुछ अस्वाभाविक उत्साहके साथ कहा, "बडी अच्छी बात है, यह तो बडी अच्छी बात है, तुम राजी हो जाओ तो फिर कहना ही क्या! पर ऐसी कर्तव्य-बुद्धि कल ही अगर तुम्हारे मगजमे आ जाती तो बहुत अच्छा होता न!"

महेन्द्रने कहा, "एक दिन देरसे आई तो इसमे क्या नुकसान हो गया?"

ज्यो ही महेन्द्रने ब्याहके विषयमे अपनी लगाम ढीली की कि फिर उसके लिए

धैर्य रखना दु साध्य हो उठा। वह सोचने लगा कि 'अब और ज्यादा बातचीत न होकर जल्दीसे काम पूरा हो जाय तो अच्छा।'

महेन्द्रने मासे जाकर कहा, "अच्छा, मा, अब मै तुम्हारी बात माने लेता हूँ, मुझे ब्याह करना मंजूर है।"

मा तुरत रहस्यको समझ गई ; और मन-ही-मन बोली, 'अच्छा, अब समझी, उस दिन मझली-बहू क्यो अचानक अपनी बहनौतको देखने गई थी और महेन्द्र क्यों सज-धजके श्यामबाजार गया था!'

और फिर यह सोचकर कि उनके बारम्बार अनुरोध करनेपर भी लड़केने उनकी बात नही मानी और अन्नपूर्णा अपने षडयन्त्रमे सहज ही मे सफल हो गई, वे विश्व-विधानपर अत्यन्त असन्तुष्ट हो उठी। उन्होने कहा, "अच्छी बात है, अब मै तेरे लिए बहुत अच्छी लडकी तलाश कराती हूँ।"

महेन्द्रने आशाका जिक्र करते-हुए कहा, "लडकी तो वो भी बडी अच्छी है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उससे ब्याह नही हो सकता, बेटा, मै तुझसे पहलेसे कहे देती हूँ!"

महेन्द्रने यथेष्ट सयत भाषामे कहा, "क्यों मा, वो लडकी तो बुरी नही है!"

राजलक्ष्मीने कहा, "उसके तीन-कुलमे कोई भी नही है, उसके साथ ब्याह करनेसे हमें रिश्तेदारीका क्या सुख मिलेगा?"

महेन्द्रने कहा, "रिश्तेदारीका सुख न होनेपर भी मै दु खित नही हूँगा। किन्तु, मा, लडकी मुझे बहुत पसन्द आई है।"

लडकेकी जिद देखकर राजलक्ष्मीका चित्त और भी ज्यादा कठोर हो उठा। उन्होने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "क्यो, देवीजी, बिना मा-बापकी कुलच्छनी लडकीसे बेटेका ब्याह कराके तुम मेरे लडकेको मुझसे छीन लेना चाहती हो? इतनी बडी शैतानी!"

अन्नपूर्णा रो पडी, बोली, "महेन्द्रके साथ ब्याहकी तो कोई बात ही नही हुई, उसने अपनी तबीयतसे तुमसे क्या कहा है, सो भी मुझे नही मालूम।"

किन्तु महेन्द्रकी माने इस बातपर कतई विश्वास नही किया। तब फिर अन्नपूर्णाने बिहारीको बुलवाकर उससे कहा, "बेटा, तुम्हारे लिए ही तो सब बात तय हुई थी, फिर क्यो तुमने सब उलटपुलट दिया?" कहते-कहते उनकी आँखें

भर आईं। बोली, "नही, बेटा, फिर तुम्हे राजी होना पडेगा। तुमने उद्धार नही किया तो मेरे लिए बडी लज्जाकी बात होगी। लडकी बडी सुशील है, तुम्हारे योग्य है।"

बिहारीने कहा, "चाचीजी, यह मै जानता हूँ, मुझे कुछ कहनेकी जरूरत नही। जो तुम्हारी बहनौत हो वह कही अयोग्य हो सकती है! भला उसके लिए मै नाही कर सकता हूँ! लेकिन महेन्द्र –"

अन्नपूर्णाने कहा, "नही बेटा, महेन्द्रसे उसका ब्याह किसी भी तरह नही होनेका। मै तुमसे सच कहती हूँ, तुम्हारे साथ उसका ब्याह होनेसे ही मै सबसे ज्यादा निश्चिन्त हो सकूँगी। महेन्द्रके साथ ब्याह हो, यह मै नही चाहती।"

बिहारीने कहा, "चाची, तुम्हारी ही अगर इच्छा नही, तो फिर, मुझे क्या आपत्ति है!"

इसके बाद बिहारी सीधा राजलक्ष्मीके पास पहुँचा, और बोला, "मा, चाचीकी बहनौतके साथ मेरी सगाई पक्की हो गई है। यहाँ मेरे कुटुम्बकी कोई स्त्री तो है नही, इसलिए हया-शरम सब छोडकर मुझे खुद ही खबर देने आना पडा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "कहता क्या है, बिहारी! आज मै बहुत खुश हुई तेरी बात सुनकर। बडी सुशील लडकी है वह, तेरे ही लायक है। किसीके कहने-सुननेमें आकर सगाई छोड न देना।"

बिहारी बोला, "मै क्यो छोडने लगा! महेन-भइयाने खुद पसन्द करके मेरी सगाई पक्की की है।"

इन-सब बाधा-विघ्नोसे महेन्द्र दूना उत्तेजित हो उठा। वह मा और चाचीसे रूठकर एक दीनहीन छात्रावासमे जाकर रहने लगा।

राजलक्ष्मी रोती-हुई अन्नपूर्णाके कमरेमे पहुँची। बोली, "मझली-बहू, मेरे लडकेने तो उदासीन होकर घर छोड दिया मालूम होता है, उसे बचाओ।"

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, थोडा धीरज रक्खो, दो-चार दिन बाद अपने-आप ही गुस्सा जाता रहेगा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम उसे जानती नही। उसकी इच्छाके अनुसार कोई काम न हो तो, वो जो जीमें आता है कर डालता है। तुम्हारी बहनौतके साथ जैसे भी बने उसका –"

अन्नपूर्णा बीच ही मे बोल उठी, "सो कैसे हो सकता है, जीजी ! बिहारीके साथ बात तय जो हो चुकी है !"

राजलक्ष्मीने कहा, "इससे क्या हुआ ! फिरसे तय सही।" और फिर, तुरत उन्होने बिहारीको बुलवाया, और उससे कहा, "बेटा, तुम्हारे लिए और भी अच्छी लडकी तलाश करवाती हूँ, तुम इस लडकीको छोड दो, यह तुम्हारे लायक नही।"

बिहारीने कहा, "नही, मा, ऐसा नही हो सकता। बात बिलकुल पक्की जो हो चुकी है।"

तब फिर राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "तुम्हे मेरे कण्ठकी सौगन्द है, मझली-बहू, मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ,—तुम बिहारीको समझा दो तो सब ठीक हो जायगा।"

अन्नपूर्णाने बिहारीसे कहा, "बेटा बिहारी, मेरे मुँहसे बात निकलना नही चाहती, पर, क्या करूँ मै ! आशा तुम्हारे हाथ पडती तो मै बिलकुल निश्चिन्त हो जाती, पर, तुम्हे तो सब मालूम है—"

बिहारीने कहा, "मै समझ गया, चाची ! तुम जैसी आज्ञा दोगी वही होगा। पर, अब फिर कभी तुम मुझसे और-किसीके साथ ब्याह करनेका अनुरोध न करना।" इतना कहकर बिहारी चला गया। अन्नपूर्णाकी आँखोमे आँसू भर आये, किन्तु महेन्द्रके अनिष्टकी आशङ्कासे उन्होने तुरत आँखे पोछ डाली। उन्होने बार-बार अपने मनको समझाया कि 'जो-कुछ हुआ सो अच्छा ही हुआ।'

इस तरह, राजलक्ष्मी अन्नपूर्णा और महेन्द्र इन तीनोमे निष्ठुर निगूढ नीरव घात-प्रतिघात चलते-चलते ब्याहका दिन भी आ गया। बत्तियाँ उज्ज्वल हो उठी, शहनाई मधुर होकर बजने लगी, और मिष्टान्नमे मिष्टताकी जरा भी कमी नही रही।

आशाने सुसज्जित सुन्दर देह और शङ्कित-लज्जित-मुग्ध चेहरेसे अपने नये घरमे प्रवेश किया। उसके इस नवीन नीडमे कही कोई काँटा भी हो सकता है, इस बातका उसका कम्पित-कोमल हृदय कल्पना भी नही कर सकता था। बल्कि वह तो इस बातको सोचकर मारे आनन्दके फूली नही समा रही कि आज वह ससारमे अपनी एकमात्र मातृस्थानीया अन्नपूर्णाके पास आ रही है। और इस आश्वाससे आज उसके मनका सारा भय-सशय दूर हो गया।

ब्याहके कुछ दिन बाद राजलक्ष्मीने एक दिन महेन्द्रको बुलाकर कहा, "सुन, अब बहूको कुछ दिनके लिए उसके ताऊके घर भेज दे तो अच्छा है।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो, मा, क्या बात है?"

माने कहा, "अब परीक्षाके दिन आ रहे है। पढाईमे बाधा पड सकती है।"

महेन्द्रने कहा, "मै क्या बच्चा हूँ, मा! अपना भला-बुरा नफा-नुकसान मै खुद नही समझ सकता?"

माने कहा, "सब-कुछ ठीक है,—पर, एक ही सालकी तो बात है, बेटा!"

महेन्द्रने कहा, "उसके मा-बाप कोई होते तो उनके पास भेजनेमे मुझे कोई आपत्ति नही थी,—पर, ताऊके घर मै उसे नही रखना चाहता।"

राजलक्ष्मी मन-ही-मन कह उठी, 'अरे बाप रे! अभीसे यह हाल! खुद ही घरका मालिक बन बैठा, बहूके बारेमे सास कोई चीज ही नही! कल तो ब्याह हुआ और आज इतना दरद! ब्याह तो किसी दिन हमारा भी हुआ था, पर तब ऐसी बेहयाई नही थी।'

माको गम्भीर देखकर महेन्द्रने जोरके साथ कहा, "तुम कुछ चिन्ता मत करो, मा, परीक्षामे जरा भी बाधा नही पडेगी।"

४

सहसा राजलक्ष्मीने अपरिमित उत्साहसे बहूको घर-गृहस्थीका काम-काज सिखाना शुरू कर दिया। भण्डार-घर रसोई-घर और पूजा-घरका काम करते-करते आशाका दिन पूरा हो जाता, और रातको सासके साथ एक बिस्तरपर सोना पडता। इस तरह राजलक्ष्मी स्वय बहूकी आत्मीय-विच्छेदकी क्षति-पूर्ति करने लगी।

और अन्नपूर्णा खूब सोच-विचारकर बहनौतसे दूर-ही-दूर रहने लगी।

जब कोई प्रबल अभिभावक ईखका सारा रस खूब चबा-चबाकर चूसता रहता है तब हताश्वास लुब्ध बालकका क्षोभ जैसे उत्तरोत्तर असह्य-रूपसे बढ़ने लगता है, ठीक वैसी ही हालत हो गई महेन्द्रकी। स्वय उसकी आँखोके सामने उसकी नवयौवना नववधूका सम्पूर्ण मिष्ट रस केवल घर-गृहस्थीके निष्पेषण-यन्त्रमे निचुडता रहे, भला यह भी कभी सहा जा सकता है!

महेन्द्रने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "चाची, मा बहूको जिस तरह काम-धन्धेके कोल्हूमे पेर रही है,—मुझसे तो देखा नही जाता।"

अन्नपूर्णा जानती थी कि राजलक्ष्मी बहुत ज्यादती कर रही है, किन्तु फिर भी उन्होने कहा, "क्यो, महेन्द्र, इसमे क्या बात है, बहूको घरका काम-काज सिखाना तो अच्छा ही है। आजकलकी बहू-बेटियोका उपन्यास पढना, कारपेट बुनना, शौक-ही-शौकमे समय बरबाद करना क्या अच्छी बात है?"

महेन्द्र उत्तेजित होकर बोला, "आजकलकी लडकियाँ तो आजकलकी-सी ही होगी, चाहे वह अच्छी बात हो या बुरी। मेरी स्त्री अगर मेरे ही समान उपन्यास पढकर रस ले सके, तो मै तो उसमे कोई बुराई या हँसीकी बात नही देखता।"

अन्नपूर्णाके कमरेमे पुत्रका कण्ठस्वर सुनते ही राजलक्ष्मी हाथका सब काम छोड-छाडकर दौडी चली आईं, और तीव्र कण्ठसे बोली, "क्या बात है? तुम दोनोमे क्या सलाह हो रही है?"

महेन्द्र उत्तेजित तो था ही, बोल उठा, "सलाह कुछ नही हो रही। सुनो, मा, बहूको मै दासीकी तरह दिन-रात काम-धन्धेमे झोकना नही चाहता।"

माने अपनी उद्दीप्त ज्वालाका दमन करते-हुए अत्यन्त तीक्ष्ण-धीर कण्ठसे कहा, "तो 'उनका' क्या करना चाहते हो?"

महेन्द्रने कहा, "मै उसे पढना-लिखना सिखाऊँगा।"

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर तेजीसे चली गईं, और क्षण-भर बाद ही बहूका हाथ पकडकर उसे महेन्द्रके सामने स्थापित करती-हुई बोली, "यह लो अपनी धरोहर, सिखाओ जितना सिखाना हो पढना-लिखना!"

इतना कहकर वे अन्नपूर्णाकी तरफ लपकी और गलेमे आँचल डालकर हाथ जोडकर बोली, "माफ करना, मझली-मालिकिनजी, मुझे माफ करना। तुम्हारी बहनौतकी इतनी मान-मर्यादा है, मै समझ नही पाई थी! 'इनके' कोमल हाथोमें मैंने हल्दीके दाग लगा दिये है, अब लो, तुम इन्हे धो-पोछकर मेम-सा'ब बनाके महेन्द्रके हाथ सौप दो, ताकि ये कुरसी-टेबिलपर बैठकर पढाई-लिखाई कर सके, दासीवृत्ति मै ही करूँगी।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी सीधी अपने कमरेमे चली गईं, और जोरसे किवाड़ बन्द करके भीतरसे हुडका लगा लिया।

अन्नपूर्णा मारे क्षोभके जहाँ-की-तहाँ धरतीपर बैठ गईं, और आशा इस आकस्मिक 'गार्हस्थिक क्रान्ति' का तात्पर्य न समझकर लज्जा-भय-दुखसे काँप उठी, उसका चेहरा सफेद-फक पड गया। महेन्द्र मारे गुस्सेके मन-ही-मन कहने लगा, 'बस, अब नही, अपनी स्त्रीका भार अपने हाथमे लेना ही पडेगा, नही-तो अन्याय होगा।'

इच्छाके साथ कर्तव्य-बुद्धिका मेल होते ही हवाके साथ आग लग गई। फिर कहाँ गया कॉलेज, कहाँ रही परीक्षा, कहाँ गई मित्रता और कहाँ रहा सामाजिक बन्धन! स्त्रीकी उन्नति करना ही महेन्द्रका एकमात्र लक्ष्य बन गया। और उसी क्षण उसने दृढ मुष्टिसे स्त्रीका पाणि-ग्रहण किया और उसे अपने कमरेमे ले गया। काम-काज या लोक-लाजकी उसने बिलकुल ही परवाह नही की।

अभिमानिनी राजलक्ष्मीने मन-ही-मन कहा, 'अब तो महेन्द्र बहूको लेकर मेरे दरवाजेपर सिर पटकता रहे, तो भी मैं उसकी तरफ नही देखनेकी। देखूँ वो अपनी माके बिना बहूको लेकर कैसे जिन्दगी बिताता है!'

दिन बीत गया, रात भी बीत गई, दूसरा दिन आया, तीसरा दिन आया, किन्तु राजलक्ष्मीके दरवाजेके आगे किसी अनुतप्तकी पदध्वनि नही सुनाई दी।

राजलक्ष्मीने तय किया कि महेन्द्र क्षमा माँगने आयेगा तो वे उसे क्षमा कर देंगी, नही-तो बेचारेको बडी गहरी चोट पहुँचेगी।

क्षमाकी प्रार्थना भी नही आई। तब फिर राजलक्ष्मीने तय किया कि वे खुद ही जाकर बेटेको क्षमा कर आयेगी। लडका रूठ गया है तो क्या माको भी रूठे रहना चाहिए!

दूसरी मजिलके ऊपर छतके एक कोनेमे महेन्द्रका सोनेका कमरा है, और वही उसका पढनेका कमरा है। इधर कई दिनोसे माने उसके कपडे-लत्ते नही सम्हाले, और न घर-द्वारकी सफाई ही की। कई दिनसे मातृस्नेहके चिराभ्यस्त कर्तव्य पालन न कर सकनेसे उनका हृदय दुग्ध-भारातुर स्तनके समान भीतर ही भीतर व्यथित और पीडित हो उठा था। उस दिन दोपहरको वे सोचने लगी, 'अब तो महेन्द्र कालेज चला गया होगा, चलो इस मौकेसे उसका कमरा ठीक कर आऊँ। कालेजसे वापस आते ही वह तुरत समझ जायगा कि कमरेमे आज माका हाथ पडा है।'

राजलक्ष्मी जीना तय करके ऊपर पहुँची। महेन्द्रके कमरेका एक किवाड खुला-हुआ था,—उसके सामने पहुँचते ही मानो सहसा उनके कॉटा चुभ गया, वे ठिठककर खडी हो गईं। देखा कि फर्शके बिस्तरपर महेन्द्र सो रहा है और दरवाजेकी ओर पीठ किये-हुए बहू धीरे-धीरे उसके तलवेपर हाथ फेर रही है! दोपहरके प्रखर प्रकाशमे खुले कमरेमे दाम्पत्य-लीलाका यह अभिनय देखकर राजलक्ष्मी मारे लज्जा और धिक्कारके सकुचित होकर चुपचाप नीचे उतर आईं।

५

कुछ दिन पानी न पडनेसे खेतकी फसल जैसे पीली हो जाती है और फिर पानी पडते ही बिना देर किये जल्दी-जल्दी बढकर वह दीर्घकालकी उदासीनता दूर कर देती है और दुर्बल झुकावको त्यागकर बिना किसी सङ्कोचके निःशङ्क होकर अपने अधिकारको उन्नत और उज्ज्वल कर देती है, आशाका भी ठीक वैसा ही हाल हुआ। जहॉ उसका रक्तका निकट-सम्बन्ध था वहॉ उसने कभी आत्मीयताका दावा नही किया। किन्तु आज पराये घर आकर उसे जब बिना प्रार्थनाके निकटतम सम्बन्ध और निःसन्दिग्ध अधिकार प्राप्त हुआ, और पतिने जब उस अयत्न-प्रतिपालिता आनाथाके मस्तकपर अपने हाथसे लक्ष्मीका मुकुट पहना दिया तब उसने अपना गौरव-पद ग्रहण करनेमे क्षण-भरकी भी देर नही की; उसने नववधू-सुलभ लज्जा-भय सब दूर करके सौभाग्यवती स्त्रीकी महिमासे मण्डित होकर पतिके चरणोमें बिना किसी सङ्कोचके क्षणमे अपने सिहासनपर अधिकार जमा लिया।

राजलक्ष्मी उस दिन दोपहरको उस सिंहासनपर इस नवागता 'पराये-घरकी लडकी'को चिराभ्यस्तवत् स्पर्धाके साथ बैठी देखकर दुःसह विस्मयसे नीचे उतर आईं, और फिर अपने चित्त-दाहसे अन्नपूर्णाको दग्ध करने पहुँची। बोली, "अजी ओ देवीजी, जरा देखो जाकर, तुम्हारी नवाबजादी नवाबके घरसे कैसा शऊर-कायदा सीखकर आई है! आज अगर घरके बडे-बूढे कोई होते, तो—"

अन्नपूर्णाने भय-विह्वल होकर कहा, "जीजी, बहू तुम्हारी है, तुम उसे चाहे जैसे रखो, डाटो-डपटो, सिखाओ-गुनाओ, तुम्हे पूरा हक है। उसके बारेमे मुझसे क्यो कहा करती हो?"

राजलक्ष्मी धनुष्टङ्कारकी तरह बज उठी , बोली, "मेरी बहू ! तुम-जैसी मन्त्रानीके रहते मुझे कौन पूछता है !"

इसपर अन्नपूर्णा बडी तेजीसे उठकर अपने पैरोकी आहटसे जीनेको कँपाती हुई सीधी ऊपर पहुँची महेन्द्रके कमरेमे, और जाते ही आशासे बोली, "तू इस तरह मेरा सिर नीचा करायेगी कलमुँही ! लज्जा-शर्म नही, समय नही, असमय नही, बूढी सासके ऊपर सारे घरका काम-काज छोडकर तू यहाँ आराम कर रही है ! मेरी फूटी तकदीर कि मै तुझे इस घरमे लाई।" कहते-कहते उनकी आँखोसे झरझर आँसू झरने लगे। और, आशा भी सिर झुकाये दोनो हाथोसे साडीके पल्लेको नोचती-हुई चुपचाप दीवारके सहारे खडी-खडी रोने लगी।

महेन्द्रने कहा, "चाची, तुम बहूको क्यो झूठमूठको डाट रही हो ! मैंने ही तो इसे रोक रखा है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो यह क्या तुमने कोई अच्छा काम किया है, बेटा ! अभी यह लडकी है, आनाथा है, मासे कभी कुछ सीखा नही , भलाई-बुराईका अभी इसे क्या ज्ञान है ! तुम इसे यह क्या सिखा रहे हो ?"

महेन्द्रने कहा, "यह देखो, इसके लिए किताब स्लेट कापी सब ले आया हूँ,—मै इसे लिखना-पढना सिखाऊँगा। इसपर चाहे कोई मेरी निन्दा करे, चाहे नाराज हो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "पढाई-लिखाई क्या सारे दिन ही हुआ करती है ! शामके बाद एक-आध घण्टे पढा दिया,—बस, काफी है।"

महेन्द्रने कहा, "पढना-लिखना इतना आसान नही, चाची ! इसमे समय लगता है, काफी परिश्रम करना पडता है।"

अन्नपूर्णा झुँझला उठी, और तुरत कमरेसे बाहर निकलकर नीचे चली आई। आशाने भी धीरे-धीरे उनका अनुसरण करना चाहा ; किन्तु महेन्द्र द्वार रोककर खडा हो गया। आशाके करुण सजल नेत्रोकी विह्वल प्रार्थनाका भी उसपर कोई असर नही पडा, बोला, "ठहरो, सोकर जो समय नष्ट किया है उसकी मुझे पूर्ति कर लेने दो।"

ससारमें ऐसे गम्भीरप्रकृति श्रद्धेय मूढोका होना कोई असम्भव नही जो यह समझ बैठे हो कि महेन्द्रने सचमुच निद्राके आवेशमे पढ़ाईका समय नष्ट किया है,

लिहाजा, विशेषरूपसे उनकी जानकारीके लिए इतना कह देना जरूरी है कि महेन्द्रकी शिक्षकतामे जैसा अध्यापन-कार्य सम्पन्न होता है उसका कोई भी स्कूल-इन्स्पेक्टर कभी भी अनुमोदन नही कर सकता।

आशाने अपने पतिपर विश्वास किया था और वास्तवमे ऐसा सोचा था कि पढना-लिखना सीखना उसके लिए नाना कारणोसे सहज नही हो सकता, फिर भी पतिकी आज्ञा होनेसे उसका कर्तव्य है कि वह पढने-लिखनेमे यथाशक्ति ध्यान दे। इसके लिए वह पूरी कोशिशसे अपने अशान्त विक्षिप्त मनको सयत करती, शयन-गृहमे फर्शपर बिछे-हुए गद्देके एक किनारे अत्यन्त गम्भीर होकर बैठती और किताब-कापीपर बिलकुल झुककर सिर हिलाती-हुई पाठ याद करनेमे जुट जाती। कमरेके दूसरी तरफ एक छोटी-सी टेबिलपर डाक्टरी किताब खोलकर मास्टर साहब कुरसीपर बैठे रहते, और बीच-बीचमे कनखियोसे छात्राकी निगरानी करते रहते कि ठीकसे मन लगाकर पढ रही है या नहीं। देखते-देखते अकस्मात् डाक्टरी किताब बन्द हो जाती और महेन्द्रके मुँहसे निकल जाता, "चुन्नी!" आशा चकित होकर मुँह उठाकर देखने लगती। महेन्द्र कहता, "किताब लेकर इधर तो आओ जरा, देखूँ कहाँ पढ रही हो?"

आशा डर जाती, मास्टर साहब कही उसकी परीक्षा न लेने लगे। परीक्षामे उत्तीर्ण होनेकी सम्भावना कम ही रहती। कारण, "चारु-पाठ', के चारुत्वका प्रलोभन उसके अबाध्य मनको किसी भी तरह वशमे नही ला सका था। वह पुस्तकमे उल्लिखित नये-नये शब्द और ज्ञानवर्धक विषय-वस्तुके विषयमे जितना ही ज्ञान प्राप्त करनेकी कोशिश करती, शब्द उतने ही उसके लिए दुरूह हो उठते और काले-काले अक्षर उसकी आँखोके सामने चीटियोकी तरह कतार बाँधकर रेगते रहते।

परीक्षककी बुलाहट सुनकर आशा किताब हाथमे लिये-हुए डरती-डरती महेन्द्रकी कुरसीके पास पहुँचती। महेन्द्र एक हाथसे उसका कटिदेश घेरकर दृढतासे उसे बन्दिनी बना लेता, और दूसरे हाथमे किताव लेकर पूछता, "आज कितना पढा बताना जरा?" आशा जितनी पक्तियोपर आँखे फेर सकती थी उतना बता देती। महेन्द्र क्षुण्ण स्वरमे कहता, "अरे, तुमने इतना पढ डाला! मैंने कितना पढा है देखोगी?" और फिर अपनी पढाईका हिसाब देते-हुए जो-कुछ

दिखाता उसमे किसी-एक अध्यायके शीर्षकके सिवा और कुछ न होता। आशा आश्चर्यसे आँखे फाडकर कहती, "तो, इतनी देरसे कर क्या रहे थे !" महेन्द्र उसकी ठोडी पकडकर कहता, "कोई एक आदमी है, उसीकी बात सोच रहा था। लेकिन जिसकी बात मै सोच रहा था वह निष्ठुर 'चारुपाठ'मे 'दीमककी कहानी'के मजे ले रहा था।" आशा इस निराधार आरोपके विरुद्ध उपयुक्त उत्तर दे सकती थी, किन्तु कोई उपाय जो नही, केवल लज्जाके खातिर ही प्रेमकी प्रतियोगितामे चुपचाप उसे हार मान लेनी पडती। और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महेन्द्रकी यह पाठशाला सरकारी या गैरसरकारो किसी भी शिक्षालयका कोई नियम मानकर नही चलती।

मान लो, घरमे किसी दिन महेन्द्र उपस्थित नही है, और उस मौकेसे आशा पढनेमे मन लगानेकी कोशिश कर रही है। इतनेमे महेन्द्र न-मालूम कहाँसे आकर पीछेसे उसकी आँखे मीच लेता है और किताब छीनकर कहता है, "निष्ठुर कहीकी, मै जब घर नही रहता तब तुम मुझे याद न करके पाठ याद किया करती हो, क्यो ?"

आशा कहती, "तुम मुझे मूर्ख ही बनाये रखोगे क्या ?"

महेन्द्र कहता, "तुम्हारी कृपासे मेरी विद्या भी ऐसी क्या दौड लगा रही है जो तुम्हे डाह हो रहा है ?"

बात सहसा आशाके मनमे चुभ जाती, और वह उसी क्षण जानेको तैयार होकर कहती, "मैने तुम्हारी पढाईमे कब बाधा डाली है ?"

महेन्द्र उसका हाथ पकडकर कहता, "तुम इसका क्या समझो ! मुझे भूलकर तुम जितनी आसानीसे पाठ याद कर सकती हो, तुम्हे भूलकर मै तो उतनी आसानीसे पढाई नही कर सकता।"

यह बहुत बडा दोषारोप है। इसके बाद तो स्वभावत ही शरत्की हलकी वर्षाकी तरह आशाकी आँखें आँसू बरसाने लगती, और कुछ ही देरमे उसका वह अश्रुवर्षण लाड-प्यारके सूर्यलोकमे विलीन हो जाता, रह जाती केवल एक सजल उज्ज्वलता।

शिक्षक स्वयं ही यदि शिक्षाका सबसे बडा अन्तराय हो उठे, तो अबला शिक्षार्थिनीकी मजाल क्या कि वह विद्यारण्यमे स्वय मार्ग निकालकर चले ! किन्तु

कभी-कभी मौसीकी तीव्र ताडनाकी याद आती तो आशाका चित्त विचलित हो उठता, वह समझ जाती कि पढाईका तो एक बहाना है। सासको देखती तो मारे शरमके गड-गड जाती। किन्तु सास उससे कभी किसी कामके लिए नही कहती, कोई उपदेश नही देती, और बिना आज्ञाके वह सासके काममे सहायता देने जाती भी, तो सास अत्यन्त चचल होकर कहने लगती, "अरे, कर क्या रही हो! जाओ अपने कमरेमे जाओ, तुम्हारी पढाई मारी जायगी।"

अन्तमे अन्नपूर्णाको आशासे कहना ही पडा, "तेरी जो-कुछ पढाई हो रही है सो तो सब मुझे मालूम है! अब तू क्या महेन्द्रको भी डाक्टरी पास नही करने देगी?"

सुनकर आशाने अपने मनको खूब कडा कर लिया, और महेन्द्रसे ज़ाकर बोली, "तुम्हारी परीक्षाकी पढाई नही हो रही है, आजसे मै नीचे मौसीके कमरेमें रहूँगी।"

इस उमरमे इतना कडा सन्यासव्रत! शयनागारसे एकदम मौसीके कमरेमें आत्म-निर्वासन! ऐसी कठोर प्रतिज्ञा उच्चारण करते-हुए आशाकी आँखोमे आँसू भर आये, उसके अबाध्य पतले-पतले ओठ काँप उठे और कण्ठ रुक-सा आया।

महेन्द्रने कहा, "तो चलो, चाचीके कमरेमे ही चले चले, पर उन्हें फिर ऊपर आकर हमारे कमरेमे रहना पडेगा।"

आशाने अपने इतने बडे उदार गम्भीर प्रस्तावको मजाकमे उडता देख मारे गुस्साके रूठकर अपना मुँह फेर लिया। महेन्द्रने कहा, "इससे तो बल्कि तुम खुद मुझे दिन-रात अपनी आँखो-ही-आँखोमे रखकर पहरा दो तो अच्छा हो, फिर देखना कि मैं परीक्षाकी पढाई करता हूँ या नही!"

यह बात सहज ही मे तय हो गई। आँखो-ही-आँखोमे रखकर कैसे पहरा दिया जाने लगा, इसका विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है। केवल इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि उस साल महेन्द्र परीक्षामे फेल हो गया, और साथ-साथ 'चारु-पाठ' मे विस्तृत वर्णन रहनेपर भी 'बहुभुज' के विषयमे आशाका अज्ञान भी दूर नही हुआ।

ऐसा अपूर्व पठन-पाठनका कार्य सम्पूर्ण निर्विघ्नतासे नियमित होता रहता हो, यह नही कहा जा सकता। बीच-बीचमे बिहारी आकर बडी गड़बड़ी मचा

देता था। 'महेन-भइया' 'महेन-भइया'की रटसे वह मुहल्ले-भरको सरपर उठा लेता। महेन्द्रको उसके निजी कमरेसे बाहर निकाले बगैर उसे चैन नही पडता, पढाईकी शिथिलतापर महेन्द्रको वह काफी डाटता-फटकारता। और आशासे कहता, "भाभी, साबित निगल जानेसे हजम नही होता, चबाकर खाना चाहिए। इस समय तुम एक ही कौरमे सब-का-सब निगल जाना चाहती हो सो ठीक नही, ऐन वक्तपर फिर 'हजमी गोली' ढूँढे नही मिलेगी।"

महेन्द्र कहता, "चुन्नी, तुम इसकी बातोमे न आना, इसे तो हमारे आनन्दसे ईर्षा हो रही है।"

बिहारी कहता, "आनन्द जब कि तुम्हारी मुट्ठीमे ही है, तो उसे इस तरह भोगना चाहिए जिससे दूसरोको ईर्षा न हो।"

महेन्द्र जवाब देता, "दूसरोकी ईर्षासे आनन्द जो मिलता है! जानती हो, चुन्नी, मै जरा-सा चूक जाता तो गधेकी तरह मै तुम्हे बिहारीके हाथ ही सौप देता!"

बिहारीका चेहरा सुर्ख हो उठता, कहता, "चुप!"

इन-सब बातोसे आशा मन-ही-मन बिहारीसे चिढती रहती। किसी समय बिहारीके साथ उसके ब्याहकी बात चली थी, इसी कारण बिहारीके प्रति उसका विपरीत रुख रहता है। बिहारी इस बातको समझता है, और महेन्द्रको इस तरहकी छेडछाडमे आनन्द आता है।

राजलक्ष्मी बिहारीको बुलाकर उससे अपना दुखडा कहती। बिहारी कहता, "मा, रेशमका कीडा जब कोआ बनाता है तब डरनेकी कोई बात नही होती, पर जब वह कोआ काटकर उड जाता है तब उसका हाथमे आना मुश्किल हो जाता है। यह कौन जानता था कि महेन-भइया तुम्हारे बन्धनको इस तरह काट देगे!"

महेन्द्रके फेल होनेकी खबरसे राजलक्ष्मी ग्रीष्मकालके आकस्मिक अग्निकाण्डकी तरह एकाएक ऐसी जल उठी कि उसकी लपटोसे आसपासका कोई बच न सका। सबसे ज्यादा गर्जन और दाहन सहना पडा अन्नपूर्णाको, उनका खाना-पीना-सोना सब छूट गया।

६

एक दिन नव-वर्षाके वर्षण-मुखर मेघाच्छन्न सन्ध्याके समय महेन्द्र एक सुवासित महीन दुपट्टा ओढे और गलेमे जूहीका गजरा डाले बडे आनन्दसे अपने सोनेके कमरेमे पहुँचा। सहसा आशाको आश्चर्यसे चकित कर देनेके विचारसे उसने जूतोकी आवाज तक न होने दी। कमरेमे झाँककर उसने देखा कि पूरबकी खुली हुई खिडकीमेसे जोरकी हवा वर्षाकी बौछारके साथ कमरेमे प्रवेश कर रही है, हवासे बत्ती बुझ गई है, और आशा नीचेके बिस्तरपर पडी सिसक-सिसककर रो रही है। महेन्द्रने जल्दीसे उसके पास जाकर पूछा, "क्या हुआ, आशा?"

बालिका दूने आवेगसे रो उठी। बहुत देर बाद महेन्द्रको अपने प्रश्नका क्रमश उत्तर मिला, "मौसीसे अब सहा नही जाता, सो वे अपने फुफेरे भाईके यहाँ चली गई है।"

महेन्द्रको गुस्सा आ गया, वह सोचने लगा, 'वे गई तो गई, पर हमारी ऐसी बदलीकी सन्ध्याको क्यो मिट्टीमे मिला गई?' और अन्तमे उसका सारा गुस्सा मापर जा पडा। 'वे ही तो सब अशान्तिकी जड है।'

महेन्द्रने कहा, "चाची जहाँ गई है, हमलोग भी वही चले जायेगे, देखे, मा फिर किनके साथ लडती-झगडती है!"

इसके बाद महेन्द्रने बडे जोरका शोरगुल मचाते-हुए चीज-वस्त बाँधना और कुली-मजूरोको बुलाना शुरू कर दिया।

राजलक्ष्मी सब समझ गई। उन्होने धीरे-धीरे महेन्द्रके पास आकर शान्त स्वरमे पूछा, "कहाँ जा रहा है तू?"

महेन्द्रने पहले तो कुछ जवाब ही नही दिया, फिर दो-तीन बार पूछे जानेके बाद बोला, "चाचीके पास जा रहा हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुमलोगोको कही नही जाना होगा,—मै ही जाकर तेरी चाचीको यहाँ लिवाये लाती हूँ।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी उसी क्षण पालकीमे बैठकर अन्नपूर्णाको लिवाने चली गई। और वहाँ अन्नपूर्णाके सामने जाकर गलेमे आँचल डालकर हाथ जोडकर बोली, "प्रसन्न होइये, मझली-बहू! क्षमा कीजिये।"

अन्नपूर्णा इस नाटकीय भावको देखकर मारे शरमके गड-गड गईं, और अत्यन्त चचल होकर जिठानीके पॉवोकी धूल माथेसे लगाती-हुई बोली, "जीजी, क्यो मुझे इस तरह अपराधिनी बनाकर लज्जा देती हो ? तुम मुझे जो आज्ञा दोगी वही करूँगी मै।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम चली आई हो इसलिए बेटा और बहू दोनोके दोनो घर छोडकर चले जा रहे है।" कहते-कहते वे अभिमान क्रोध और धिक्कारके मारे रो उठी।

देवरानी-जिठानी दोनो घर लौट आईं। बाहर वर्षा हो रही है। अन्नपूर्णा जब महेन्द्रके कमरेमे पहुँची तब आशाका रोना थम चुका था, और महेन्द्र तरह-तरहकी हँसीकी बात छेडकर उसे हँसानेकी कोशिश कर रहा था। लक्षणोसे मालूम होता है बदलीकी सन्ध्या सम्पूर्णत. व्यर्थ नही जायगी।

अन्नपूर्णाने कहा, "चुन्नी, तू मुझे घरमे भी नही रहने देगी, और, और-कही जाऊँ तो वहॉ भी पीछा नही छोडेगी! मुझे क्या कही भी जरा शान्ति नही लेने देगी तू ?"

आशा अकस्मात् वाण-बिद्ध हरिणीकी तरह चकित हो उठी। महेन्द्र सहसा झुँझलाकर बोल उठा, "क्यो चाची, चुन्नीने तुम्हारा किया क्या है ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "बहू-बेटीका इतना बेहयापन मुझसे नही देखा गया, तभी तो मैं यहॉसे चली गई थी। फिर सासको रुलाकर क्यो मुझे पकडवा मगाया कलमुँहीने ?"

जीवनके कवित्व-अध्यायमें मा और चाची ऐसी 'बाधा' बन सकती है, महेन्द्रको यह नही मालूम था।

दूसरे दिन राजलक्ष्मीने बिहारीको बुलाकर कहा, "बेटा, एक बार महेन्द्रसे कहो, मै बहुत दिनोसे मायके नही गई, अब मै बारासात जाना चाहती हूँ।"

बिहारीने कहा, "बहुत दिनोसे जब कि नही ही गईं, तो अब न जाओ तो क्या है। अच्छा, मै महेन-भइयासे कहूँगा, पर वे शायद ही राजी हो।"

बिहारीकी बातका उत्तर देते-हुए महेन्द्रने कहा, "सो तो ठीक है, जन्मभूमि देखनेको किसका जी नही चाहता ! पर माका वहाँ ज्यादा दिन न रहना ही अच्छा है, बरसातके दिनोमे वो जगह अच्छी नही है।"

महेन्द्रने सहज ही मे सम्मति दे दी, इससे बिहारी कुछ अप्रसन्न हुआ, बोला, "मा अकेली जायेगी, वहाँ कौन उनकी सेवा-टहल करेगा ? भाभीको भी साथ भेज दो न !" इतना कहकर वह जरा हँस दिया।

बिहारीकी इस भीतरी व्यगकी मारसे महेन्द्र सकुचित हो उठा। उसने कहा, "सो क्या मै नही भेज सकता तुम समझते हो ?"

किन्तु, बात इससे और आगे नही बढ सकी।

इसी तरह बिहारी आशाका मन विमुख कर दिया करता, और यह जानकर कि आशा उसपर नाराज हो रही है, मानो वह एक प्रकारका सूखा आनन्द अनुभव करता रहता।

कहनेकी जरूरत नही कि राजलक्ष्मी अपनी जन्मभूमि देखनेके लिए बहुत ज्यादा उत्सुक नही थी। गरमियोमे नदीका पानी जैसे घट जाता है और तब माझी जैसे पद-पदपर लग्गी डालकर थाह लेता रहता है कि कहाँ कितना पानी है वैसे ही राजलक्ष्मी भी इस मनमुटावके समय मा-बेटेके स्नेह-सम्पर्कके पानीमे लग्गी डालकर थाह लगा रही थी। उनकी बारासात जानेकी बात इतनी जल्दी और इतनी आसानीसे मजूर हो जायगी, इस बातकी उन्हे कतई आशा नही थी। वे मन-ही-मन कहने लगी, 'अन्नपूर्णाके घर छोडने और मेरे घर छोडनेमे कितना फरक है ! वह ठहरी टोना-मन्त्र जाननेवाली 'डाइन' और मै हूँ केवल 'मा' ! मेरा जाना ही अच्छा है।'

अन्नपूर्णा भीतरी बातको समझ गई। उन्होने महेन्द्रसे कहा, "जीजी चली जायेगी तो मै भी यहाँ नही रह सकूँगी।"

महेन्द्रने मासे कहा, "सुनती हो, मा ! तुम जाओगी तो चाची भी चली जायेगी, तब फिर घरका काम कैसे चलेगा ?"

राजलक्ष्मी विद्वेष-विषसे जर्जरित होकर बोल उठी, "तुम जाओगी, मझली बहू ! ऐसा भी कभी हो सकता है ! तुम जाओगी तो काम कैसे चलेगा ? तुम्हारा रहना तो बहुत जरूरी है।"

राजलक्ष्मीके लिए अब देर सहन करना असह्य हो उठा। दूसरे दिन दोपहरके पहले ही उन्होने देश जानेकी पूरी तैयारियाँ कर डाली। महेन्द्र खुद ही उन्हे देश पहुँचा आयेगा, इस विषयमे बिहारी या और-किसीको कोई सन्देह न था। किन्तु

समयपर देखा गया कि महेन्द्रने माके साथ एक गुमाश्ता और एक दरवानको भेजनेकी व्यवस्था की है।

बिहारीने आकर कहा, "महेन-भइया, अभी तक तुम तैयार भी नही हुए ?"

महेन्द्रने लज्जित होकर कहा, "मुझे कालेजकी—"

बिहारी बोला, "अच्छा, तुम रहने दो, माको मै पहुँचा आऊँगा।"

महेन्द्र मन-ही-मन क्रुद्ध हो उठा। उसने एकान्तमे आशासे कहा, "सचमुच बिहारी अब बहुत ज्यादती करने लगा है। वह दिखाना चाहता है, मानो उसे माकी चिन्ता मुझसे बहुत ज्यादा है।"

अन्नपूर्णाको रहना पडा, किन्तु लज्जा क्षोभ और विरक्तिसे वे अत्यन्त सकुचित होकर दूर-ही-दूर रहने लगी। चाचीका इस तरह दूर-दूर रहना महेन्द्रको अच्छा नही लगा, वह रूठा-रूठा रहने लगा; और आशा भी कुछ रूठी-सी और कुछ अनमनी-सी रहने लगी।

७

राजलक्ष्मी अपनी जन्मभूमिमे पहुँच गईं। तय था कि बिहारी उन्हे पहुँचाकर लौट आयेगा, किन्तु वहाँकी अवस्था देखकर वह लौट न सका।

राजलक्ष्मीके मायकेमे सिर्फ दो-एक अतिवृद्धा विधवा जीवित थी। चारो ओर घना जगल और बाँसके झाड थे, तालाबका पानी हरा हो चुका था, और दिन-दोपहरको सियार बोला करते थे, जिससे राजलक्ष्मीका चित्त उद्‌भ्रान्त हो उठता था।

बिहारीने कहा, "मा, है तो यह जन्मभूमि ही, पर इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' हरगिज नही कहा जा सकता। चलो अब कलकत्ते चलो। यहाँ तुम्हे अकेले छोड जाना अधर्म है,—मुझसे यह हरगिज न होगा।"

राजलक्ष्मीका भी जी उकता गया था। इतनेमे विनोदिनी आ गई; और उससे राजलक्ष्मीको सहारा मिल गया और विनोदिनीको भी आश्रय मिल गया।

विनोदिनीका परिचय शुरूमे ही दिया जा चुका है। किसी समय महेन्द्र और उसके अभावमे बिहारीके साथ उसके ब्याहकी बात चली थी। विधिके विधानसे जिसके साथ उसका शुभ-विवाह हुआ था उस आदमीकी समस्त अन्तरेन्द्रियोमे

ताप-तिल्ली ही थी सबसे प्रबल। और उसके अतिभारके कारण ही वह अधिक दिन तक जीवन धारण न कर सका।

उसकी मृत्युके बाद विनोदिनी, जगलमे एकमात्र उद्यान-लताकी तरह, इस निरानन्द गॉवमे मरी-हुई-सी जिन्दगीके दिन काट रही थी। आज उस अनाथाने आकर बडी भक्तिसे अपनी फफुआ-सास राजलक्ष्मीके पाँव लागे और उनकी सेवामे आत्म-समर्पण कर दिया।

सेवा इसीका नाम है। एक क्षणके लिए भी आलस नही, कैसा साफ-सुथरा काम है, कैसी उमदा रसोई बनाती है, और बोली कितनी मीठी!

राजलक्ष्मी कहती, "अबेर हो गई है, बेटी, अब कुछ खा-पी लो, जाओ।"

भला वह कब सुनने लगी! पखेसे हवा करते-करते जब तक सासको सुला नही देती तब तक उठनेका नाम नही लेती।

राजलक्ष्मी कहती, "ऐसा करनेसे तो तुम बीमार पड जाओगी, बेटी!"

विनोदिनी अपने प्रति अत्यन्त उपेक्षा और तुच्छताका भाव दिखाकर कहती, "हमलोगोका दु खका शरीर ठहरा, बुआजी, बीमारी कभी भूलके भी नही फटकती हमारे पास। और फिर, तुम कितने दिन बाद तो आई हो यहाँ! तुम्हारी सेवाके लिए है ही क्या यहाँ, जिससे सेवा कर सकूँ!"

बिहारी दो-ही-चार दिनमे गॉवका मुरब्बी-मुखिया बन गया। उसके पास कोई दवा पूछने आता तो कोई मुकदमेके बारेमे सलाह ले जाता, कोई अपने लडकेको किसी बडे आफिसमे नौकरी दिलानेकी प्रार्थना करता तो कोई उससे दरखास्त ही लिखा ले जाता। वयोवृद्धोकी ताश-शतरज-सभासे लेकर बागदियोकी ताडी-पान-सभा तक सर्वत्र वह अपना सकौतुक कुतूहल और स्वाभाविक सहृदयता लिये-हुए विचरण करने लगा, कोई उसे गैर नही समझता, बल्कि सभी उसका सम्मान करते है।

विनोदिनी भी अन्त पुरके अन्तरालसे कुठौरमे-पडे इस कलकत्तेके युवकके निर्वासिन-दण्डको यथासाध्य हलका करनेकी कोशिश करती रहती। बिहारी हर बार जब गाँवमे घूम-फिरकर घर आता तो देखता कि किसीने उसके कमरेको खूब अच्छी तरह झाड़-बुहारकर साफ-सुथरा कर रखा है, एक गिलासमे दो-चार तरहके फूलोका गुलदस्ता बनाकर सजा रखा है और उसके बिस्तरके पास ही बङ्किमचन्द्र

और दीनबन्धुकी ग्रन्थावली सजाकर रख दी है। प्रत्येक जिल्दके भीतर 'विनोदिनी' नाम लिखा-हुआ है, हस्ताक्षर स्त्रियो-जैसे है किन्तु लिखावट पक्की है।

गाँवके प्रचलित अतिथि-सत्कारके साथ इस आतिथ्यमे जरा-कुछ विशेषता है। बिहारी जब विनोदिनीका उल्लेख करके प्रशसा करने लगता तब राजलक्ष्मी कहती, "ऐसी शऊरकी लडकीकी तुमलोगोने बिलकुल ही उपेक्षा कर दी! अरे, मुझे दु ख तो इसी बातका है।"

बिहारी हँसकर कहता, "अच्छा नही किया, मा, हमलोग ठगाये गये। पर ब्याह न करके ठगाना अच्छा, ब्याह करके ठगाये जानेमे मुसीबत होती।"

राजलक्ष्मी बार-बार यही सोचने लगी कि 'अहा, यह लडकी मेरी बहू हो सकती थी,—हुई क्यो नही!'

राजलक्ष्मीके कलकत्ते जानेकी बात छिडती तो विनोदिनीकी आँखोमे आँसू भर आते। कहती, "बुआजी, तुम दो दिनके लिए आई ही क्यो थी? जब तुम्हें मैं जानती न थी तब तो किसी-न-किसी तरह दिन कट जाते थे, पर अब तुम्हारे बिगर मुझसे रहा कैसे जायगा!"

राजलक्ष्मी मनके आवेगमे कह डालती, "बेटी, तू मेरे घरकी बहू क्यो नही हुई,—तब तो मै तुझे छातीसे लगाके रखती।"

यह बात सुनकर विनोदिनी मारे लज्जाके किसी कामके बहाने वहाँसे उठके चली जाती।

राजलक्ष्मीको आशा थी कि कलकत्तेसे उनके पास अनुनय-विनय-भरा करुण पत्र आयेगा, और उसकी वे प्रतिक्षण प्रतीक्षा कर रही थी। उनका महेन जन्मसे लेकर अब तक कभी इतने दिन माको छोडकर अकेला नही रहा, और अब तो निश्चय ही इतने दिनके विच्छेदने उसे अधीर कर दिया होगा। राजलक्ष्मी अपने रूठे-हुए लडकेकी तरफसे लाड और उलाहने-भरे प्रार्थनापूर्ण पत्रके लिए तृषित और उत्कण्ठित हो रही थी।

महेन्द्रका पत्र आया, किन्तु बिहारीके नाम। उसने लिखा है, "आशा है, मा बहुत दिनो बाद जन्मभूमि जाकर बहुत प्रसन्न और सुखी होगी।"

माने सोचा, 'बेटा अभी तक रूठा-हुआ है, इसीसे लिखता है, प्रसन्न होगी सुखी होगी। अभागिनी मा भला बेटेके बिना कही भी प्रसन्न रह सकती है, सुखसे

रह सकती है ?' फिर वे बिहारीसे पूछने लगी, "और आगे क्या लिखा है महेनने, जरा पढके सुना तो, बेटा !"

बिहारीने कहा, "आगे और कुछ भी नही लिखा, मा !" और चिट्ठीको उसने मोड-मरोडकर एक किताबकी जिल्दके भीतर रखकर घप-से उसे एक कोनेमे फेक दिया।

भला अब राजलक्ष्मी कैसे स्थिर रह सकती थी ! वे सोचने लगी, अवश्य ही महेन्द्र अभी तक उनसे गुस्सा है, और गुस्सेमे आकर चिट्ठीमे ऐसी बाते लिखी होगी जिन्हे बिहारी पढकर सुनानेमें सकोच कर रहा है।

बछडा जैसे गायके थनमे हुड्ड मार-मारकर वात्सल्यका सचार करके दूध उतारता है, महेन्द्रके गुस्सेने ठीक वैसे ही राजलक्ष्मीको चोट पहुँचाकर उनके रुके-हुए वात्सल्यको उत्सारित कर दिया। उन्होने महेन्द्रको क्षमा कर दिया। कहने लगी, "अच्छा है, अच्छा है, महेन बहूको लेकर शान्तिसे रह रहा है, रहने दो, जैसे भी रहे, सुखी रहना चाहिए। बहूके बारेमे अब मै कुछ नही बोलूँगी,—मै उसे कष्ट थोडे ही देना चाहती हूँ। देखो तो भला, जो मा उसे घडी-भरके लिए कभी भी अपनेसे अलग नही रख सकती थी वह मा इतनी दूर चली आई, तो क्यो नही उसे गुस्सा आयेगा ?" कहते-कहते राजलक्ष्मीकी आँखोमे आँसू भर आये।

उस दिन राजलक्ष्मी बिहारीसे बार-बार आकर कहने लगी, "जाओ, बेटा, तुम नहा-धो लो। यहाँ तुम्हारा रहन-सहन बड़ा अनियमित हो गया है।"

किन्तु बिहारीको उस दिन नहाने-खानेकी प्रवृत्ति ही नही हुई। उसने कहा "मा, मुझ-जैसे अभागे अनियममे ही ठीक रहते है।"

राजलक्ष्मीने जोर देकर कहा, "नही, बेटा, तुम उठो, जाओ, पहले नहा-धोकर खा-पी लो,—फिर जीमे आये सो करना।"

सैकडो बार अनुरोध किये जानेपर बिहारीको आखिर उठना ही पडा।

उसके बाहर जाते ही राजलक्ष्मीने जल्दीसे जिल्दमेंसे महेन्द्रकी मुडी-मुडाई चिट्ठी निकाल ली। विनोदिनीके हाथमे चिट्ठी देते-हुए उन्होने कहा, "देखो तो, बेटी, महेनने बिहारीको क्या लिखा है ?"

विनोदिनी पढकर सुनाने लगी। महेन्द्रने शुरूमे माके विषयमे लिखा था, किन्तु बहुत ही थोडा, बिहारीने जितना सुनाया था उससे ज्यादा कुछ नही।

उसके बाद ही आशाकी बाते लिखी है। महेन्द्रने रस-रग हास्य-रहस्य और पुलक-आनन्दके नशेमे उन्मत्त होकर चिट्ठी लिखी है। विनोदिनी थोडा-सा सुनाकर मारे लज्जाके रुक गई, बोली, "बुआजी, अब आगे सुनके क्या करोगी।"

राजलक्ष्मीके स्नेहसे व्यग्र चेहरेका भाव क्षणमे बदलकर पत्थर-सा कठिन होकर मानो जम गया। कुछ देर वे चुप रही, फिर बोली, "रहने दो।" और इतना कहकर वे चिट्ठी वापस बगैर लिये ही चली गईं।

विनोदिनी उस चिट्ठीको लेकर अपनी कोठरीमे चली गई ; और भीतरसे किवाड बन्द करके बिस्तरपर बैठकर उसे पढने लगी।

चिट्ठीमें विनोदिनीको क्या रस मिला, सो वही जाने ; किन्तु वह कौतुक-रस हरगिज नही था। चिट्ठीको बार-बार पढते-पढते उसकी ऑखे दोपहरकी गरम बालूकी तरह जलने लगी और उसकी सॉस मरुभूमिकी लूकी तरह गरम हो उठी।

बार-बार उसके मनमे यही एक बात चक्कर काटने लगी कि महेन्द्र कैसा है, आशा कैसी है, महेन्द्र और आशाका प्रेम कैसा है ? चिट्ठीको अपनी छातीके पास दबाकर वह पैर फैलाये दीवारके सहारे बैठी-हुई बहुत देर तक सामनेके आकाशकी ओर देखती रही।

बिहारी तलाश करता रह गया, किन्तु महेन्द्रकी चिट्ठी उसे नही मिली।

उसी दिन दोपहरको अकस्मात् अन्नपूर्णा आ पहुँची। दु सवादकी आशङ्कासे सहसा राजलक्ष्मीकी छाती काँप उठी। कुछ पूछनेकी उन्हे हिम्मत ही न पडी, अपना सफेद-फक मुँह लिये वे अन्नपूर्णाके मुँहकी तरफ देखती रही।

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, कलकत्तेमे सब राजी-खुशी है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो तुम यहॉ कैसे ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, तुम अपनी घर-गृहस्थी आप जाकर सम्हाल लो। मेरा अब घर-गृहस्थीमें मन नही लगता। मै काशी जानेके लिए घरसे रवाना हो चुकी हूँ, इसीसे तुम्हारे पाँव लगने आई हूँ। जानमे अनजानमे बहुत कसूर बन पडे है मुझसे, सो सब माफ कर देना, जीजी! और तुम्हारी बहू, (कहते-कहते उनकी आँखोसे आँसू गिरने लगे) अभी वह बच्ची है,—उसके मा नही, बाप नही, वह दोषी हो या निर्दोष हो, वो है तुम्हारी ही।" कहते-कहते उनका गला रुक आया, आगे कुछ कह न सकी।

राजलक्ष्मी व्यस्तताके साथ देवरानीके स्नानाहारकी व्यवस्था करने चली गईं।

बिहारी खबर पाते ही गदाई घोषकी चौपालसे भागा-भागा घर आया। और चाचीके पाँव छूकर कहने लगा, "नही नही, चाची, यह कैसे हो सकता है! हमलोगोकी ममता छोडकर तुम काशी चली जाओगी! यह तो हरगिज नही हो सकता।"

अन्नपूर्णाने आँसू रोकते-हुए कहा, "अब तू मुझे रोकनेकी कोशिश न कर, बिहारी! मेरे बिना कोई काम नही रुकेगा। तुम-सब खुश रहो, सुखी रहो, इसके सिवा मुझे और क्या चाहिए?"

बिहारी कुछ देर चुप बैठा रहा। और फिर बोला, "महेन्द्रका भाग्य ही खराब है। उसने तुम्हे भी विदा कर दिया!"

अन्नपूर्णाने चौककर कहा, "ऐसी बात मुँहसे न निकाल, बिहारी! महेन्द्रसे मैं जरा भी नाराज नही। मेरे बिना हटे घरकी भलाई नही होगी, इसीसे मैंने काशी जाना तय किया है।"

बिहारी दूर आकाशकी तरफ देखता-हुआ चुपचाप बैठा रहा। अन्नपूर्णाने आपने आँचलसे दो सोनेके भारी कडे खोलते-हुए कहा, "बेटा, ये कडे तुम अपने पास रक्खो,—जब तुम्हारी बहू आवे तब मेरी तरफसे आशीर्वादमे उसे पहना देना।"

बिहारी कडोको माथेसे लगाकर अपने उमडते-हुए आँसुओको रोकनेके लिए बगलके कमरेमे चला गया।

विदा होते समय अन्नपूर्णाने कहा, "बिहारी बेटा, तुम मेरे महेन्द्रकी और आशाकी सम्हाल करते रहना।"

और फिर राजलक्ष्मीके पास जाकर उनके हाथमें एक कागज देती-हुई बोलीं, "ससुरजीकी सम्पत्तिमे मेरा जो हिस्सा है उसे मैं इस दानपत्रमें महेन्द्रको दिये जाती हूँ,—मुझे तुम महीने-महीने सिर्फ पन्द्रह रुपये भिजवा दिया करना।"

इतना कहकर अन्नपूर्णाने जिठानीके पाँवसे माथा छुआकर प्रणाम किया और पाँवोकी धूल माथेसे लगाईं, और फिर काशीके लिए विदा हो गईं।

८

आशाको एक तरहका डर-सा बैठ गया। यह क्या हुआ, मा चली गईं, मौसी चली गईं! उनलोगोका सुख मानो सभीको निकाल बाहर कर रहा है! अब शायद उसकी खुदकी भागनेकी पारी है। इस परित्यक्त शून्य घर-गृहस्थीमें दाम्पत्यकी नई प्रेमलीला उसे कैसी-तो असङ्गत-सी मालूम होने लगी।

गार्हस्थिक कठिन कर्तव्यसे प्रेमको फूलकी तरह तोडकर अलग कर लेनेसे फिर वह केवल अपने रससे अपने-आपको सजीव नही रख सकता, धीरे-धीरे वह विमर्ष और विकृत होने लगता है। आशा भी मन-ही-मन अनुभव करने लगी कि उनके अविश्राम मिलनमे प्रतिक्षण एक तरहकी श्रान्ति और कमजोरी आती जाती है। उनका मिलन मानो अब रह-रहकर अपने-आप मुरझाता और सूखता जा रहा है, घर-गृहस्थीके दृढ और प्रशस्त आश्रयके अभावमे उसे खीच-पकडकर खडा रखना अब कठिन हो रहा है। काम-काजके भीतर ही यदि प्रेमकी जड न पनपे, तो भोगका विकास भी परिपूर्ण और स्थायी नही होता।

किन्तु महेन्द्रने क्या किया कि अपनेसे पराङमुख समस्त परिवारके विरुद्ध विद्रोह करके अपने प्रेमोत्सवकी सारी-की-सारी बत्तियाँ एकसाथ जलाकर अत्यन्त समारोहके साथ वह सूने घरके अमङ्गलमे ही मिलनका आनन्द मनाने लगा। उसने आशाके मनको जरा-कुछ चोट पहुँचाते-हुए ही कहा, "चुन्नी, आजकल तुम्हे हो क्या गया है बताओ तो? तुम्हारी मौसी क्या चली गईं, सब-कुछ चला गया! तुम ऐसी उदास क्यो रहती हो? हमारे-तुम्हारे प्रेममे ही क्या सारा प्रेम नही समा गया?"

आशा दुःखित होकर सोचा करती, 'तब तो मेरे प्रेममे जरूर कही कोई कमी है। मैं तो अकसर मौसीकी बात ही सोचा करती हूँ, सासके चले जानेसे मुझे हरदम डर बना रहता है।' और फिर वह जी-जानसे इन-सब प्रेमके अपराधोको दूर करनेका भरसक प्रयत्न करती रहती।

अब घरका काम-काज ठीकसे नही होता। नौकर-चाकर कामसे जी चुराते हैं। एक दिन नौकरानी तबीयत खराब होनेका बहाना बनाकर घर बैठ रही, और रसोइया-महाराज शराब पीकर लापता हो गया।

महेन्द्रने आशासे कहा, "बडा अच्छा हुआ,—आज हम-तुम दोनो मिलकर रसोई बनायेंगे, बडा मजा रहेगा!"

महेन्द्र गाडीमे बैठकर साग-तरकारी लेने न्यू-मार्केट पहुँचा, जहाँसे अंग्रेजोके बावर्ची लोग सब्जी खरीदते हैं। कौन-सी चीज कितनी चाहिए और क्या-क्या चाहिए, यह तो उसे कुछ मालूम नही था, लिहाजा बहुत-सा बोझ लेकर वह बड़े आनन्दसे घर लौटा। और आशाका यह हाल कि वह भी कुछ नही जानती कि उन चीजोका कैसे क्या किया जाता है। नतीजा यह हुआ कि निरीक्षण-परीक्षण करते-करते ही ढाई-तीन बज गये, और तरह-तरहके अभूतपूर्व अखाद्योत्पादन कर-करके महेन्द्र खूब मजे लेने लगा। किन्तु आशा महेन्द्रके मजेमे शरीक न हो सकी। उसे अपनी अज्ञता और असमर्थतापर भीतर-ही-भीतर बडी लज्जा हुई और क्षोभ भी हुआ।

घर-भरमे, क्या कमरे और क्या बैठक, सर्वत्र चीज-वस्त ऐसी अस्त-व्यस्त हो रही है कि काम पडनेपर कोई भी जरूरी चीज ढूँढे नही मिलती। महेन्द्रका एक 'चिकित्सा-अस्त्र' अकस्मात् एक दिन साग-तरकारी बनानेका काम देने लगा और बादमें घूरेमे जाकर अज्ञातवास करने लगा। और एक दिन देखा गया कि उसकी कॉलेजकी 'नोट-बुक' चूल्हा सुलगानेके कामसे पखा बनकर चौकेमे गई तो फिर लौटी ही नही। बादमें मालूम हुआ, उसने हमेशाके लिए भस्मशय्या ग्रहण कर ली है। इतना सब-कुछ होते-हुए भी मजा यह कि इन-सब कल्पनातीत व्यवस्था-विपर्ययसे महेन्द्रके कुतूहलकी सीमा न रही। किन्तु आशा व्यथित और चिन्तित होती रही। उच्छृङ्खल यथेच्छाचारके स्रोतमे सारी घर-गृहस्थीको बहाकर उसके साथ हँसते-हँसते अपनेको भी बहाते जाना बालिका वधूके लिए विभीषिका-जनक मालूम होने लगा।

एक दिन शामको दोनों जने छतवाले बरामदेमें बिस्तर बिछाकर बैठे थे। सामने खुली छत है। वर्षा होनेके बाद कलकत्तेकी दिगन्तव्यापी अट्टालिकाएँ चाँदनीमे चमक रही हैं। बगीचेसे ढेर-के-ढेर भीगे-हुए मौलसिरीके फूल लाकर आशा सिर झुकाये चुपचाप बैठी माला गूँथ रही है। और महेन्द्र उसे खीच-तानकर रुकावट डालकर प्रतिकूल समालोचना करके व्यर्थ ही लडाई मोल लेनेकी कोशिश कर रहा है। आशा इस अकारण छेडछाडके विरुद्ध प्रतिवाद करनेके लिए कुछ

कहनेको बीच-बीचमें मुँह खोलना चाहती तो महेन्द्र चटसे किसी-एक कृत्रिम उपायसे आशाका मुँह बन्द करके उसके शासन-वाक्यको अकुरावस्थामे ही विनष्ट कर देता।

इतनेमे पडोसीके घरकी पालतू कोयल पिजडेमेसे 'कुहू-कुहू' बोल उठी। उसी समय महेन्द्र और आशा दोनो-के-दोनो अपने सिरके ऊपर लटकते-हुए पिंजडेकी तरफ देखने लगे। उनकी कोयलने पडोसकी कोयलकी कुहूध्वनिको कभी भी चुपचाप सहन नही किया, फिर आज वह जवाब क्यो नही देती ?

आशाने उत्कण्ठित होकर कहा, "कोयलको आज हो क्या गया !"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी आवाज सुनकर शरमा गई है।"

आशाने अनुनयके स्वरमे कहा, "नही, हँसी नही, देखो-न जरा, क्या हो गया इसे !"

महेन्द्रने पिंजडा उतार लिया। पिंजडेका आवरण खोलकर देखा तो कोयल मरी पडी है। अन्नपूर्णाके चले जानेके बाद नौकर छुट्टी लेकर चला गया था, फिर किसीने उसकी खबर ही नही ली।

देखते-देखते आशाका चेहरा म्लान हो गया। उसकी उँगलियाँ रुक गईं, फूल जहाँके तहाँ पडे रह गये। महेन्द्रके मनको चोट न पहुँची हो सो बात नही, किन्तु असमयमे रङ्गमे भङ्ग होनेकी आशङ्कासे बातको उसने हँसीमे उडा देनेकी कोशिश की। बोला, "चलो अच्छा ही हुआ, मैं डाक्टरी करने जाता और यह 'कुहू-कुहू' करके तुम्हें जलाती रहती।" इतना कहकर उसने आशाको अपने बाहुपाशमे आबद्ध करके पास खीचनेकी कोशिश की। किन्तु आशाने धीरेसे अपनेको छुडाकर आँचलमें भरे सारे-के-सारे फूल फेंक दिये। बोली, "बस, अब बहुत हो चुका। छी छी ! तुम जल्दी जाओ, माको ले आओ।"

६

ठीक इसी समय नीचेसे आवाज आई, "महेन-भइया, महेन-भइया !"

महेन्द्रने जवाब दिया, "अरे कौन, बिहारी ! आओ आओ।" बिहारीकी आवाज सुनकर महेन्द्रका चित्त मारे खुशीके उत्फुल्ल हो उठा। ब्याहके बाद बिहारी बीच-बीचमे इनलोगोके सुखमे विघ्न बनकर आया है ; किन्तु आज वह विघ्न ही सुखके लिए अत्यन्त आवश्यक मालूम हुआ।

आशाको भी बिहारीके आगमनसे आराम मालूम हुआ। माथेका पल्ला सम्हालकर वह जल्दीसे उठके जाने लगी। महेन्द्रने कहा, "जाती कहाँ हो? और-कोई थोडे ही है, बिहारी है।"

आशाने कहा, "लालाजीके लिए जलपानका इन्तजाम करने जा रही हूँ।"

कामका अवसर मिल जानेसे आशाका अवसाद जरा-कुछ हलका हो गया। वह सासकी खबर जाननेके लिए घूँघट खीचकर खडी रही। बिहारीसे अब तक वह परदा करती आई है, बोलती नही।

बिहारी ऊपरके बरण्डेमे पाँव रखते ही बोल उठा, "बुरा हुआ, मुझसे कसूर हो गया, भाभी! ऐसे कवित्वमे आकर कदम रखा कि,—खैर, डरनेकी कोई बात नही, तुम बैठो, मै भाग चला।"

आशा महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखने लगी। महेन्द्रने बिहारीसे पूछा, "बिहारी, माकी क्या खबर है?"

बिहारीने कहा, "मा-चाचीकी बात आज क्यो, भाई साहब! उसके लिए बहुत समय पडा है। Such a night was not made for sleep, nor for mothers and aunts!" (ऐसी रात सोनेके लिए नही बनी और न मा या चाचीके लिए!) इतना कहकर बिहारी जब लौटने लगा तो महेन्द्रने उसे जबरदस्ती पकडकर बिठा लिया।

बिहारी बोला, "देख लो, भाभी, फिर तुम मुझे दोष न देना! मुझे जबरदस्ती बिठा रहे है ये। पाप कर रहे है महेन-भइया, देखना, कही उसका शाप मुझपर न पडे!"

आशा कुछ जवाब न दे सकनेके कारण ही ऐसी बातोसे झुँझला उठती है। और बिहारी उसे जान-बूझकर परेशान किया करता है।

बिहारीने कहा, "घरका ठाठ तो वर्णनातीत हो रहा है!—माको बुलानेका क्या समय अभी नही हुआ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी खूब हो! हमलोग तो उनकी राह ही देख रहे है।"

बिहारीने कहा, "यह बात उन्हें चिट्ठी लिखकर जता देनेमें बहुत कम समय लगेगा। किन्तु, उनकी खुशीका ठिकाना न रहेगा। भाभी, इसके लिए तुम्हें महेन-भइयाको दो मिनटकी छुट्टी देनी होगी, मेरी तुमसे इतनी-सी प्रार्थना है।"

आशा गुस्सा होकर चली गई। उसकी आँखोसे आँसू गिरने लगे।

महेन्द्रने कहा, "न-जाने कैसी शुभ-घडीमे तुम दोनोका साक्षात् हुआ था। सन्धि अन्त तक हुई ही नही, हमेशा खटपट ही बनी रहती है।"

बिहारीने कहा, "तुम्हारी माने तुम्हे बिगाड ही दिया है, उसपर स्त्री भी तुम्हें बिगाड रही है,—यह मुझसे देखा नही जाता, इसीसे मौका पाकर दो-एक बात कह बैठता हूँ।"

महेन्द्र बोला, "इससे फल क्या होता है?"

बिहारीने कहा, "फल तुम्हारे लिए तो विशेष कुछ नही होता, पर, मुझे तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है।"

१०

बिहारीने खुद सामने बैठकर महेन्द्रसे चिट्ठी लिखा ली। और उस चिट्ठीको लेकर दूसरे ही दिन वह राजलक्ष्मीको लिवाने चला गया।

राजलक्ष्मी समझ गईं कि यह चिट्ठी बिहारी खुद लिख लाया है, किन्तु फिर भी उनसे रहा नही गया। वे कलकत्ता चली आईं, और उनके साथ विनोदिनी भी आई।

राजलक्ष्मीने कलकत्ता आकर अपने घरकी जो दुरवस्था देखी,—चारो तरफ गन्दा, मैला-कुचैला, सब-कुछ उलटा-पुलटा अव्यवस्थित, तो बहूके प्रति उनका मन और भी मानो वक्र हो उठा।

किन्तु बहूका यह कैसा परिवर्तन! वह तो छायाकी तरह सासका अनुसरण कर रही है! बगैर कहे ही वह सासके हर काममे सहायता करने चली आती है। इससे कभी-कभी सास चचल होकर कहने लगती है, "ठहरो-ठहरो, तुमसे न होगा। जिस कामको जानती नही उसमें क्यो फजूल हाथ डालती हो?"

अब तो राजलक्ष्मीको पक्का निश्चय हो गया कि अन्नपूर्णाके चले जानेसे ही बहूके स्वभावमें इतना परिवर्तन हुआ है। और फिर वे सोचने लगी कि महेन्द्र सोचेगा, 'चाची जब थी तब बहूको लेकर मैं बडे आरामसे था, अब माके आते ही मेरा विरह-दु ख शुरू हो गया।' इससे तो यही साबित होगा कि अन्नपूर्णा उसकी हितैषिणी थी और मा उसके सुखमे अन्तराय है। उन्होने मन-ही-मन कहा, 'उँह, इससे मुझे क्या!'

आजकल दिनमे अगर कभी महेन्द्र आशाको बुलवाता है तो आशा आनेमें सङ्कोच करती है, किन्तु राजलक्ष्मी डाटकर कहती, "महेन बुला रहा है, कानसे सुनाई नही देता क्या ? ज्यादा लाड-प्यारसे यही तो होता है। जाओ, साग-तरकारी पीछे बनाती रहना।"

फिर वही सिलेट-पेन्सिल और 'चारुपाठ' का झूठा खेल। वही प्यारकी निराधार शिकायते और परस्पर एक दूसरेपर दोषारोप। दोनोमेसे किसके प्रेमका वजन भारी है, इसपर बिना युक्तिके जोरका तर्क-वितर्क , वर्षाके दिनको रात और चाँदनी रातको दिन बना देना। श्रान्ति और अवसादको बाहुबलसे जबरदस्ती हटा देनेकी कोशिश करना, और परस्परमे ऐसा अभ्यास करना कि मिलन जब कि शिथिल चित्तको आनन्द नही दे रहा तब भी क्षण-भरके लिए मिलन-पाशसे अलग होनेसे डरते है,– सम्भोगसुख भस्माच्छन्न है किन्तु फिर भी अन्य काममे जानेको पाँव नही उठते। भोग-सुखका यही तो भयानक अभिशाप है कि सुख अधिक दिन नही रहता, किन्तु बन्धन दुश्छेद्य हो उठता है।

ऐसी स्थितिमे एक दिन विनोदिनी आकर आशाके गलेसे लिपट गई, और बोली, "बहन, तुम्हारा सुहाग बना रहे। पर मै दुखिया हूँ तो क्या मेरी तरफ तुम्हे एक बार आँख उठाकर देखना भी नही चाहिए ?"

बचपन ही से मातृ-पितृहीन आशाको चाचा-चाचीके घर पराई-सी बनकर रहना पडा था, इसलिए लोगोसे मिलने-जुलने बोलने-चालनेमें उसे एक तरहका भीतरी सङ्कोच बना रहता था। वह डरती रहती कि शायद कोई उससे हेलमेल न करना चाहे, उपेक्षासे अनादर न कर बैठे। इसीसे विनोदिनी जब अपनी जुड़ी हुई भौंहे, तीक्ष्ण दृष्टि, गोल-मटोल सुन्दर मुँह और सुडौल यौवन लेकर इस घरमें उपस्थित हुई तब आशाको आगे बढकर उससे परिचय करनेका साहस नही हुआ।

आशाने देखा कि उसकी साससे विनोदिनीको जरा भी किसी तरहका सङ्कोच नही। और राजलक्ष्मी भी मानो खास तौरसे आशाको दिखा-दिखाकर विनोदिनीको मान देती रहती है और समय-असमयमे आशाको सुना-सुनाकर विनोदिनीकी उच्छ्वसित प्रशसा करती रहती है। आशाने यह भी देखा कि विनोदिनी घर-गृहस्थीके सब काममे निपुण है, प्रभुत्व चलाना मानो उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वभावसिद्ध है। दास-दासियोको काममे लगाने, डाटने-फटकारने और

आदेश देनेमे उसे लेशमात्र भी सङ्कोच नही। और यह सब देख-भालकर आशा विनोदिनीके आगे अपनेको बहुत ही तुच्छ समझने लगी।

उसी सर्वगुण-सम्पन्ना विनोदिनीने जब स्वय आगे आकर आशासे प्रेमकी प्रार्थना की तब सङ्कोचकी बाधासे टकराकर ही उस बालिकाका आनन्द चौगुना होकर उछल पडा, और उसी क्षण जादूगरके जादूके पेडकी तरह उन दोनोका प्रणय-बीज एक ही दिनमे अकुरित पल्लवित और पुष्पित हो उठा।

आशाने कहा, "आओ, बहन, आजसे हम-तुम दोनो सहेली हो जाये। बताओ अपने इस बहनापेका नाम क्या रक्खा जाय?"

विनोदिनी हँसती-हुई बोली, "क्या रक्खोगी, तुम्ही बताओ?"

आशाने 'गङ्गाजल' 'मौलसिरी' आदि बहुतसे अच्छे-अच्छे नाम बता दिये।

विनोदिनीने कहा, "ये सब नाम तो अब पुराने पड गये है, अब इन प्यारके नामोकी कोई कदर नही।"

आशाने कहा, "तो तुम्ही बताओ, तुम्हे क्या पसन्द है?"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "आँखकी किरकिरी।"

श्रुति-मधुर नामपर ही आशाका झुकाव था, किन्तु विनोदिनीकी सलाहसे उसे 'प्यारकी गाली'को ही ग्रहण करना पडा। विनोदिनीने आशाके गलेमे बाँह डालकर कहा, "आँखकी किरकिरी!" और फिर हँसते-हंसते वह लोटपोट हो गई।

११

आशाके लिए एक सङ्गिनीकी बडी जरूरत थी। प्रेमका उत्सव भी केवल दो आदमियोसे सम्पन्न नही होता,—सुखालापकी मिठाई बाँटनके लिए फालतू आदमीकी भी जरूरत होती है।

क्षुधित-हृदया विनोदिनी भी नववधूके नवीन प्रेमके इतिहासको उसी तरह कान फैलाकर पीने लगी जिस तरह शराबी ज्वालामय शराबको हाथ बढाकर पीता है। उसका मस्तिष्क उन्मत्त हो उठा और शरीरका रक्त जलने लगा।

दोपहरके सन्नाटेमे जब मा सो जाती, नौकर-चाकर नीचे विश्राम-शालामें जाकर आराम करते, महेन्द्र बिहारीकी ताडनासे कुछ देरके लिए कालेज चला

जाता और सूर्यकिरणोसे उत्तप्त नीलिमाके शेष प्रान्तसे चीलोका तीव्र कण्ठ अतिक्षीण स्वरमे क्वचित्-कभी सुनाई देता रहता, तब, आशा अपने निर्जन शयनागारमे तकियेपर अपने खुले बाल फैलाकर नीचेके बिस्तरपर लेट जाती और विनोदिनी अपनी छातीके नीचे तकिया दबाकर औधी पडकर उसके मुँहसे गुनगुन-गुजरित प्रेम-कहानी सुननेमे तल्लीन हो जाती। सुनते-सुनते उसके कर्णमूल लाल हो उठते और साँस जोर-जोरसे चलने लगती।

विनोदिनी खोद-बिनोदकर प्रश्नपर प्रश्न करके तुच्छसे तुच्छ बातको बाहर निकाल लेती, एक बातको बार-बार सुनती, घटना समाप्त हो जानेपर कल्पनाकी अवतारणा करती। कहती, 'अच्छा बहन, अगर ऐसा होता तो क्या होता, अगर वैसा होता तो तुम क्या करती ?' इन सब असम्भावित कल्पनाओके रास्ते आनन्दकी बातोको बढाते चले जानेमे आशाको भी एक तरहका विचित्र आनन्द मिलता।

विनोदिनी कहती, "अच्छा, तू एक बात तो बता, 'किरकिरी', तेरा अगर बिहारी-बाबूसे ब्याह होता तो ?"

आशा कहती, "नही, बहन, ऐसी बात तुम न कहा करो। छी छी, मुझे बडी शरम मालूम होती है। हाँ, तुमसे अगर होता तो बडा अच्छा होता! तुम्हारे साथ भी तो ब्याहकी बात चली थी!"

विनोदिनी कहती, "मेरे साथ तो बहुतोकी बहुत बात चली थी। नही हुआ सो अच्छा ही हुआ,—मै जैसी हूँ वैसी ही अच्छी हूँ।"

आशा उसकी बातका प्रतिवाद करती। विनोदिनीकी अवस्था उससे अच्छी है, इस बातको वह कैसे मान ले ? वह कहती, "एक बार तुम सोच तो देखो, बहन 'किरकिरी', अगर मेरे पतिसे तुम्हारा ब्याह हो जाता तो कैसा होता ? कसर तो जरा-सी रह गई थी, नही तो हो ही जाता।"

सो तो होता ही। नही हुआ तो क्यो ? आशाका यह कमरा, यह पलग सब-कुछ तो एक दिन उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था। विनोदिनी आशाके इस सुसज्जित शयनागारकी तरफ देखती है तो उससे यह बात भूलते नही बनती। इस घरमे आज वह एक अतिथि-मात्र है, आज उसे जगह मिल गई तो रह रही है, कल नही मिली तो चली जायगी।

तीसरे पहर विनोदिनी अपनी तरफसे चलाकर अपूर्व निपुणताके साथ आशाका

जूडा बाँध देती और सन्ध्या होते ही उसे खूब सजाकर पति-मिलनके लिए भेज देती। विनोदिनीकी कल्पना मानो अवगुण्ठिता होकर इस सुसज्जित वधूके पीछे-पीछे मुग्ध युवकके अभिसारमे निर्जन शयनागारमे प्रवेश करती। और किसी-किसी दिन तो आशाको वह जाने ही नही देती। कहती, "ओ फ्, जरा बैठो भी तो! तुम्हारे प्रियतम कही भागे थोडे ही जाते है। वे तो जगलके हिरन नही है, आँचलके पालतू हिरन है।" इस तरह नाना छलोसे वह आशाको रोक रखनेकी कोशिश करती।

महेन्द्र आशासे बहुत नाराज होकर कहता, "तुम्हारी सहेली तो जानेका नाम ही नही लेती, बात क्या है? वे देश कब जायेगी?"

आशा व्यग्र होकर कहती, "तुम मेरी 'किरकिरी'पर नाराज न हुआ करो। तुम नही जानते, तुम्हारी बाते सुननेका उसे कितना चाव है! वह कितने जतनसे मुझे सजाकर तुम्हारे पास भेजती है!"

राजलक्ष्मी आशाको काम नही करने देती थी। विनोदिनीने बहूका पक्ष लेकर उसे काममें लगाना शुरू कर दिया। विनोदिनीको जरा भी आलस नही, वह दिन-भर कुछ-न-कुछ करती ही रहती, और आशाको भी छुट्टी नही देना चाहती। विनोदिनी एकके बाद एक कामका ऐसा सिलसिला लगाये रखती कि उसमेंसे आशाका निकल भागना मुश्किल हो जाता। और फिर इस बातकी कल्पना करके कि आशाके पीतम छतके कोनेवाले सूने कमरेमे अकेले बैठे मारे गुस्सेके फडफडा रहे होगे, विनोदिनी मन-ही-मन तीव्र-कठोर हँसी हँसती रहती। आशा उद्विग्न होकर कहती, "अब मै जाऊँ, बहन किरकिरी, वे गुस्सा हो रहे होगे।"

विनोदिनी चटसे कहती, "जरा ठहरो, इसे खतम कर जाओ,—अब ज्यादा देर नही होगी।"

थोडी देर बाद आशा फिर फडफडाने लगती, कहती, "नही, बहन, अब वे सचमुच ही गुस्सा हो जायेगे,—मुझे छोड दो, मै जाऊँ।"

विनोदिनी कहती, "होने दो-न गुस्सा,—जरा नाराज हो जायेंगे तो क्या है! प्यारके साथ नाराजी बिना मिले तो प्यारका जायका ही नही मिलता, साग-तरकारी में नमक-मिर्चके बिना क्या मजा है,—प्यारमे भी चटपटे मसालेकी जरूरत पड़ती है, समझी कुछ!"

किन्तु नमक-मिर्चका जायका क्या है सो तो विनोदिनी ही समझ रही थी, सिर्फ साथमे उसके तरकारी नही थी। उसकी नसोमे मानो आग-सी जल उठी। वह जिधर भी देखती है, उसकी आँखोसे मानो चिनगारियाँ-सी बरसने लगती है। विनोदिनी गहरी साँस ले-लेकर सोचा करती, 'ऐसी सुखकी घर-गृहस्थी, ऐसे प्यारके पति! इस घरको तो मैं राजाका राज्य बना देती, ऐसे पतिको तो मैं चरणोका दास बना रखती। मेरे रहते क्या इस घरकी यह दशा होती, ऐसे आदमीका ऐसा हाल होने देती! मेरी जगह कहाँ-तो एक दुधमुँही बच्चीको खेलकी गुडियाको मिली है!' और इस भावावेगमे सहसा वह आशाके गलेसे लगकर कहने लगती, "बहन किरकिरी, बताओ न, बहन, कल तुमसे उनकी क्या-क्या बातें हुई थी? मैंने जो तुम्हे सिखाया था वैसा किया था? सच कहती हूँ, किरकिरी, तुम दोनोके प्यारकी बाते सुनती हूँ तो मेरी भूख-प्यास सब जाती रहती है।"

१२

महेन्द्र एक दिन नाराज होकर अपनी मासे बोला, "यह क्या अच्छी बात है, मा? पराये घरकी किसी युवती विधवाको अपने घर लाकर रखनेकी क्या जरूरत? मेरी तो इसमे कतई राय नही,—कौन जाने, कब कौन-सा सङ्कट आ खडा हो!"

राजलक्ष्मीने कहा, "है तो वो अपने बिपिनकी ही बहू, कोई गैर थोड़े ही है, मेरे पास रहती है तो क्या हो गया!"

महेन्द्रने कहा, "नही, मा, अच्छा नही हो रहा। मेरी रायसे उसे यहाँ रखना उचित नही।"

राजलक्ष्मी खूब अच्छी तरह जानती है कि महेन्द्रकी रायकी उपेक्षा करना आसान नही। उन्होने बिहारीको बुलाकर कहा, "बिहारी, तू एक बार महेनको समझाके कह तो सही कि बिपिनकी बहूके रहनेसे मुझे कितना आराम है। आखिर बुढापेमे मैं अकेली कितना करूँगी? तू तो जानता है, बेटा, वो गैर हो चाहे जो हो, अपनोसे तो आज तक मुझे ऐसी सेवा कभी नही मिली।"

बिहारी राजलक्ष्मीकी बातका कुछ जवाब न देकर सीधा महेन्द्रके पास पहुँचा, बोला, "महेन-भइया, विनोदिनीके विषयमे कुछ सोच रहे हो क्या?"

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "सोचते-सोचते तो मुझे रात-भर नीद नही आती।

अपनी भाभीसे पूछ देखो, आजकल विनोदिनीके ध्यानमे तो मेरे और-सब ध्यान भङ्ग हो रहे है।"

आशा मुँहसे तो कुछ बोल न सकी, सिर्फ घूँघटके भीतरसे मौन तर्जन करके रह गई।

बिहारीने कहा, "कहते क्या हो, द्वितीय 'विषवृक्ष'की तैयारी तो नही!"

महेन्द्रने कहा, "बात तो कुछ ऐसी ही है। अब उसे विदा करनेके लिए चुन्नीके प्राण फडफडा रहे है।"

घूँघटके भीतरसे फिर आशाकी आँखोने कुटिल कटाक्षसे महेन्द्रको डाट दिया।

बिहारीने कहा, "विदा कर दो तो फिर पुनरागमनमे क्या देर लगती है! विधवाका ब्याह कर दो-न, जहरके दाँत बिलकुल ही उखड जायेगे।"

महेन्द्र बोला, "विषवृक्षकी कुन्दका भी तो ब्याह करा दिया गया था!"

बिहारीने कहा, "खैर, इस उपमाको अभी रहने दो। विनोदिनीके विषयमें मै भी कभी-कभी सोचता हूँ। तुम्हारे यहाँ तो वह हमेशा नही रह सकती। और फिर, देशमे जैसा जगल देख आया हूँ, वहाँ भी तो यावज्जीवन उसे वनवासमे नही भेजा जा सकता,—इतना कठोर दण्ड सहा कैसे जायगा!"

विनोदिनी अब तक महेन्द्रके सामने नही निकली थी, किन्तु बिहारीने उसे देखा है। और देखते ही वह इतना समझ गया है कि यह नारी जगलमे डाल रखने लायक नही है। किन्तु, एक ही अग्निशिखा घरके प्रदीपमे और तरहसे जलती है और घरमे आग दूसरी तरहसे लगाती है,—यह बात भी महेन्द्रने न सोची हो सो बात नही। महेन्द्रने इस बातपर बिहारीकी खूब खिल्ली उडाई। और बिहारीने भी उसका जवाब दिया। किन्तु उसका मन समझ गया था कि यह नारी खिलवाडकी चीज नही, और न इसकी उपेक्षा ही की जा सकती है।

राजलक्ष्मीने विनोदिनीको सावधान कर दिया। उन्होने कहा, "देखो, बेटी, बहूसे तुम जो इतना हेलमेल रखती हो, उसे अपने पास उलझाये रहती हो,—ऐसा न किया करो। तुम गाँवकी रहनेवाली हो, आजकलका चाल-चलन तुम्हे नही मालूम। आखिर तुम खुद समझदार हो, सोच-समझकर चलना ही ठीक है।"

इसके बादसे विनोदिनी अत्यन्त आडम्बरके साथ आशाको अपनेसे दूर-दूर रखने लगी। कहती, "बहन, मै इस घरकी कौन हूँ! मुझ-जैसी गरीबिनको तो

अपनी आबरू बचाकर चलना चाहिए, नही तो किस दिन क्या हो जाय, कौन कह सकता है।"

आशा बहुत रोई-धोई, बहुत गिडगिडाई, मनानेकी काफी कोशिश की, किन्तु दृढप्रतिज्ञ विनोदिनी टससे मस न हुई। मनमे भरी बातोसे आशा आकण्ठ परिपूर्ण हो उठी, किन्तु विनोदिनीने एक न सुनी।

इधर महेन्द्रका बाहुपाश धीरे-धीरे शिथिल होता आ रहा था और उसकी मुग्ध दृष्टि भी मानो क्लान्तिसे घिरी आ रही थी। पहले उसे जो अनियम और उच्छृङ्खलता कौतुकजनक मालूम होती थी अब वह धीरे-धीरे उसे पीडा पहुँचाने लगी। आशाकी सासारिक अपटुतापर उसे क्षण-क्षणमे गुस्सा आने लगा, किन्तु मुँह खोलकर कुछ कहता नही। उसके कुछ न कहनेपर भी आशा भीतर-ही-भीतर अनुभव करती रहती है कि निरवच्छिन्न मिलनमे प्रेमकी मर्यादा म्लान होती आ रही है। महेन्द्रके लाड-प्यारमे अब कुछ बेसुरापन आने लगा है, कुछ तो झूठी ज्यादती होती है और कुछ आत्म-प्रवचना।

ऐसे समयमे भागनेके सिवा बचनेका कोई उपाय नही, विच्छेदके सिवा कोई दवा नही। स्त्रियोके स्वभावसिद्ध सस्कार-वश आशा आजकल महेन्द्रको अकेला छोडकर दूर-दूर रहनेकी कोशिश करती रहती है। किन्तु एक विनोदिनीके सिवा वह जाय भी तो किसके पास?

प्रणयकी उत्तप्त सुहाग-शय्यापर पडे-पडे, बहुत दिन बाद, अब महेन्द्रकी जरा आँख खुली; और धीरे-धीरे उसने अपने काम-काज और पढने-लिखनेमे ध्यान देते-हुए मानो जरा सजग होकर करवट बदला। अपनी डाक्टरी किताबोका उसने नाना असम्भव स्थानोसे उद्धार किया, उनकी धूल झाडी, और अचकन पतलून वगैरहको धूप दिखानेकी तैयारी करने लगा।

१३

आशाने जब देखा कि विनोदिनी किसी भी तरह हाथ नही आ रही तो उसने एक नई चाल चली। उसने विनोदिनीसे कहा, "बहन किरकिरी, तुम मेरे पतिके आगे निकलती क्यो नही? दूर-दूर क्यो भागी-भागी फिरती हो?"

आशाने कहा, "क्यो? मैने तो मासे सुना है, तुम कोई गैर नही हो।"

विनोदिनीने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "ससारमे अपना-पराया कोई भी नही। जो अपना समझता है वही अपना है, और जो गैर समझता है वह अपना होनेपर भी गैर है।"

आशाने अपने मनमे समझा कि इस बातका तो कोई जवाब नही। सचमुच ही उसके पति विनोदिनीके प्रति अन्याय करते है, वास्तवमे उसे गैर समझते है और अकारण ही उससे नाराज रहते है।

उस दिन रातको आशा अपने पतिसे जिद कर बैठी, "मेरी किरकिरीके साथ तुम्हे बोलना ही होगा।"

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "तुम्हारा साहस तो कम नही मालूम होता!"

आशाने कहा, "क्यो, इसमे डरकी क्या बात है?"

महेन्द्रने कहा, "तुम अपनी सखीके रूपका जैसा वर्णन किया करती हो, उससे तो वह खतरेसे खाली नही मालूम होती!"

आशाने कहा, "अच्छा मै सब सम्हाल लूंगी। तुम अपना मजाक रहने दो। उससे बोलोगे या नही सो बताओ?"

महेन्द्रमे विनोदिनीको देखनेका कोई कुतूहल ही न हो सो बात नही। यहाँ तक कि आजकल तो उसे देखनेके लिए कभी-कभी उसके आग्रह भी होने लगता है। किन्तु इस तरहका अनावश्यक आग्रह उसे स्वय उचित नही जचता।

हार्दिक सम्बन्धके विषयमे महेन्द्रका उचित-अनुचितका आदर्श साधारण लोगोकी अपेक्षा कुछ कडा था। पहले तो वह केवल इस डरसे कि कही माके अधिकारमे कोई खामी न आ जाये, अपने विवाहका प्रसङ्ग तक सुननेसे घबराता था; और आजकल आशाके साथ अपने सम्बन्धकी वह यहाँ तक रक्षा करना चाहता है कि अन्य स्त्रीके प्रति सामान्य कौतूहलको भी मनमे स्थान देना अन्याय समझता है। और फिर इस बातका उसके हृदयमे बड़ा गर्व है कि अपने प्रेमके सम्बन्धमे वह अत्यन्त सन्दिग्ध-शोधक और बहुत ही सच्चा-खरा है। यहाँ तक कि बिहारीको वह अपना मित्र कहता है इसलिए और किसीको मित्र ही नही मानना चाहता। और-कोई अगर उससे आकृष्ट होकर घनिष्ठता करने आता तो उसके प्रति मानो वह जबरदस्ती उपेक्षा-भाव दिखाता, और बिहारीके आगे उस अभागेके

विषयमे उपहास-तीव्र अवज्ञा प्रकट करके अन्य साधारणके प्रति अपनी अत्यन्त उदासीनता घोषित करने लगता। बिहारी इसपर आपत्ति करता तो महेन्द्र कहने लगता, "तुम कर सकते हो, बिहारी! जहाँ भी जाओ, तुम्हारे मित्रोकी कमी नही रहती, किन्तु मै चाहे जिसे 'मित्र' समझकर घनिष्ठता नही कर सकता।"

उसी महेन्द्रका मन आजकल बीच-बीचमें जब अनिवार्य व्यग्रता और कुतूहलके साथ इस अपरिचिताके पीछे अपने-आप दौडने लगता है तो वह स्वय अपने आदर्शके सामने मारे सङ्कोच और लज्जाके छोटा हो जाता है। और, इसका शेष नतीजा यह हुआ कि उसमें एक तरहकी झुँझलाहट पैदा हो गई और उसकी ताडनासे विनोदिनीको वह घरसे विदा कर देनेके लिए माके पीछे पड गया।

महेन्द्रने आशाकी बातका जवाब देते-हुए कहा, "रहने दो, चुन्नी! तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'से बात करनेकी मुझे न तो फुरसत है, न इच्छा है। पढनेके समयमे डाक्टरी किताबे पढता हूँ, और फुरसतके वक्त तुम हो,—इसमे अब तुम्हारी सखीके लिए गुजाइश ही कहाँ है जो तुम उसे लाना चाहती हो?"

आशाने कहा, "अच्छा अच्छा, मैं तुम्हारी पढाईके समयपर जरा भी दखल नही जमाऊँगी, मै अपने ही समयमेंसे थोडा-सा 'किरकिरी'को दे दूँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम तो दे दोगी, पर मै जो नहीं देना चाहता।"

आशा जो विनोदिनीको प्यार करती है, महेन्द्रका कहना है कि इससे उसके पति-प्रेममे त्रुटिका ही प्रमाण मिलता है। महेन्द्र अहकारके साथ कहता, 'मेरे समान अनन्यनिष्ठ प्रेम तुम्हारा नही है।' आशा इस बातको कतई स्वीकार नहीं करती, इसपर झगडती और रोती, किन्तु तर्कमे जीत नही पाती।

महेन्द्र अपने दाम्पत्य-राज्यमे विनोदिनीके लिए सूच्याग्र स्थान भी नही देना चाहता, और यह उसके लिए गर्वका विषय हो उठा। किन्तु, महेन्द्रका यह गर्व आशासे सहा नही जाता, फिर भी आज उसने पराजय स्वीकार करते-हुए कहा, "अच्छा तो ठीक है, मेरी ही खातिर तुम मेरी 'किरकिरी'से बोला करो।"

आशाके प्रति अपने प्रेमकी दृढता और श्रेष्ठता प्रमाणित करनेके बाद महेन्द्रने अन्तमें अनुग्रहपूर्वक विनोदिनीसे बोलना स्वीकार कर लिया, किन्तु इतना उसने पहलेसे कह रखा कि 'इसका मतलब यह नही कि तुम जब-है-तब मुझे परेशान करती रहो।'

दूसरे दिन तडके ही उठकर आशा दौडी-दौडी विनोदिनीके कमरेमे पहुँची और सोती-हुई विनोदिनीसे लिपट गई। विनोदिनीने चौंककर कहा, "यह क्या! आज यह क्या गजब हुआ जो चकोरी आज चाँदको छोडकर मेघके दरबारमें!"

आशाने कहा, "तुम्हारी ये सब काव्य-कविताकी बाते मुझे नही आती, बहन, क्यो फजूलमे घूरेमे मोती बखेर रही हो! जो तुम्हारी बातका जवाब दे सकता है उसे जाकर सुनाओ-न, देखूं!"

विनोदिनीने कहा, "आखिर वो रसका रसिक है कौन?"

आशाने कहा, "तुम्हारे देवरजी। नही, मजाक नही, वे तुमसे बोलनेके लिए फड़फडा रहे हैं।"

विनोदिनी मन-ही-मन बोली, 'स्त्रीके हुकमसे मेरी पुकार हुई है, और मुझे ऐसा समझ लिया है कि मैं सुनते ही दौडी जाऊँगी!' विनोदिनी किसी भी तरह राजी नही हुई। और आशाको इससे पतिके आगे नीचा देखना पडा।

महेन्द्र भीतर-ही-भीतर क्रुद्ध हो उठा। उसके आगे आनेमें दूसरी तरफसे आपत्ति! उसे औरोकी तरह साधारण आदमी समझ लिया! उसकी जगह और कोई होता तो अब तक खुद आगे बढकर नाना कौशलसे विनोदिनीसे बोल-चाल और मेल-जोल कर लेता। महेन्द्रने इसकी कभी कोशिश तक नही की। इतने ही से क्या विनोदिनीको उसका परिचय नही मिल गया? विनोदिनी यदि एक बार उसे अच्छी तरह जान जाय, तो अन्य पुरुषोमे और महेन्द्रमे कितना अन्तर है सो अच्छी तरह समझ जाय।

विनोदिनीने भी दो दिन पहले क्रोधके साथ मन-ही-मन कहा था, 'इतने दिनोसे मैं इस घरमे हूँ,—महेन्द्र कभी मुझे देखने तककी कोशिश नही करता! जब मै बुआजीके कमरेमे रहती हूँ तब किसी बहानेसे वह माके पास भी नही आता। आखिर इतनी उपेक्षा, इतनी उदासीनता क्यो? मै क्या मनुष्य नही, मैं क्या नारी नही! अगर एक बार भी मेरा परिचय मिल जाता, तो समझ जाता कि उसकी 'लाड-प्यारकी चुन्नी' मे और विनोदिनीमे क्या अन्तर है!'

आशाने पतिके आगे प्रस्ताव रखा, "आँखकी किरकिरीको मै यह कहकर अपने कमरेमें ले आऊँगी कि तुम कालेज चले गये हो, और इस बीचमे तुम बाहरसे अचानक आ जाना,—बस, फिर वह अपने-आप काबू हो जायगी।"

महेन्द्र बोला, "आखिर किस कसूरपर बेचारीको ऐसी कड़ी सजा देना चाहती हो?"

आशाने कहा, "नही, सचमुच ही मुझे उसपर बडा गुस्सा आ रहा है। तुमसे मिलनेमे भी उसे आपत्ति! उसकी प्रतिज्ञा मैं तोड़ूँगी तब छोड़ूँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी प्रिय सखीको देखे बिना मैं मरा थोड़े ही जाता हूँ। मैं इस तरह चोरी-चोरी नही देखना चाहता।"

आशा बडे अनुनयके साथ महेन्द्रका हाथ पकडकर बोली, "तुम्हे मेरे कण्ठकी सौगन्द, एक दफे तुम्हे मेरी बात माननी ही पड़ेगी। जैसे भी हो, एक बार उसका घमण्ड चूर करना ही है,—फिर तुम्हारी तबीयत आये सो करना।"

महेन्द्रने कुछ जवाब नही दिया। उसे चुप देखकर आशाने कहा, "तुम्हे मेरे प्यारकी कसम, मेरे प्यारे हो-न! मेरी बात नही रक्खोगे?"

महेन्द्रका भीतरी आग्रह उत्तरोत्तर प्रबल होता जा रहा था। और इसीलिए उसने जरूरतसे ज्यादा उदासीनता दिखाते-हुए मुश्किलसे अपनी सम्मति दे दी।

शरद्‌ऋतुके स्वच्छ निस्तब्ध मध्याह्नमे विनोदिनी महेन्द्रके निर्जन कमरेमे बैठी आशाको कारपेटपर कढाईका काम सिखा रही थी और आशा अन्यमनस्क होकर बार-बार दरवाजेकी तरफ देखती-हुई बुनाईमे गलती करके विनोदिनीके आगे अपना असाध्य अपटुत्व प्रकट कर रही थी।

अन्तमे विनोदिनीने झुँझलाकर आशाके हाथसे कारपेट छीनकर अलग फेक दिया और कहा, "बस रहने दो, तुमसे न होगा,—मुझे काम है, मै जाती हूँ।"

आशाने कहा, "जरा और बैठो, अबकी बार और देख लो, मैं गलती नही करूँगी।" इतना कहकर उसने कारपेट उठा लिया, और कढाई शुरू कर दी।

इतनेमे चुपकेसे दबे-पाँव विनोदिनीके पीछे दरवाजेके पास महेन्द्र आकर खड़ा हो गया। और आशा कारपेटसे निगाह न हटाकर धीरे-धीरे हँसने लगी।

विनोदिनीने कहा, "अचानक हँसीकी कौनसी बात याद आ गई?"

आशासे रहा नही गया। वह खिलखिलाकर हँस पडी और हाथका कारपेट विनोदिनीके ऊपर फेककर बोल उठी, "नही, बहना, तुमने ठीक ही कहा था, मुझसे यह नही होनेका।" और फिर विनोदिनीके गलेसे लिपटकर पहलेसे दूने जोरसे हँसने लगी।

विनोदिनी पहलेसे ही सब समझ रही थी। आशाके चाञ्चल्य और हाव-भावसे ही उसने ताड लिया था कि कौन पीछे आकर चुपचाप खडा हुआ है। उससे कोई बात छिपी नही थी, फिर भी निहायत सरल और निरीह बनकर जान-बूझकर उसने आशाके इस अत्यन्त क्षीण जालमे अपनेको फँसा दिया।

महेन्द्रने भीतर घुसकर कहा, "हँसीका कारण जाननेसे मै ही अभागा क्यो वंचित रह जाऊँ ?"

विनोदिनी चौककर माथेका पल्ला सम्हालती-हुई उठना ही चाहती थी कि आशाने उसका हाथ पकड लिया।

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "या तो आप बैठिये, मै जाता हूँ,—या फिर आप भी बैठिये, मै भी बैठता हूँ।"

विनोदिनीने साधारण स्त्रियोकी तरह आशाके हाथसे अपना हाथ खीचकर कोलाहलके साथ लज्जाकी धूम नही मचाई। उसने सहज-स्वाभाविक सुरमे ही कहा, "सिर्फ आपके अनुरोधसे ही बैठती हूँ, पर मन-ही-मन आप मुझे श्राप न दीजियेगा।"

महेन्द्रने कहा, "पर, ऐसा श्राप तो मै जरूर दूँगा कि आपमे बहुत देर तक चलनेकी शक्ति न रहे।"

विनोदिनीने कहा, "उस श्रापसे मै नही डरती। कारण आपकी 'बहुत देर' बहुत ज्यादा देर नही होगी। और अब तक तो शायद उतनी देर हो भी चुकी होगी।" इतना कहकर उसने फिर उठनेकी कोशिश की। किन्तु आशाने उसका फिर हाथ पकड लिया, बोली, "तुम्हे मेरी सौगन्द है, किरकिरी, बैठो जरा।"

१४

आशाने महेन्द्रसे पूछा, "सच-सच बताना, मेरी 'किरकिरी' तुम्हे कैसी लगी ?"

महेन्द्रने कहा, "बुरी नही लगी।"

आशाने अत्यन्त खिन्न होकर कहा, "तुम्हें तो कोई पसन्द ही नही आती।"

महेन्द्रने कहा, "सिर्फ 'एक'को छोडकर।"

आशाने कहा, "अच्छा, उससे जरा और बाते होने दो अच्छी तरह, फिर देखूँगी पसन्द आती है या नही !"

महेन्द्रने कहा, "अब फिर बाते ! तो अब शायद बराबरके लिए यह सिलसिला जारी हो गया !"

आशाने कहा, "भद्रताके लिहाजसे भी तो आदमीके साथ बात करनी पडती है। एक दिनके परिचयके बाद ही अगर बातचीत बन्द कर दोगे तो 'किरकिरी' अपने मनमे क्या समझेगी? तुम्हारा तो सब-कुछ निराला होता है। और कोई होता तो ऐसी स्त्रीसे बात करनेके लिए खुशामद करता फिरता, और एक तुम हो जो समझते हो कि कहाँकी आफत आ पडी।"

अन्य लोगोकी अपेक्षा अपनेमे इस प्रभेदकी बात सुनकर महेन्द्रको बडी खुशी हुई। बोला, "अच्छा तो ठीक है, प्रियतमे! इसमे इतने चचल होनेकी क्या बात है। मेरे लिए भागनेकी तो कोई जगह नही, और तुम्हारी सखी भी कही भागी नही जाती, लिहाजा बीच-बीचमे मिलाप हुआ ही करेगा, और मिलाप होनेपर आलाप करनेकी भद्रता भी पालन की जायगी,—तुम्हारे पतिमे कमसे कम इतना ज्ञान तो है ही।"

महेन्द्र मन-ही-मन समझता था कि विनोदिनी अब बराबर किसी-न-किसी बहानेसे उसके सामने आयेगी ही। गलत समझता था बेचारा। विनोदिनी उसके आसपास भी नही फटकती, और न कभी कही अचानक जाते-आतेमे ही दिखाई देती है।

महेन्द्र इस डरसे कि कही उसकी तरफसे कुछ व्यग्रता न प्रगट हो जाय, स्त्रीके आगे विनोदिनीका प्रसङ्ग तक नही छेड सकता। बीच-बीचमे विनोदिनीका सङ्ग पानेके लिए अपनी स्वाभाविक और साधारण इच्छाको छिपाने और दमन करनेमें महेन्द्रकी व्यग्रता मानो उत्तरोत्तर बढती हो जाती है। और उसपर विनोदिनीके उपेक्षा-भावने उसे और भी उत्तेजित कर दिया।

विनोदिनीसे भेट होनेके दूसरे दिन महेन्द्रने मानो प्रसङ्गवश हँसी-हँसीमें आशासे पूछा था, "अच्छा, तुम्हारा अयोग्य पति तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'को कैसा लगा?"

प्रश्न करनेके पहले ही आशासे इस बारेमे उच्छ्वासपूर्ण विस्तृत रिपोर्ट मिलेगी, महेन्द्रको ऐसी दृढ प्रत्याशा थी। किन्तु उसके लिए सब्र करनेपर भी जब कोई फल नही मिला तब उसे हँसी-हँसीमे यह प्रश्न उठाना पड़ा।

आशा बडी मुश्किलमें पड गई। 'किरकिरी'ने तो इस विषयमें कोई बात ही नही कही! इससे अपनी सखीपर उसे बहुत झुँझलाहट भी आई थी।

आशाने पतिसे कहा, "ठहरो, पहले दो-चार दिन मिलने-जुलने तो दो, तब तो कहेगी। कलका मिलाप था ही कितनी देरका, और बात ही क्या हुई थी"

इससे भी महेन्द्र कुछ निराश हुआ और विनोदिनीके सम्बन्धमे निश्चेष्टता दिखाना उसके लिए और भी मुश्किल हो गया।

इस वार्तालापके बीचमे बिहारी आ धमका , और आते ही पूछ उठा, "क्या बात है, महेन-भइया, आज तुमलोगोमे किस बातपर बहस चल रही है?"

महेन्द्रने कहा, "देखो तो, भाई, तुम्हारी भाभीने कुमुदिनी या प्रमोदिनी न-जाने किससे 'मछलीका काँटा' या 'बालोकी डोरी' क्या-तो सहेला जोडा है, लिहाजा मुझे भी उसके साथ 'चुरुटकी राख' या 'दिआसलाईकी सीक' नामसे कुछ-न-कुछ जोडना पडेगा! बोलो भला, यह भी कोई बात है!"

आशाके घूँघटके भीतर दाम्पत्य-कलहके मौन बादल गरज उठे ; और शायद आँखोमे बिजली भी चमक उठी हो तो आश्चर्य नही। बिहारी क्षण-भर चुपचाप खडा महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखता रहा, फिर हँसकर बोला, "भाभी, लक्षण अच्छे नही दिखाई देते! ये सब तुम्हे बहलानेकी बाते है। तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'को मैंने देखा है। और, और-भी जरा जल्दी-जल्दी देख सकूँ तो उसे मै हादसा, मेरा मतलब दुर्घटना, नही समझूँगा,—यह मै शपथपूर्वक कहता हूँ। किन्तु, महेन-भइया जब कि इतने आडम्बरके साथ साफ इनकार कर रहे है, तो, यह तो बड़े सन्देहकी बात मालूम होती है।"

महेन्द्र और बिहारीमे बहुत ज्यादा अन्तर है, आशाको इस बातका और-एक प्रमाण मिल गया।

अकस्मात् महेन्द्रको फोटोग्राफी सीखनेका शौक चर्रा उठा। पहले उसने एक बार फोटोग्राफी सीखना शुरू करके छोड दिया था। अब फिर कैमरेकी मरम्मत कराके फोटो उतारना शुरू कर दिया। घरके नौकर-चाकर तक सबकी तसवीरे खीचने लगा वह।

आशा जिद कर बैठी, "तुम्हे 'किरकिरी'की भी तसवीर खीचनी होगी।"

महेन्द्रने अत्यन्त सक्षेपमे कह दिया, "अच्छा।"

किन्तु 'किरकिरी'ने उससे भी सक्षेपमे कह दिया, ...कर सकरुण अभियोगकी आशाको फिर एक कौशल रचना पड़ा, और वह शुरूसे ... असङ्गत कोई बात न रहा। तय हुआ कि दोपहरको उसे वह अपने कमरेमे ले ... तरफसे समुचित किसी कदर सुला लेगी ; और फिर महेन्द्र चुपकेसे आकर उसी अवस्थामें ... लगी ! तसवीर उतार लेगा। इस तरह आशा अपनी जिद्दिन सहेलीकी सारी हेकडी धूलमें मिला देगी।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि विनोदिनी कभी दिनमें सोती नही, किन्तु आशाके कमरेमे आकर उस दिन उसकी आँखोमें नीद भर आई। बदनपर एक लाल दुशाला डालकर खुली खिडकीकी तरफ मुँह करके वह हाथोपर सिर रखकर ऐसे सुन्दर ढगसे सो गई कि देखते ही महेन्द्रको कहना पडा कि 'मालूम होता है, मानो फोटो खिचवानेके लिए जान-बूझकर तैयार होकर ही सोई है।'

महेन्द्रने दबे-पाँव चुपकेसे कैमेरा निकाल लिया। किस तरफसे फोटो लेनेसे अच्छा होगा, यह तय करनेके लिए पहले तो वह चारो तरफसे बहुत देर तक उसे अच्छी तरह देखता रहा। फिर आर्टके लिहाजसे उसे दबे-पाँव सिरहानेके पास जाकर उसके खुले-हुए बालोको जरा इधर-उधर कर देना पडा, और पसन्द न आनेपर फिर उसमे सशोधन कर लेना पडा। वह आशाके कानमे बोला, "पैरोके पास दुशालेको जरा बाईं तरफ हटा दो।"

अपटु आशाने चुपकेसे कानमे कहा, "मुझसे ठीक करते नही बनेगा,—मै नीद और छुटा दूँगी, तुम्ही हटा दो।" महेन्द्रने हटा दिया।

अन्तमे फोटो उतारनेके लिए महेन्द्रने ज्योही कैमेरामे कॉच डाला त्योही मानो किसी शब्दसे विनोदिनी जागकर हिल उठी और एक दीर्घनिश्वास लेकर भडभडाकर उठ बैठी। आशा जोरसे हँस पडी। विनोदिनी बहुत नाराज हुई और अपने ज्योतिर्मय नयनोसे महेन्द्रपर अग्निवाण बरसाती-हुई बोली, "यह आपका बडा अन्याय है!"

महेन्द्रने कहा, "अन्याय है, इसमें कोई सन्देह नही। किन्तु चोरी भी की और चोरीका माल भी हाथ न आया,—'गुनाह और बेलज्जत' होनेसे मेरा तो इहलोक और परलोक दोनो ही बिगड गया। लिहाजा, अन्यायको पूरा कर लेने दीजिये, फिर आप जो चाहे सो दण्ड दे सकती है।"

आशा बडी मुश्किल[illegible] पीछे पड गई। तसवीर उतारी गई। किन्तु पहली नही कही ! इससे [illegible]। [illegible]हाजा, चित्रकारको दूसरे दिन और-एक तसवीर बगैर आशाने [illegible]डा। उसके बाद दोनो सखियोको एकसाथ बिठाकर सखीत्वके [illegible]देगी। [illegible]-स्वरूप और-एक फोटो उतरवानेमे विनोदिनी 'ना' नही कह सकी। बोली, "लेकिन यही आखिरी फोटो है !"

सुनते ही महेन्द्रने उस प्लेटको बिगाड दिया, और इस प्रकार कई बार फोटो खीचते-खिचवाते मेल-मिलाप बहुत दूर अग्रसर हो गया।

१५

बाहरसे हिलाते-डुलाते रहनेसे राखमे दबी आग फिरसे धधक उठती है। नव-दम्पतिका प्रेमोत्साह इधर जो-कुछ थोडा-बहुत म्लान होता आ रहा था, तृतीय पक्षकी चोट खा-खाकर वह फिर जाग उठा।

आशामे हास्यालाप करनेकी शक्ति नही थी, किन्तु विनोदिनी इस दिशामे उसे पर्याप्त खुराक दे सकती थी, इसलिए विनोदिनीके अन्तरालमे आशाको एक जबरदस्त आश्रय मिल गया। महेन्द्रको हरवक्त आमोद-प्रमोदकी उत्तेजनासे ताजा बनाये रखनेमे आशाको अब विशेष उद्यम नही करना पडता।

ब्याहके बाद कुछ ही दिनोमे महेन्द्र और आशा दोनोने एक दूसरेके प्रति अपनेको नि शेष कर डालनेका डौल कर लिया था,—इनका प्रेमका सङ्गीत एकदम उच्चस्वरमे निखादसे ही शुरू हुआ था, ब्याज न खाकर इनलोगोने मूलधनको ही खतम करनेकी ठान ली थी। आखिर इस पागलपनकी बाढको ये लोग अपने रोजमर्राकी गृहस्थीके स्रोतमे कैसे परिणत करते ? नशा करनेके बाद ही बीचमे जो अवसाद आता है उसे दूर करनेके लिए आदमी फिर जो नशा चाहता है, वह नशा आशा कहाँसे जुटावे ? इतनेमे विनोदिनीने नशेका एक नया और रगीन प्याला भरकर आशाके हाथमे दे दिया। और इससे अपने प्रियतमको प्रसन्न-प्रफुल्ल देखकर आशाको भी आराम मिला।

अब उसे अपनी तरफसे चेष्टा करनेकी जरूरत नही रही। महेन्द्र और विनोदिनी दोनो जब उपहास-परिहास करते, आशा तब उनकी हँसीमे शरीक हो जाती, और जी खोलकर हँसती रहती। ताशके खेलमे महेन्द्र जब आशाको

बुरी तरह धोखा देता तब वह विनोदिनीको पच मारकर सकरुण अभियोगकी अवतारणा करती , और महेन्द्र जब आशासे कोई मजाक या असङ्गत कोई बात कर बैठता तो आशा इसी प्रत्याशामे रहती कि विनोदिनी उसकी तरफसे समुचित उत्तर देकर उसकी बात रख ले। इस तरह इन तीनोकी सभा रोज जमने लगी।

किन्तु इसका मतलब यह नही कि विनोदिनीके काममे किसी तरहकी शिथिलता आ गई हो। रसोई-पानी, घरका और-सब काम-काज, राजलक्ष्मीकी सेवा, सब-कुछ पूरी तरह कर चुकनेके बाद तब कही वह इस आमोद-प्रमोदमे शामिल होती थी।

महेन्द्र अस्थिर होकर कहता, "नौकर-नौकरानियोसे काम न लेकर तुम उन्हे मिट्टी कर दोगी मालूम होता है।"

विनोदिनी कहती, "काम न करके खुद मिट्टी होनेकी अपेक्षा यह अच्छा है। जाओ, तुम कॉलेज जाओ।"

महेन्द्र कहता, "आज बदलीके दिन—"

विनोदिनी कहती, "सो नही होगा, गाडी तैयार है, तुम्हे जाना ही होगा।"

महेन्द्र कहता, "मैंने तो गाडीकी मनाही कर दी थी।"

"मैंने कह दिया था।"—कहती-हुई विनोदिनी महेन्द्रके कालेज जानेके कपड़े उठा लाती।

महेन्द्र कहता, "तुम्हे तो राजपूतोके घर जन्म लेना था। युद्ध-यात्राके समय पतिको अपने हाथसे कवच पहनाकर विदा करती।"

आमोद-प्रमोदके प्रलोभनमे कालेजसे छुट्टी ले लेना या पढनेसे जी चुराना विनोदिनीको कतई बरदाश्त न था, इन सब बातोमे वह कभी भी शह नही देती। उसके कठिन शासनसे दिन-दोपहरका आमोद-प्रमोद बिलकुल उठ गया, और इस तरह सायकालका अवकाश महेन्द्रके लिए अत्यन्त रमणीय और लोभनीय हो उठा। उसका दिन मानो अपने अवसानके लिए प्रतीक्षा-सा करता रहता।

पहले कभी-कभी ठीक समयपर रसोई नही बनती थी, और इस बहानेसे महेन्द्र बडे मजेसे कालेज जानेसे रुक जाता था। किन्तु अब विनोदिनी स्वय व्यवस्था करके महेन्द्रके लिए कालेजके समयसे बहुत पहले ही रसोई तैयार करा देती है, और ज्योही वह खा चुकता त्योही उसके पास खबर पहुँचती कि 'गाड़ी तैयार है।'

पहले उसके कपड़ोका यह हाल था कि कौन-सा धोबीके यहाँ गया है और कौन-सा किस आलमारीके किस कोनेमे पडा है, बहुत देर तक इस बातका पता ही न लगता था ; और अब सब कपडे बाकायदा तैयार मिलते है, किसीमे जरा सिकुडन तक देखनेको नही मिलती।

शुरू-शुरूमे विनोदिनी इन सब विशृङ्खलाओके लिए महेन्द्रके सामने आशाको हँसी-हँसीमे डाट दिया करती थी, और महेन्द्र भी आशाके इस निरुपाय अपटुत्वपर स्नेहसे हँस दिया करता था। अन्तमे सखीत्वके वात्सल्यमे आकर विनोदिनीने आशाका कर्तव्य-भार उसके हाथसे छीनकर अपने हाथमे ले लिया , और फिर तो घरका रूप ही बदल गया।

अचकनका कोई बटन टूट गया है, आशासे कुछ करते नही बन रहा। विनोदिनी जल्दीसे आकर हतबुद्धि आशाके हाथसे अचकन छीनकर चटसे उसमें बटन टाँक देती। एक दिन महेन्द्रके लिए रखे-हुए भोजनमे बिल्लीने आकर मुँह डाल दिया, आशा सोचके मारे व्याकुल हो गई, इतनेमे विनोदिनीने रसोईमें जाकर न-जाने कैसे क्या-क्या खटराग किया कि उस दिनका काम चल गया, और आशा आश्चर्यसे दग रह गई।

इस तरह महेन्द्र खाने-पीनेमे, पहनने-ओढनेमे, काम और विश्राममें सर्वत्र ही नाना रूपमे विनोदिनीके हाथकी सेवाका अनुभव करने लगा। विनोदिनीके बनाये-हुए पशमी जूते उसके पाँवोमे और विनोदिनीके हाथका बुना-हुआ ऊनी गुलूबन्द उसके गलेमे मानो कोमल मानसिक सस्पर्शके समान लिपटा-हुआ है। आशा आजकल सखीके हाथके प्रसाधनसे सुन्दर ढगसे सज-धजकर और सुगन्ध लगाकर महेन्द्रके पास पहुँचती है। उसमें मानो कुछ तो आशाका अपना होता और कुछ और-एक जनीका। अपने साज-सिंगार और सौन्दर्य-आनन्दमे गगा-यमुना के समान मानो वह अपनी सखीके साथ एकमेक हो गई हो।

बिहारीका आजकल पहले जैसा आदर नही रहा,—उसे अब कोई बुलाता ही नही। बिहारीने महेन्द्रको लिख भेजा था कि 'कल रविवार है, दोपहरको आकर मै माके हाथकी रसोई खाऊँगा।' महेन्द्रने देखा कि रविवार बिलकुल मिट्टी हो जायगा। उसने चटसे लिख भेजा, 'रविवारको एक खास कामसे मुझे बाहर जाना है।"

फिर भी बिहारी खाने-पीनेके बाद एक बार महेन्द्रके घरकी खबर लेने चला आया। नौकरसे पता चला कि महेन्द्र घरमे ही है, बाहर नही गया। जीनेसे ही "महेन-भइया" पुकारता-हुआ वह महेन्द्रके कमरेमे पहुँच गया। महेन्द्र झेंप गया, बोला, "सिरमे बडे जोरका दर्द हो रहा है।" और तकियेके सहारे लेट गया। आशा इस बातको सुनकर और महेन्द्रके चेहरेपर बेचैनीका भाव देखकर घबरा उठी, सोचने लगी, क्या करना चाहिए। और कर्तव्य-निर्णयके लिए विनोदिनीका मुँह ताकने लगी।

विनोदिनी अच्छी तरह जानती थी कि मामला चिन्ताजनक नही है, फिर भी अत्यन्त उद्विग्न होकर बोली, "बहुत देरसे बैठे हो, जरा सो जाओ। मै 'ओडिकोलन' लिये आती हूँ।"

महेन्द्रने कहा, "रहने दो, जरूरत नही।"

विनोदिनी नही मानी, वह जल्दीसे जाकर 'ओडिकोलोन' और बरफ-पानी मिलाकर ले आई, और आशाके हाथमे भीगा-हुआ रूमाल थमाती-हुई बोली, "लो, महेन्द्र-बाबूके माथेसे बाँध दो।"

महेन्द्र बार-बार कहता रहा, 'रहने दो-न! रहने दो-न!' और बिहारी किसी तरह हँसी रोककर चुपचाप बैठा अभिनय देखने लगा। महेन्द्र गर्वके साथ सोचने लगा, 'बिहारी जरा देखे तो, मेरी कितनी कदर है!'

आशा बिहारीके सामने लज्जा-कम्पित हाथोसे अच्छी तरह पट्टी नही रख सकी। ओडिकोलोनकी बूँद लुढककर महेन्द्रकी आँखमे गिर पडी। विनोदिनीने आशाके हाथसे रूमाल छीनकर अपने निपुण हाथोसे सावधानीसे पट्टी बाँध दी, और दूसरा एक कपडा 'ओडिकोलोन'के पानीमे भिगोकर थोडा-थोड़ा पट्टीपर निचोड़ दिया। और आशा घूँघटको और भी जरा नीचा करके पखेसे हवा करने लगी।

विनोदिनीने स्निग्ध कण्ठसे पूछा, "कुछ आराम मिल रहा है?"

इस तरह अपने कण्ठस्वरसे मधु उँडेलकर विनोदिनीने कनखियोसे एक बार बिहारीके मुँहकी तरफ देख लिया। देखा, बिहारीकी आँखें कौतुकसे हँस रही हैं। सारा मामला उसके लिए प्रहसन है। विनोदिनीने समझ लिया कि इस आदमीको भरमाना आसान नही, कुछ भी इसकी नजरोसे छिपाया नही जा सकता।

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "विनोदा-भाभी, इस तरहकी सेवा-शुश्रूषा मिलती रही तो रोग घटेगा नही, बल्कि बढनेकी ही ज्यादा सम्भावना है।"

विनोदिनीने कहा, "सो भला हम मूरख स्त्रियॉ क्या जाने! आपलोगोके डाक्टरी-शास्त्रमे शायद ऐसा ही लिखा होगा!"

बिहारीने कहा, "हॉ, सो तो है ही। सेवा देखकर मेरे सिरमे भी दर्द शुरू हो रहा है। लेकिन मेरे-जैसे जले-भुने माथेको बिना इलाजके चटपट अच्छा हो जाना पडता है। महेन-भइयाके माथेमे जोर ज्यादा है।"

विनोदिनीने भीगी-हुई पट्टीको उतारते-हुए कहा, "जरूरत क्या है मुझे, मित्रका इलाज मित्र ही करे।"

बिहारी रगढग देखकर भीतर-ही-भीतर झुँझला उठा था। इधर कई दिन वह अध्ययनमे व्यस्त था, इस बीचमे महेन्द्र विनोदिनी और आशाने मिलकर अपने-आप इतनी उलझन पैदा कर ली है, यह उसे नही मालूम था। आज उसने विनोदिनीको विशेष रूपसे देखा, और विनोदिनीने भी उसे अच्छी तरह देख लिया।

बिहारी कुछ तीक्ष्ण स्वरमे बोल उठा, "ठीक बात है। मित्रका इलाज मित्र ही करेगा। मै ही सिर-दर्द लाया था, मै ही उसे साथ लेता जाऊँगा। 'ओडिकोलोन' का अब फजूलखर्च मत कीजिये।" और फिर आशाकी ओर देखकर बोला, "भाभी, इलाज करके बीमारी अच्छी करनेकी अपेक्षा बीमारी न होने देना ही अच्छा है।"

१६

बिहारीने सोचा, 'अब दूर रहनेसे काम नही चलेगा, जैसे भी हो, इनके बीचमे मुझे भी एक स्थान लेना पड़ेगा। इनमेसे कोई भी मुझे नही चाहेगा, किन्तु फिर भी मुझे रहना ही पडेगा।'

बिहारी आह्वान-अभ्यर्थनाकी परवाह किये बिना ही महेन्द्रके व्यूहमे प्रवेश करने लगा। एक दिन विनोदिनीसे बोला, "देखो, विनोदा-भाभी, इस लड़केको पहले तो इसकी माने मिट्टी किया, फिर मित्रने मिट्टी किया, अब स्त्री मिट्टी कर रही है,—कमसे कम तुम तो उस गुटमे न मिलकर कोई नया रास्ता दिखाओ, दुहाई है तुम्हें!"

महेन्द्रने कहा, "मतलब?"

बिहारीने कहा, "मतलब यह कि मुझ-जैसे आदमीको, जिसे कोई कभी पूछता तक नही—"

महेन्द्र बीचमे ही बोल उठा, "उसे भले ही मिट्टी कर दो। अरे, मिट्टी होनेकी उम्मेदवारी इतनी आसान नही, भई, इतनी आसान नही। दरखास्त पेश कर देनेसे ही काम नही बन जाता।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "मिट्टी होने-लायक शक्ति भी तो होनी चाहिए, बिहारी-बाबू!"

बिहारीने कहा, "शक्ति तो, भाभीजी, अपने गुणसे न हो तो और-किसीके हाथके गुणसे भी आ जाती है। एक बार शह देकर आजमाना चाहो तो आजमा सकती हो,—बन्दा तैयार है।"

विनोदिनीने कहा, "पहलेसे तैयार होकर आनेसे कुछ नही होता, बिहारी-बाबू, इसमें असावधान रहना पडता है। क्यो बहन किरकिरी, ठीक है-न? अपने इन देवरका भार तुम्ही ले लो-न, बहन, अपने ऊपर!"

आशाने उसे उगलियोसे धक्का देकर जरा ढकेल दिया। और बिहारीने भी इस मजाकमे भाग नही लिया।

आशाके सम्बन्धमें कोई भी हँसी-मजाक बिहारीको सहन नही होगा, इतना विनोदिनी जानती थी। किन्तु बिहारी आशाकी श्रद्धा करता है और विनोदिनीको हलका करना चाहता है, यह बात विनोदिनीके चुभ गई। उसने फिर आशासे कहा, "तुम्हारा यह भिक्षुक देवर मेरी आडमे तुम्हीसे कुछ चाहता है। कुछ दे भी दो, किरकिरी!"

आशा बहुत ही झुँझला उठी। क्षण-भरके लिए बिहारीका चेहरा सुर्ख हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने मुसकराते-हुए कहा, "यह खूब रहा, मेरी पारी आती है तो दूसरोपर टाल दी जाती है, और महेन-भइयाके साथ हाथो-हाथ नगद कारबार, क्यो?"

विनोदिनी समझ गई कि बिहारी सब मिट्टी करने ही आया है, और सोचने लगी, 'बिहारीके सामने हमेशा सशस्त्र ही रहना होगा।'

महेन्द्रको भी झुँझलाहट आ गई। उसका खयाल है कि खुलासा बातोसे कवित्वका माधुर्य ही नष्ट हो जाता है। उसने जरा-कुछ तीव्र स्वरमें ही कहा,

"बिहारी, तुम्हारे महेन-भइया और किसी कारबारमे नही पडते, जो उनके हाथमे है उसीमें वे सन्तुष्ट है।"

बिहारीने कहा, "हो सकता है वे अपने-आप न पड़ते हो, किन्तु भाग्यमे लिखा रहता है तो कारबारकी लहर बाहरसे आकर भी लगती है।"

विनोदिनी कह उठी, "फिलहाल आपके हाथमे तो कुछ भी नही, फिर आपकी लहर किधरसे आ रही है ?" इतना कहकर उसने कटाक्षके साथ हँसकर आशाकी बाँह मसक दी। आशा झुँझलाकर उठके चल दी। बिहारी पराजित होकर मारे क्रोधके चुप रह गया, और ज्यो ही उठकर जानेको उद्यत हुआ, विनोदिनी चटसे कह बैठी, "आप ऐसे हताश होकर न जाइये, बिहारी-बाबू, मै किरकिरीको अभी भेजे देती हूँ।"

विनोदिनीके चले जाते ही, सभा-भङ्ग होनेके क्षोभसे, महेन्द्र भीतर-ही-भीतर बहुत झुँझला उठा। और उसका अप्रसन्न चेहरा देखकर बिहारीका रुका-हुआ आवेग उच्छ्वसित हो उठा। उसने कहा, "महेन-भइया, तुम अपना सर्वनाश करना चाहो, करो, तुम्हारी हमेशाकी आदत पडी-हुई है। किन्तु जो सरलहृदया साध्वी तुमपर एकान्त-विश्वासके साथ निर्भर है, उसका सर्वनाश मत करो। अब भी मै कहता हूँ, उसका सर्वनाश मत करो।" कहते-कहते बिहारीका कण्ठ रुक आया।

महेन्द्र भीतरी क्रोधको रोकता-हुआ बोला, "सुनो, बिहारी, तुम्हारी ये-सब बाते मेरी समझमें नही आ रही है। पहेलियाँ छोड़कर तुम साफ-साफ कहो, क्या कहना चाहते हो ?"

बिहारी बोला, "अच्छा तो साफ-साफ ही कहूँगा। विनोदिनी तुम्हे जान-बूझकर अधर्मकी ओर खीच रही है और तुम बिना सोचे-समझे मूढकी तरह उधर पैर बढाते चले जा रहे हो।"

महेन्द्र गरज उठा, "बिलकुल झूठ बात है। तुम अगर किसी भले-घरकी बहू-बेटीको इस तरह सन्देहकी दृष्टिसे देखते हो तो अन्त.पुरमे तुम्हारा आना ही उचित नही।"

इतनेमें एक थालीमें कई तरहकी मिठाइयॉ लिये मुसकुराती-हुई विनोदिनीने प्रवेश किया, और थाली बिहारीके सामने रख दी। बिहारी कह उठा, "यह क्या! मुझे बिलकुल भूख नही।"

विनोदिनीने कहा, "यह कैसे हो सकता है! आपको जरा मुँह मीठा करके ही जाना होगा।"

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "मेरी दरखास्त मजूर हो गई मालूम होता है। समादर शुरू हो गया!"

विनोदिनी बहुत ही दबी हँसी हँसकर बोली, "आप जब कि देवर ठहरे, तो नातेका ज़ोर तो है ही। जहाँ जोर चल सकता है वहाँ भिक्षा माँगनेकी क्या जरूरत ? आप तो आदर-लाड़ छीनके भी ले सकते हैं। क्यो, महेन्द्र-बाबू, ठीक है-न ?"

महेन्द्र-बाबूके मुँहसे तब मारे क्रोधके बात ही नही निकल रही थी।

विनोदिनी बोली, "क्यो, बिहारी-बाबू, आप शरमाकर नही खा रहे है या गुस्सेमे ? और किसीको बुलाना पड़ेगा क्या ?"

बिहारीने कहा, "कोई जरूरत नही। जो मिला है मुझे, वही काफी है मेरे लिए।"

विनोदिनीने कहा, "फिर मजाक! मजाकमे तो आपसे जीतना ही मुश्किल है। मिठाई देनेपर भी मुँह बन्द नही होता।"

रातको आशाने महेन्द्रके आगे बिहारीके प्रति अपनी नाराजगी प्रकट की, और महेन्द्रने और-और दिनकी तरह उसे हँसीमे उड़ा नही दिया, उसमे पूरी तरह भाग लिया।

सवेरे उठते ही महेन्द्र बिहारीके घर पहुँचा। बोला, "बिहारी, हजार हो, पर विनोदिनी अपने घरकी स्त्री नही, तुम सामने पडते हो तो उसे कुछ बुरा-सा लगता है।"

बिहारीने कहा, "अच्छा, यह बात है क्या! तब तो मैंने अच्छा नही किया। उन्हे अगर आपत्ति है तो मुझे क्या गर्ज अटकी है कि मैं उनके सामने जाऊँ!"

महेन्द्र निश्चिन्त हुआ। इतनी आसानीसे इतना अप्रिय कार्य सम्पन्न हो जायगा, इसकी उसने कल्पना भी नही की थी। बिहारीसे महेन्द्र डरता है।

उसी दिन बिहारी महेन्द्रके अन्त:पुरमे पहुँचा, और विनोदिनीसे कहने लगा, "विनोदा-भाभी, मुझे क्षमा कीजियेगा।"

विनोदिनी बोली, "क्यो बिहारी-बाबू, आज क्या बात है ?"

बिहारीने कहा, "महेन्द्रसे सुना है कि अन्त पुरमे आकर मै आपके सामने आता हूँ, इससे आप नाराज होती है, इसीसे क्षमा माँगकर आपसे मै विदा लेना चाहता हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "भला यह कैसे हो सकता है, बिहारी-बाबू ! मै आज हूँ, कल नही रहूँगी,—मेरे लिए आप क्यो विदा लेने लगे ! यदि मै यह जानती कि यहाँ आनेसे इतना बखेडा उठ खडा होगा तो आती ही नही।" कहते-कहते विनोदिनीका मुँह उतर गया, और वह आँसू रोकनेके लिए तुरत वहाँसे चली गई।

बिहारी क्षण-भरके लिए यह सोचकर दु खित हुआ कि 'झूठा सन्देह करके मैने विनोदिनीको व्यर्थ ही ठेस पहुँचाई।'

उस दिन शामको राजलक्ष्मी बिपदाकी मारी-सी आकर बेटेसे बोली, "महेन, विपिनकी बहू तो देश जानेके लिए जिद कर रही है।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो, मा, यहाँ उन्हे क्या कोई तकलीफ है ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "तकलीफ कुछ नही। उसका कहना है कि ऐसी उमरमें विधवा बहू-बेटीका पराये घर ज्यादा दिन टिका रहना ठीक नही, लोकनिन्दाका डर है।"

महेन्द्रने क्षुब्ध होकर कहा, "अब यह 'पराया-घर' हो गया !"

बिहारी वही बैठा था। महेन्द्रने उसकी तरफ तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा, और चुप हो रहा। अनुतप्त बिहारी सोचने लगा, 'कलकी मेरी बातचीतमें शायद कुछ निन्दाका आभास था, विनोदिनीको शायद उसीसे ठेस पहुँची होगी।'

पति-पत्नी दोनोके दोनो विनोदिनीसे रूठ गये। एकने कहा, "हमे तुम गैर समझती हो, बहन ?" दूसरेने कहा, "अब यह 'पराया-घर' हो गया !"

विनोदिनीने कहा, "मुझे क्या तुमलोग हमेशा ही बाँध रक्खोगे ?"

महेन्द्रने कहा, "इतना हममे दम कहाँ ?"

आशाने कहा, "जाना ही था तो इस तरह हमलोगोसे मोह क्यो जोडा था, सहेली इसीलिए बनी थीं क्या ?"

उस दिन कुछ भी निर्णय नही हुआ।

विनोदिनीने कहा, "नही, बहन, जरूरत नही,—दो दिनके लिए ममता न बढाना ही अच्छा है।" कहते-हुए उसने व्याकुल दृष्टिसे एक बार महेन्द्रके मुँहकी ओर देख लिया।

दूसरे दिन बिहारीने आकर कहा, "विनोदा-भाभी, जानेकी बात क्यो सोच रही हो? कोई कसूर बन पडा है क्या,—उसीका दण्ड दे रही हो?"

विनोदिनीने मुँह फेरकर कहा, "कसूर आप क्यों करने लगे! कसूर तो मेरी तकदीरका है।"

बिहारीने कहा, "आप अगर चली जायेंगी तो मुझे बराबर यही खयाल आता रहेगा कि आप मुझ ही पर नाराज होकर चली गई है।"

विनोदिनीने अपनी करुण दृष्टिसे बिनती-सी प्रकट करते-हुए बिहारीके मुँहकी तरफ देखकर कहा, "मेरा रहना क्या उचित है, आप ही बताइये-न?"

बिहारी बड़े असमजसमे पड़ गया। यह वह कैसे कहे कि रहना उचित है? उसने कहा, "आखिर जाना तो आपको पड़ेगा ही,—मेरा कहना था कि कुछ दिन और रह जायें तो हर्ज क्या है?"

विनोदिनीने आँखें नीची करके कहा, "आप सब-के-सब मुझसे रहनेको कह रहे हैं, आपलोगोकी बात टालना भी तो मेरे लिए कठिन है,—लेकिन यह अच्छी बात नही।" कहते-कहते उसके घने लम्बे पलकोके भीतरसे आँसूकी मोटी-मोटी बूँदें बडी तेजीसे ढलकने लगी।

बिहारी इस नीरव अश्रु-प्रवाहसे व्याकुल हो उठा, बोला, "कुछ ही दिनोमें आपने अपने गुणोसे सबको वश कर लिया है, इसीसे आपको कोई छोडना नही चाहता। कुछ खयाल न कीजियेगा। भला आप जैसी लक्ष्मीकी प्रतिमाको अपनी इच्छासे कौन विदा कर सकता है?"

आशा एक कोनेमे घूँघट काढे बैठी थी, वह आँचलसे बार-बार अपनी आँखें पोछने लगी। इसके बाद फिर विनोदिनीने जानेकी बात नही चलाई।

१७

बीचकी इस गडबडीको बिलकुल पोछकर मिटा देनेके लिए महेन्द्रने प्रस्ताव किया, "अगले रविवारको दमदमके बगीचेमे 'पिकनिक' करने चला जाय।"

आशा अत्यन्त उत्साहित हो उठी। किन्तु विनोदिनी किसी भी तरह राजी नही हुई। विनोदिनीकी इस आपत्तिपर महेन्द्र और आशा दोनोके दोनो मुरझा-से गये। उनलोगोने समझा, विनोदिनी आजकल उनसे दूर-दूर रहना चाहती है।

शामको बिहारीके आते ही विनोदिनीने उससे कहा, "देखिये तो, बिहारी-बाबू, महेन्द्र-बाबू दमदमके बगीचेमें 'पिकनिक' करने जायेंगे, उसमें मै साथ नही जाना चाहती, सो, दोनो-के-दोनो आज सवेरेसे मुझसे मुँह फुलाये बैठे है।"

बिहारीने कहा, "मुंह फुलाना बेजा तो नही मालूम होता। आप नही जायेगी तो इनकी 'पिकनिक'में ऐसा काण्ड होगा जो दुश्मनके भी न हो।"

विनोदिनीने कहा, "तो फिर आप भी चलिये। आप चलें तो मैं भी चलनेको तैयार हूँ।"

बिहारीने कहा, "अच्छी बात है। किन्तु 'कर्ता'के पीछे 'कर्म' होता है, घरके कर्ताकी क्या राय है?"

बिहारीके प्रति विनोदिनीके इस विशेष पक्षपातसे मालिक और मालिकिन दोनो ही मन-ही-मन खिन्न हुए। बिहारीको साथ लेनेके प्रस्तावसे महेन्द्रका आधा उत्साह काफूर हो गया। महेन्द्रकी हमेशा यह कोशिश रहती कि किसी भी तरह बिहारीके मनमे यह बात बैठ जाय कि उसकी उपस्थिति विनोदिनीके लिए सर्वदा ही अप्रिय है। किन्तु आजकी घटनामें उसने देखा कि अब तो बिहारीको रोकना उसके लिए असाध्य है।

महेन्द्रने कहा, "अच्छा ही तो है, अच्छा रहेगा! लेकिन, बिहारी, तुम जहाँ भी जाते हो वहाँ कुछ-न-कुछ बखेडा खडा किये बगैर नही मानते। तुम्हारा कोई ठीक नही,—कुछ-नही-तो मुहल्ले-भरके लडके ही इकट्ठे कर लाओगे या किसी गोरेसे लड पडोगे। कुछ कहा नही जा सकता।"

बिहारी महेन्द्रकी आन्तरिक अनिच्छाको समझकर मन-ही-मन हँसने लगा, बोला, "यही तो ससारका मजा है! क्यासे क्या हो जाता है और कब कहाँ कौन-सा बखेडा उठ खडा होता है, कुछ भी नही कहा जा सकता। अच्छा तो, विनोदा-भाभी, खूब सवेरे ही चलना होगा,—मै ठीक समयपर आ जाऊँगा।"

रविवारको सवेरे ही चीज-वस्त और नौकर-चाकरोके लिए एक थर्ड-क्लास और मालिकोके लिए एक सेकेण्ड-क्लास किरायेकी घोड़ा-गाडी लाई गई। बिहारी भी बड़ा-सा एक पैक-बक्स साथ लिये ठीक समयपर आ गया। महेन्द्रने कहा, "यह तुम क्या ले आये! सामानकी गाड़ीमें तो यह अमायेगा नही।"

बिहारीने कहा, "तुम चिन्ता न करो, भाई साहब, मैं अभी सब ठीक किये देता हूँ।"

विनोदिनी और आशा गाडीमे बैठ गईं। अब महेन्द्रको चिन्ता हुई कि बिहारीको कहाँ बिठाया जाय। वह बगलें झाँकने लगा।

इतनेमें बिहारीने अपनी पेटी गाडीकी छतपर लाद दी; और चटसे वह कोचबक्सपर बैठ गया।

महेन्द्रके लिए यह 'जान बची और लाखो पाये' साबित हुआ, वह सोच रहा था, 'बिहारी भीतर बैठेगा या क्या करेगा, कोई ठीक नहीं।'

विनोदिनी घबराहटके साथ कहने लगी, "बिहारी-बाबू, आप कही गिर तो नही जाइयेगा?"

बिहारीने कहा, "आप निश्चिन्त रहिये, डरिये नही,—पतन और मूर्छा दोनो ही मेरी जन्मपत्रीमें नही है।"

गाडी चलते ही महेन्द्रने कहा, "न-हो-तो मै ही ऊपर जाकर बैठूं, बिहारीको भीतर भेज दूं?"

आशाने घबराकर उसकी चादर पकडते-हुए कहा, "नही नही, तुम नही जा सकते।"

विनोदिनीने कहा, "आपको आदत नही, फिर क्या जरूरत है, गिर-गिरा गये तो मुश्किल होगी।"

महेन्द्रने उत्तेजित होकर कहा, "मै गिर पडूंगा!" कहनेके साथ ही वह ऊपर जानेको उद्यत हो उठा।

विनोदिनीने कहा, "आप बिहारी-बाबूको दोष देते है, पर मै तो देख रही हूँ, आप ही बखेडा खडा करनेमें अद्वितीय है!"

महेन्द्र मुँह फुलाकर बोला, "अच्छा, एक काम किया जाय,—मै दूसरी एक गाडी मँगाकर उसमें चला जाता हूँ, इसमें बिहारी चला जायगा।"

आशाने कहा, "ऐसा हो तो फिर मै भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

विनोदिनीने कहा, "और मै क्या गाडीसे कूद पडूंगी!"

इस तरह बात यही खतम हो गई।

महेन्द्र रास्ते-भर अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाये बैठा रहा।

गाडी यथासमय दमदमके बगीचेमे पहुँची। और नौकरोकी गाडी जो बहुत पहले ही चली थी, उसका अभी तक पता ही नही।

शरत्ऋतुका प्रात.काल अत्यन्त मधुर और सुहावना लग रहा है, धूप फैल जानेसे ओस तो सूख गई है, किन्तु बगीचेके पेड-पौधे निर्मल प्रकाशसे झलमला रहे हैं। बगीचेकी चहारदीवारीके किनारे-किनारे हर्रासगारके पेडोकी कतार है, और उनके नीचे पडे-हुए फूलोकी सुगन्धसे सारा बगीचा महक रहा है।

आशा कलकत्तेके ईंट-पत्थरके मकानोके बन्धनसे मुक्ति पाकर वन्य हरिणीकी तरह उल्लसित हो उठी। उसने विनोदिनीके साथ ढेर-के-ढेर फूल चुने, पेडसे पके शरीफे तोडकर उसके नीचे बैठकर खाये, और फिर दोनो सखियाँ मिलकर बहुत देर तक तालाबमें नहाती रही। इन दोनो नारियोने मिलकर एक तरहके निरर्थक आनन्दसे पेडोकी छाया और डालियोकी सँधमेंसे निकलते-हुए प्रकाशको, तालाबके पानी और निकुजके पुष्प-पल्लवोको पुलकित और सचेतन कर दिया।

नहानेके बाद दोनो सखियोने आकर देखा कि नौकरोकी गाडी अभी तक नही आई है।

महेन्द्र कोठीके बरण्डेमें कुरसीपर बैठा किसी विलायती कम्पनीका सूचीपत्र पढ़ रहा था। चेहरेपर खुशीका नाम तक नही, सूखा-सूखा-सा दिखाई दे रहा है।

विनोदिनीने महेन्द्रके पास जाकर पूछा, "बिहारी-बाबू कहाँ है?"

महेन्द्रने सक्षेपमे उत्तर दिया, "मालूम नही।"

विनोदिनीने कहा, "चलिये उन्हें ढूंढ निकाला जाय।"

महेन्द्रने कहा, "उसे कोई चुरा ले जायगा, ऐसी कोई आशङ्का नही मालूम होती। बिना ढूंढे भी वह मिल जायगा।"

विनोदिनीने कहा, "लेकिन, कमसे कम ऐसी तो आशङ्का है कि शायद वे आपके लिए ही सोचमें दुबले हुए जा रहे हो कि कही 'दुर्लभ रत्न' खो गया तो क्या होगा! कमसे कम उन्हे तसल्ली तो दे आना चाहिए।"

तालाबके पास एक बडा-सा पक्का घाट है, वहाँ बिहारी अपना पैक-बक्स खोलकर 'स्टोव' निकालकर उसपर पानी गरम कर रहा था। सबके उपस्थित होते ही उसने आतिथ्य-पूर्वक एक-एक प्याला गरम चाय और रकाबियोमें कुछ नमकीन नाश्ता निकालकर सबके आगे रख दिया।

विनोदिनी बार-बार कहने लगी, "भाग्यसे बिहारी-बाबू सब तैयारी कर आये थे, इसलिए जानमे जान आ गई, नही-तो चाय न मिलनेसे महेन्द्र-बाबूकी न-जाने क्या दशा होती!"

चाय पाकर महेन्द्रके सचमुच ही जानमे जान आ गई, किन्तु फिर भी वह बोला, "बिहारीकी हर बातमें ज्यादती हुआ करती है। पिकनिक करने आये है, यहाँ भी अगर सब-कुछ घर-जैसा नियमके माफिक हुआ, तो फिर मजा ही क्या रहा!"

बिहारीने कहा, "तो दे दो, भइया, मेरा चायका प्याला वापस दे दो, चाय बगैर पीये ही तुम मनमाना मजा लेते रहो,—मै तुम्हे रोकूँगा नही।"

काफी दिन चढ गया, किन्तु नौकर नही आये। बिहारीकी पेटीमेंसे नाना प्रकारके भोज्य पदार्थ निकलने लगे। दाल-चावल, साग-तरकारी और छोटी-छोटी शीशियोमें पिसे-हुए मसाले इत्यादि। विनोदिनी आश्चर्यके साथ कहने लगी, "बिहारी-बाबू, आपने तो हम-औरतोको भी मात कर दिया! घरमें तो गृहिणी नही है, फिर यह-सब आपने सीख कहाँसे लिया?"

बिहारीने कहा, "कमबख्त पेटके लिए सब-कुछ सीखना पडता है, भाभीजी! करूँ क्या, अपनी सेवा-टहल और आदर-जतन सब-कुछ अपने-आप ही करना पड़ता है-न!"

बिहारीने यह बात योही हँसी-हँसीमें कही थी, किन्तु विनोदिनी गम्भीर होकर बिहारीकी मुँहकी तरफ करुण दृष्टिसे देखती-हुई कृपा वर्षण करने लगी।

बिहारी और विनोदिनी दोनो मिलकर रसोईके काममें जुट पडे। आशा क्षीण और सकुचित-सी होकर हस्तक्षेप करने आई, किन्तु बिहारीने रोक दिया। अपटु महेन्द्रने मदद करनेकी कोई कोशिश ही नही की। वह बरगदके तनेसे पीठ टेके और पैरपर पैर रखे काँपते-हुए पत्तोपर सूर्य-किरणोका नाच देखने लगा।

रसोई बन चुकनेपर विनोदिनीने कहा, "महेन्द्र-बाबू, आप इस बरगदके पत्ते गिनकर पार नही पा सकते,—अब जाइये, नहा आइये।"

इतनेमें नौकर-चाकर भी सामान लेकर आ पहुँचे। उनकी गाड़ी रास्तेमें टूट गई थी। आते-आते दोपहर हो गया।

खाने-पीनेके बाद बरगदके पेडके नीचे ताश खेलनेका प्रस्ताव हुआ, किन्तु महेन्द्रने कुछ ध्यान ही नही दिया, और देखते-देखते पेडकी छायाके नीचे उसे नींद

आ गई, और सो गया। आशा कोठीके भीतर जाकर दरवाजा बन्द करके आराम करनेकी तैयारी करने लगी।

विनोदिनीने माथेका पल्ला सम्हालते-हुए बिहारीसे कहा, "अच्छा तो अब मैं भीतर जाती हूँ।"

बिहारीने कहा, "आप कहाँ जायेगी,—बैठिये जरा, गपशप कीजिये।"

क्षण-क्षणमें दोपहरकी गरम हवा तरु-पल्लवोको मर्मरित करने लगती है, और क्षण-क्षणमे तालाबके उस पार जामुनके पेड़के घने पत्तोमेंसे कोयल बोल उठती है।

विनोदिनी अपने बचपनकी बाते करने लगी,—गाँवकी बात, मा-बापकी बात, बचपनकी सहेलियोकी बात। कहते-कहते उसके माथेका पल्ला खिसक पड़ा। विनोदिनीके चेहरेपर प्रखर यौवनकी जो एक दीप्ति सर्वदा ही बनी रहती थी, बाल्यस्मृतिकी छायाने आकर उसे आज स्निग्ध कर दिया। उसकी आँखोमें जिस कौतुकतीव्र कटाक्षको देखकर तीक्ष्णदृष्टि बिहारीके मनमे अब तक नाना प्रकारके सशय उपस्थित हुआ करते थे उन्ही आँखोकी उज्ज्वल-कृष्ण ज्योति जब एक शान्त-सजल रेखामें परिणत होकर म्लान हो आई, तब बिहारीको विनोदिनीमें मानो और ही कोई व्यक्तित्व दिखाई देने लगा। उसने देखा कि उस दीप्ति-मण्डलके केन्द्रस्थलमें एक कोमल हृदय अब भी सुधा-धारासे सरस बना-हुआ है, अपरितृप्त रस-रग-कौतुक-विलासकी दहन-ज्वाला अभी तक उसकी नारीप्रकृतिको सुखा नही सकी है। विनोदिनी मानो सलज्ज सती स्त्रीके रूपमें अनन्य भक्तिके साथ पतिकी सेवा कर रही है, कल्याण-परिपूर्णा जननीकी तरह सन्तानको गोदमें लिये-हुए है। यह चित्र इसके पहले एक क्षणके लिए भी कभी बिहारीके मनमें उदित नही हुआ। आज मानो रगमचका पट क्षण-भरके लिए उठ गया और उसके भीतरका एक 'मगल-दृश्य' उसकी आँखोके सामने प्रकट हो गया। बिहारी सोचने लगा, 'विनोदिनी बाहरसे विलासिनी युवती जरूर है, किन्तु उसके भीतर एक पूजा-रता नारी निरशन हो तपस्या कर रही है। बिहारी एक दीर्घनिश्वास लेकर मन-ही-मन बोला, 'मनुष्य अपने वास्तव-रूपको आप ही नही जान पाता, अन्तर्यामी ही जान सकते है। अवस्था-चक्रमें बाहर जो-कुछ बन जाता है ससारकी दृष्टिमें वही सत्य मालूम होता है।'

बिहारीने बातके सिलसिलेको रुकने नही दिया,–प्रश्न कर-करके उसे वह जगाये रखने लगा। विनोदिनीको अब तक कोई ऐसा आदमी ही नही मिला जो उसके मनकी ये-सब बातें इस तरह सुनता, खासकर किसी पुरुषके आगे उसने इस तरह आत्म-विस्मृत होकर स्वाभाविक-भावसे ये बातें नही कही। आज मुक्त कलकण्ठसे नितान्त सहज-सहल हृदयकी बाते कहकर उसकी सम्पूर्ण नारी-प्रकृति मानो नवीन वर्षाधारामें स्नान करके स्निग्ध और परितृप्त हो गई।

खूब सवेरे उठनेके उपद्रवसे थके-हुए महेन्द्रकी करीब पाँच बजे आँख खुली। और वह कुछ झुँझलाहटके साथ बोल उठा, "बस अब चलना चाहिए।"

विनोदिनीने कहा, "और जरा ठहरकर जायें तो क्या हर्ज है?"

महेन्द्रने कहा, "नही, रास्तेमें कही किसी मतवाले गोरेसे पाला पडा गया तो जानको आफत हो जायगी।"

चीज-वस्त सब सम्हालकर उठाने-रखनेमें अँधेरा हो आया। इतनेमे एक नौकरने आकर खबर दी कि 'गाडी-वाले गाडी लेकर न-जाने कहाँ चले गये, दिखाई नही पडते। गाडियाँ बागीचेके बाहर खडी थी, फौजके दो गोरे आकर जबरदस्ती उन्हे स्टेशनकी तरफ ले गये हैं।

उस नौकरको दूसरी गाडी लानेके लिए भेज दिया गया।

भीतर-ही-भीतर कुढा-हुआ महेन्द्र मन-ही-मन कहने लगा, 'आजका दिन ही मट्टी हो गया!' अपना अधैर्य अब उससे छिपाये नही छिप सका।

शुक्लपक्षका चन्द्रमा क्रमश वृक्षोकी डालियोके पत्र-जालसे निकलकर मुक्त आकाशमे आ गया। निस्तब्ध निष्कम्प उपवन 'छाया और चाँदनी'के सगमसे विचित्र सौन्दर्यसे परिपूर्ण हो उठा। आज इस माया-मण्डित पृथ्वीपर विनोदिनीने अपनेको कैसे-तो एक अपूर्व रूपमे अनुभव किया। आज जब उसने तरु-वीथिकामें आशाको अपनी छातीसे लगा लिया तब उसमे प्रेमकी कृत्रिमता जरा भी नही थी। आशाने देखा कि विनोदिनीकी आँखोसे आँसुओकी धारा बह रही है। उसने व्यथित होकर पूछा, "क्यो, बहन किरकिरी, तुम रो क्यो रही हो?"

विनोदिनीने कहा, "कुछ नही, बहन, कोई बात नही,–ठीक तो हूँ मैं। आजका दिन मुझे बडा अच्छा लगा।"

आशाने पूछा, "सो कैसे?"

विनोदिनीने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि मानो मैं मर गई हूँ, मानो मैं परलोकमे आ गई हूँ, यहाँ मानो मेरा सब-कुछ मिल सकता है।"

आशा आश्चर्यके साथ सब बात सुनती गई, किन्तु समझ कुछ न सकी। मृत्युकी बात सुनकर वह बहुत दु खित हुई , बोली, "छी, बहन किरकिरी, ऐसी बात नही कहनी चाहिए।"

गाडी मिल गई। बिहारी फिर कोचबक्सपर बैठा। विनोदिनी निस्तब्ध बैठी खिडकीके बाहरकी ओर देखती रही, ज्योत्स्नासे स्तम्भित तरुश्रेणी धावमान निविड छाया-स्रोतकी तरह उसकी आँखोके ऊपरसे दौडती चली जा रही थी। आशा गाडीके एक कोनेमें बैठी थी, उसकी आँख लग गई ; और महेन्द्र रास्ते-भर अत्यन्त विमर्ष-हुआ बैठा रहा।

१८

बगीचेवाले मनहूस दिनके बाद महेन्द्र फिर एक बार विनोदिनीको अच्छी तरह अपने वशमे लानेको उत्सुक हुआ। किन्तु उसके दूसरे ही दिन राजलक्ष्मीको इन्फ्लुएजा हो गया। रोग खतरनाक न होनेपर भी तकलीफ और कमजोरी बहुत ज्यादा थी। विनोदिनी दिन-रात उनकी सेवामें लगी रही।

महेन्द्रने कहा, "दिन-रात जाग-जागकर इस तरह तीमारदारी करती रहोगी तो अन्तमें तुम भी बीमार पड जाओगी। माकी सेवाके लिए मैं आदमी ठीक किये देता हूँ।"

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, तुम इतने घबराते क्यो हो? ये सेवा कर रही हैं तो करने दो। ऐसी सेवा और-कोई कर सकता है!"

महेन्द्रने रोगीके कमरेमें बार-बार जाना-आना आरम्भ कर दिया। कोई आदमी कुछ काम तो करे नही और कामके वक्त हमेशा साथ लगा रहे, यह बात कर्मठ विनोदिनीके लिए असह्य थी। उसने झुँझलाकर दो-तीन बार महेन्द्रसे कहा, "आप यहाँ बैठे-हुए क्या मदद कर रहे हैं? आप जाइये, व्यर्थ पढाईका हर्ज न कीजिये।"

हलाँ कि विनोदिनीको इस बातमें गर्व था और आराम भी मिलता था कि महेन्द्र उसका हरवक्त अनुसरण करता रहता है, किन्तु इसके मानी यह नही कि

इस तरहका कंगलापन किया जाय कि बीमार माकी रोगशय्या तक लुब्ध हृदयसे उसके पीछे लगे रहना ! इससे विनोदिनीका धीरज जाता रहा, और महेन्द्रसे उसे घृणा होने लगी। विनोदिनीके स्वभावमे एक खास बात यह है कि किसी भी कामका भार जब उसपर आ पडता है तब वह और-किसी भी बातका खयाल नहीं रखती। जब तक वह खिलाने-पिलानेमें, रोगीकी दवा या घरके काम-काजमें फँसी रहती है तब तक कोई भी उसे असावधान नही पा सकता, और वह भी कामके वक्त किसीको किसी तरहकी अनावश्यक बात करते नही देख सकती।

विहारी बीच-बीचमें थोडी देरके लिए राजलक्ष्मीकी सेहत पूछने आता, और कमरेमें घुसते ही समझ जाता कि 'क्या जरूरत है, कहाँ किस चीजकी कमी है', और चटसे सब ठीक करके चला जाता। विनोदिनी मन-ही-मन समझ जाती कि बिहारी उसकी सेवा-शुश्रूषाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है। इसलिए बिहारीके आगमनसे मानो उसे विशेष पुरस्कार मिल जाता।

महेन्द्र महज धिक्कारके आवेगमें अत्यन्त कठोर नियमके साथ कालेज जाने लगा। एक तो उसका मिजाज अत्यन्त रूखा हो गया, उसपर घरका सब ढाँचा ही बदल गया,—कभी रसोई ठीक समयपर नही होती तो कभी सईस लापता है, कभी मोजेके छेद बढते चले जा रहे है तो कभी कुछ। अब इन सब विशृंखलाओमें महेन्द्र पहले जैसा आमोद अनुभव नहीं करता। इधर जब जिस चीजकी जरूरत पडती थी तभी वह चीज हाथके पास तैयार मिला करती थी, इस आरामका वह अनुभव कर चुका था, और अब उसके अभावमें आशाकी अशिक्षित-अपटुतामें उसे जरा भी आनन्द नही आता।

एक दिन वह कहने लगा, "चुन्नी, मै तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि मेरे नहानेके पहले ही तुम मेरी कमीजमें बटन लगा दिया करो, और मेरी अचकन पतलून सम्हालकर एक जगह रख दिया करो, मगर एक भी दिन तुमसे यह नहीं होता। नहानेके बाद बटन लगाने और कपडे ढूंढनेमे मेरे दो-दो घण्टे बरबाद हो जाते हैं।"

अनुतप्त आशा मारे शरमके मुरझाकर कहती, "मैंने नौकरसे कह तो दिया था।" महेन्द्र कहता, "नौकरसे कह तो दिया था ! अपने हाथसे करनेमें क्या बिगड जाता ? तुमसे तो किसी कामकी आशा करना ही व्यर्थ है।"

यह आशाके लिए वज्रपात था। ऐसी डाट-फटकार उसे कभी नही सहनी पड़ी। यह जवाब उसके मन या जबानपर नही आया कि 'तुम्हीने तो मुझे कुछ सीखने नही दिया।' उसके ऐसी धारणा ही नही थी कि घर-गृहस्थीका काम सीखनेके लिए नियमित अभ्यास और अनुभवकी जरूरत है। वह समझती थी कि 'अपनी स्वाभाविक अयोग्यता और निर्बुद्धिताके कारण ही उससे कोई काम ठीक तौरसे करते नही बनता।' महेन्द्रने आत्म-विस्मृत होकर जब-जब विनोदिनीसे आशाकी तुलना करके उसे धिक्कारा है तब-तब आशाने उसे बिना द्वेषके विनय और सरल-भावसे स्वीकार कर लिया है।

आशा बार-बार अपनी बीमार सासके कमरेके आसपास चक्कर काटती और बार-बार लज्जित होकर दरवाजेके पास जाकर खडी हो जाती,—भीतर जानेकी उसे हिम्मत ही नही पडती। वह घर-गृहस्थीके लिए अपनेको आवश्यक कर देना चाहती है, कुछ काम करके दिखाना चाहती है, किन्तु कोई उससे काम लेना ही नही चाहता। वह नही जानती कि किस तरह काममें प्रवेश किया जाता है और किस तरह गृहस्थीमें अपने लिए जगह बना ली जाती है। वह अपनी अक्षमता-अयोग्यताके सकोचसे बाहर-ही-बाहर घूमती रहती है। उसके मनमें कैसी-तो एक तरहकी भीतरी वेदना बढ़ती ही जाती है, किन्तु अपनी उस अपरिस्फुट वेदना और अव्यक्त आशङ्काको वह स्पष्ट नही समझ पाती। उसे ऐसा लग रहा है कि अपने चारो तरफके सब-कुछको वह नष्ट किये डाल रही है, किन्तु वह यह नही जानती कि कैसे-तो वह बनकर तैयार हुआ था और कैसे नष्ट हो रहा है, और क्या करनेसे उसका प्रतिकार हो सकता है। रह-रहकर उसकी सिर्फ यही इच्छा होती रहती है कि जोरसे रो-रोकर वह कहे कि 'मैं बिलकुल ही अयोग्य हूँ, बिलकुल ही असमर्थ हूँ, मेरे समान मूढ ससारमे और कोई नही।'

पहले तो आशा और महेन्द्र दोनोने बहुत देर-देर तक घरमे बैठकर कभी बाते करके और कभी बाते न करके परिपूर्ण आनन्दसे सुखमय समय बिताया है, किन्तु आजकल विनोदिनीके अभावमें आशाके साथ अकेले बैठकर महेन्द्रके मुँहसे सहजमें कोई बात ही नही निकलना चाहती, और कुछ कहे बगैर चुपचाप बैठा रहना भी उसे कुछ ऊटपुटाग-सा मालूम होता है।

महेन्द्रने नौकरसे पूछा, "यह चिट्ठी किसकी है?"

"बिहारी-बाबूकी।"

"किसने दी?"

"बडी-बहूजीने।"

अर्थात्, विनोदिनीने।

"देखूं"—कहते-हुए महेन्द्रने चिट्ठी उससे ले ली। विनोदिनीकी चिट्ठी, और बिहारीके नाम? उसकी इच्छा-हुई कि लिफाफा फाड़कर चिट्ठी पढ़ ले। पर दो-चार बार उलट-पुलटकर देख-भालकर उसने चिट्ठी नौकरकी तरफ फेक दी। अगर वह चिट्ठी खोलता तो देखता कि उसमें लिखा है, "बुआजी किसी भी तरह साबू-बार्ली ले ही नही रही है। आज क्या उन्हें मूंगकी दालका पानी दिया जा सकता है?" दवा और पथ्यके सम्बन्धमे विनोदिनी महेन्द्रसे कभी कोई बात नही पूछती थी। इस विषयमें वह बिहारीपर ही ज्यादा भरोसा रखती है।

महेन्द्र बरामदेमें कुछ देर तक चहलकदमी करता रहा, फिर अपने कमरेमें चला गया। भीतर घुसते ही उसने देखा कि सामनेकी दीवारपर जो तसवीर लटक रही है उसकी रस्सी टूटनेमें जरा-सी कसर है और वह टेढी होकर गिरना ही चाहती है। महेन्द्रने आशाको बडे जोरसे डाटते-हुए कहा, "तुम्हारी आँखे आजकल कुछ देखती ही नही! इसी तरह सब-कुछ बरबाद किये दे रही हो।" दमदमके बगीचेसे कुछ फूल चुनकर विनोदिनी एक गुलदस्ता बना लाई थी और उसे पीतलकी फूलदानीमें रख दिया था। आज तक वह ज्यो-का-त्यो सूखा पडा है, फेंका नही गया। और दिन महेन्द्रका इन-सब बातोकी तरफ ध्यान नही जाता, किन्तु आज उसपर उसकी दृष्टि पड गई। वह बिगड उठा, "जब तक इसे विनोदिनी आकर नही फेंकेगी तब तक यह योही पडा रहेगा।" और फूलदानी उठाकर इतने जोरसे बाहर फेंक दी कि वह ठनठनाती-हुई जीनेकी सिढियोसे नीचे लुढकती चली गई।

महेन्द्र सोचने लगा, 'आशा क्यो मेरे मनकी-सी नही बन रही है? क्यो वह मेरे मनका-सा काम नही करती? क्यो वह अपनी स्वभावगत शिथिलता और दुर्बलताके कारण मुझे दाम्पत्य-सुखमें दृढतासे पकडकर नही रख सकती? क्यो वह सर्वदा मुझे विक्षिप्त किये रहती है?' सोचते-सोचते सहसा उसकी दृष्टि आशापर जा पडी, देखा कि उसका चेहरा पीला पड गया है, वह पलगमें लगे

मच्छरदानीका एक खम्भा पकडे खडी है, उसके ओठ काँप रहे हैं। और काँपती-हुई सहसा वह तेजीसे बगलके कमरेमे चली गई।

महेन्द्र तब धीरेसे जाकर फूलदानी उठा लाया, और जहाँकी तहाँ रख दी। घरके एक कोनेमे उसकी पढनेकी टेबिल-कुरसी थी, वह उस कुरसीपर जाकर बैठ गया , और फिर टेबिलपर दोनो कोहनी टेककर हथेलियोपर सिर रखे बहुत देर तक यो ही बैठा रहा।

शाम हो गई, नौकर कमरेमे बत्ती जलाकर रख गया, किन्तु आशा नही आई। महेन्द्र छतपर जाकर बडी तेजीसे इधरसे उधर चक्कर काटने लगा। रातके नौ बज गये, महेन्द्रका जन-विरल घर निशीथ-रात्रिके समान निस्तब्ध हो गया, फिर भी आशा नही आई। महेन्द्रने उसे बुलवाया। आशा अत्यन्त सङ्कोचके साथ धीरे-धीरे सीढी चढकर छतके जीनेके दरवाजेके पास तक आकर खडी रह गई। महेन्द्रने पास जाकर उसे छातीसे लगा लिया। उसी क्षण पतिके वक्षस्थलपर उसका रोना मानो फट पडा, उसके रोके रुका ही नही। मानो उसके आँसू निबटना ही नही चाहते, रोनेकी आवाज मानो जोरसे निकलना चाहती है, उसके दबाये दबना नही चाहती। महेन्द्रने उसे अपनी बाहोसे छातीमें बाँधकर उसका माथा चूम लिया। आकाशके मूक तारे निस्तब्ध होकर देखते रहे।

एक दिन रातको बिस्तरपर बैठा-हुआ महेन्द्र कह उठा, "इधर कालेजमें हम लोगोकी नाइट-ड्युटी ज्यादा पड रही है, इसलिए अब कुछ दिनोके लिए मुझे कालेजके पास ही 'मेस'में रहना पडेगा।"

आशाने सोचा, 'अभी तक क्या गुस्सा बना ही हुआ है ? य मेरे ऊपर गुस्सा होकर चले जाना चाहते है ? अपनी अयोग्यतासे मैं पतिको घरसे विदा किये दे रही हूँ ? इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा था।'

किन्तु महेन्द्रके व्यवहारमें नाराजीका कोई लक्षण नही था। उसने बहुत देर तक मुँहसे कुछ न कहकर आशाका मुँह अपनी छातीसे लगाये रखा, और बार-बार उसके बालोमें उगलियाँ डालकर उसके जूडेको ढीला करता रहा। पहले प्यारके दिनोमें महेन्द्र इसी तरह आशाके बाल खोल दिया करता था, आशा इसपर आपत्ति करती थी। आज उसने कोई आपत्ति नहीं की, पुलकमें विह्वल होकर वह चुप बनी रही। अचानक उसके माथेपर आँसूकी बूँद आ पड़ी ; और महेन्द्रने

उसका मुँह उठाकर स्नेह-रुद्ध स्वरमे कहा, "चुन्नी!" आशाने मुँहसे कुछ उत्तर न देकर अपने कोमल हाथोसे महेन्द्रको अपनी छातीसे दबा लिया। महेन्द्रने कहा, "कसूर हो गया है मुझसे, मुझे तुम माफ करो।"

आशाने अपने कुसुम-सुकुमार करपल्लवोसे महेन्द्रका मुँह बन्द करके कहा, "नही नही, ऐसी बात न कहो। तुमने कोई भी कसूर नही किया। सब दोष मेरा ही है। मुझे तुम अपनी दासीकी तरह डाटो-डपटो, दण्ड दो। मुझे तुम अपने चरणोकी सेवा-योग्य बना लो।"

विदाके प्रभातमें बिस्तरसे उठते-हुए महेन्द्रने कहा, "चुन्नी, मेरे हृदयकी मणि, मै तुम्हे अपने हृदयमें सबके ऊपर धारण कर रखूँगा, वहाँ और कोई भी तुमसे आगे नही बढ सकता।"

तब आशाने दृढ चित्तसे सब तरहके आत्म-त्यागके लिए तैयार होकर पतिकी सेवामें अपनी सिर्फ एक छोटी-सी प्रार्थना पेश की, बोली, "तुम मुझे रोज एक चिट्ठी दिया करोगे?"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी दिया करोगी?"

आशाने कहा, "मुझे क्या लिखना आता है?"

महेन्द्रने उसकी लटोको कान तक खीचते-हुए कहा, "तुम 'चारुपाठ'के लेखक अक्षयकुमार दत्तसे अच्छा लिख सकती हो।"

आशा बोली, "चलो रहने दो, मजाक मत उडाओ।"

जानेके पहले आशा यथासाध्य अपने हाथसे महेन्द्रका बक्स सजाने बैठी। महेन्द्रके मोटे-मोटे जाडेके कपडे ठीक तौरसे तहाना और बक्समें रखना जरा मुश्किल काम है। दोनोने मिलकर किसी तरह दाब-दूबकर एक बक्सका सामान दो बक्सोमे रखकर छुट्टी पाई। फिर भी गलतीसे जो बाकी रह गया उससे और भी कई गठरियाँ बन गईं। इस विषयमे आशाको यद्यपि काफी लज्जा मालूम हुई, फिर भी दोनोकी छीनाझपटी कोतुक और परस्पर एक दूसरेके प्रति दोषारोपसे पहले-जैसा एक आनन्दका दिन वापस आ गया; और आशा इस बातको बिलकुल भूल गई कि यह विदाकी तैयारियाँ हो रही हैं। सईसने आठ-दस बार महेन्द्रकी 'गाडी तैयार'की बात याद दिलाई, पर महेन्द्रने उधर ध्यान ही नही दिया, और अन्तमें झुँझलाकर बोल उठा, "जाओ, घोड़े खोल दो।"

प्रभात धीरे-धीरे अपराह्न हो गया और अपराह्नसे सन्ध्या हो गई, और तब कही स्वास्थ्यका खयाल रखने और नियमित चिट्ठी लिखनेकी बार-बार हिदायत देते-हुए भाराक्रान्त हृदयसे दोनोने किसी तरह विच्छेद-अध्याय पूरा किया।

आज दो दिन हुए राजलक्ष्मीने पथ्य लिया है। शामके वक्त मोटा गरम कपडा ओढे वे विनोदिनीके साथ ताश खेल रही थी। आज उनके शरीरमें किसी तरहका अवसाद नही है। महेन्द्रने उस कमरेमें जाकर विनोदिनीकी तरफ जरा भी न देखकर मासे कहा, "मा, कालेजमे मेरी रातकी ड्युटी पडी है,—यहाँ रहनेसे बड़ी दिक्कत होती है, इसलिए मैने कालेजके पास एक 'मेस'में रहनेका इन्तजाम किया है। आजसे वही रहूँगा।"

राजलक्ष्मी भीतरसे रूठी-हुई-सी बोलीं, "ठीक है, जाओ। पढाईका नुकसान करके यहाँ कैसे रह सकते हो!"

यद्यपि उनका रोग अच्छा हो गया है, फिर भी महेन्द्रके जानेकी बात सुनकर वे अपनेको रुग्न और दुर्बल अनुभव करने लगी, और विनोदिनीसे बोली, "जरा तकिया तो बढा देना, बेटी!" और तकियेका सहारा लेकर लेट रही। विनोदिनी धीरे-धीरे उनकी देहपर हाथ फेरने लगी।

महेन्द्रने एक बार माके माथेसे हाथ लगाकर देखा, और फिर नाडी देखने लगा। राजलक्ष्मीने अपना हाथ छुडाते-हुए कहा, "नाडी देखकर तो सब समझ लिया! तुझे फिकर करनेकी जरूरत नही, मै बहुत अच्छी हूँ।" इतना कहकर वे कमजोरीके साथ करवट लेकर पड रही।

महेन्द्र विनोदिनीसे किसी तरहका विदाईका शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही माको प्रणाम करके चला गया।

१६

विनोदिनी मन-ही-मन सोचने लगी, 'बात क्या है? मान हुआ है या नाराजी है, या भय है? मुझे दिखाना चाहते हैं कि तुम्हारी कोई परवाह नही! 'मेस'में जाकर रहेंगे? देखूँ कितने दिन रहते है!"

किन्तु विनोदिनीके भीतर भी एक तरहका अशान्त भाव उपस्थित हुआ। महेन्द्रको वह प्रतिदिन नाना जालोमें फँसाती और नाना वाणोसे घायल करती

रहती थी, उसका वह काम मानो इधरसे उधर करवट लेने लगा। इस घरसे उसका सारा नशा ही जाता रहा। महेन्द्र-वर्जित आशा उसके लिए नितान्त स्वादहीन हो गई। आशाके प्रति महेन्द्रका लाड-प्यार खातिर-जतन विनोदिनीके प्रणय-वञ्चित चित्तको सर्वदा ही आलोडित करता रहता था, कारण वह आलोडन विनोदिनीकी 'विरहिणी'की कल्पनाको जो वेदनामें जागरूक बनाये रखता था, उसमे उग्र उत्तेजना जो थी! जिस महेन्द्रने विनोदिनीके उसके सम्पूर्ण जीवनकी सार्थकतासे भ्रष्ट कर दिया है, जिस महेन्द्रने उस-जैसे स्त्री-रत्नकी उपेक्षा करके आशा-सरीखी क्षीण-बुद्धि दीन-प्रकृति बालिकाको वरण किया है उससे विनोदिनी प्रेम करे या विद्वेष करे, उसे कठोर दण्ड दे या अपना हृदय अर्पण कर दे, विनोदिनी ठीकसे कुछ समझ नही पा रही है। महेन्द्रने उसके मनमें एक तरहकी ज्वाला सुलगा दी है, वह ज्वाला प्रेमकी है या डाहकी, या दोनोका संमिश्रण है, विनोदिनीसे कुछ निर्णय करते नही बनता। वह मन-ही-मन तीव्र हँसी हँसकर कहती है, 'किसी नारीकी क्या मुझ-जैसी ऐसी दशा हुई है! मै मरना चाहती हूँ या मारना, इतना भी न समझ सकी!' किन्तु चाहे किसी भी कारणसे हो, दग्ध होनेके लिए हो या दग्ध करनेके लिए, महेन्द्रकी उसे सख्त जरूरत है। आखिर वह अपने विषके-बुझे अग्निवाण इस ससारमें कहाँ चलावे? जल्दी-जल्दी साँस लेते-हुए वह मन-ही-मन कहने लगी, 'वह जायगा कहाँ? उसे लौटना ही होगा। मेरा है वह।'

शीघ्र ही महेन्द्रको अपने छात्रावासमें परिचित हस्ताक्षरोकी लिखी एक चिट्ठी मिली। दिनके कोलाहल और भीड-भम्भडमें उसने चिट्ठी खोली नही, छातीके पास जेबमे रख ली। कालेजमे लेक्चर सुनते-सुनते और अस्पतालमें घूमते-घूमते अकस्मात् एक-एक बार उसे याद उठती रही कि प्यारकी एक चिडिया उसकी छातीमें नीड बनाकर सो रही है; उसे जगाते ही उसका सम्पूर्ण कोमल कूजन उसके कानोमे ध्वनित हो उठेगा।

सन्ध्याके समय महेन्द्र अपने निर्जन कमरेमें लैम्पके उजालेमें कुरसीपर आरामसे बैठ गया। जेबमेंसे अपनी-देहसे-तप्त चिट्ठी निकाल ली। बहुत देर तक चिट्ठी न खोलकर लिफाफेके ऊपरका पता देखता रहा। वह जानता है कि चिट्ठीमें ज्यादा-कुछ नही है। और इसकी कोई सम्भावना भी नही थी कि आशा अपने मनके भावोको ठीक तरहसे व्यक्त कर सकेगी, केवल उसकी कच्ची लिखावट

और टेढी-मेढी पक्तियोंमे उसके मनकी बातोकी कल्पना कर लेनी होगी। आशाके हाथके कच्चे अक्षरोमें बडे जतनसे लिखे-हुए अपने नामको पढकर महेन्द्रको अपने नामके साथ मानो एक रागिनी सुनाई दी, जो साध्वी नारी-हृदयके अति निभृत वैकुण्ठलोकसे आता-हुआ निर्मल प्रेमका सङ्गीत था।

इस दो-एक दिनके विच्छेदमे महेन्द्रके मनसे दीर्घ-मिलनका सम्पूर्ण अवसाद दूर होकर सरला वधूकी नवीन प्रेमसे उद्भासित सुख-स्मृति फिर उज्ज्वल हो उठी। इधर अन्तके दिनोंमें रोजमर्राकी घर-गृहस्थीकी त्रुटि-विच्युतियोने उसे परेशान करना शुरू कर दिया था, वह-सब दूर हो गया, और अब केवल एक कार्यहीन कारणहीन विशुद्ध प्रेमानन्दके आलोकमें आशाकी मानसी-मूर्ति उसके हृदयमें प्राण पाकर जाग उठी।

महेन्द्रने अत्यन्त धीरे-धीरे लिफाफा फाडकर चिट्ठी निकाली ; और उसे वह अपने ललाटपर कपोलोपर फेरने लगा। किसी दिन महेन्द्रने जो एसेन्स आशाको उपहारमे दिया था उसकी सुगन्ध उतावले दीर्घ-निश्वासकी तरह चिट्ठीके कागजमेंसे निकलकर महेन्द्रके हृदयमें प्रवेश कर गई।

तह खोलकर उसने चिट्ठी पढी। किन्तु यह क्या ! जैसी टेढ़ी-मेढी पक्तियाँ हैं वैसी सीधी-सादी भाषा तो नही है! कच्ची लिखावट है, किन्तु बातें तो उससे मेल नही खाती। चिट्ठीमें लिखा है :—

"प्रियतम,

जिसे भूलनेके लिए तुम चले गये हो, इस चिट्ठीमें उसकी याद क्यों दिलाऊँ ? जिस लताको तुमने तोडकर फेक दिया है वह अब क्या मुँह लेकर किस बिरतेके बूतेसे लिपटकर ऊपर चढनेकी कोशिश करे ? क्यो नही वह मिट्टीके साथ मिट्टी होकर, धूलके साथ धूल बनकर धूलमें समा गई ?

किन्तु इतनेसे तुम्हारी क्या हानि होगी, नाथ! क्षण-भरके लिए याद आ भी गई तो क्या हुआ ? मनमे वह कितनी चोट पहुँचायेगी ? और यहाँ तुम्हारी उपेक्षा जो काँटेकी तरह मेरी पसलियोमें चुभी रह गई ! वह काँटा दिन-भर, रात-भर, सब काममे, सब चिन्तामे, जहाँ भी चलती-फिरती हूँ, जिधर भी हिलती-डुलती हूँ, उसी तरफ मुझे चुभता रहता है। तुम जैसे भूल गये हो, मुझे भी 'भूलने'का वैसा कोई उपाय बता दो-न !

नाथ, तुमने जो मुझसे प्रेम किया था वह क्या मेरा ही अपराध था? मैंने क्या स्वप्नमे भी उतने सौभाग्यकी आशा की थी? मै कहाँसे आई, मुझे कौन जानता था? मेरी तरफ अगर तुम आँख उठाकर न देखते, मुझे अगर तुम्हारे घर बिना वेतनकी दासी होकर रहना पड़ता, तो क्या मैं तुम्हे कोई दोष दे सकती थी? तुम अपने-आप ही न-जाने मेरे कौन-से गुणपर मुग्ध हो गये, प्रियतम, क्या देखकर तुमने मेरा इतना आदर बढाया, इतना लाड़ किया? और आज यदि बिना मेघके वज्रपात ही हुआ, तो उस वज्रने केवल झुलसाकर ही क्यो छोड़ दिया? उसने इस देह-मनको बिलकुल जलाकर भस्म क्यो नही कर दिया?

इन दो ही दिनोमे बहुत सहा, बहुत सोचा, किन्तु एक बात समझमें नही आई कि घरमें रहते-हुए भी क्या तुम मुझे फेक नही सकते थे? मेरे लिए भी क्या तुम्हें घर छोडनेकी जरूरत थी? मैं क्या तुम्हे इस कदर घेरे-हुए हूँ? मुझे तुम अपने घरके किसी एक कोनेमे अपने द्वारके बाहर डाल रखते, तब भी क्या मै तुम्हारी नजरोमे आती? अगर यह बात ठीक है, तो तुम क्यो गये? मेरे लिए क्या कही भी जीनेका कोई रास्ता नही था? मै तो बहकर आई हूँ, बहकर चली जाती।"

यह क्या चिट्ठी है! यह भाषा किसकी है सो महेन्द्रसे छिपा न रहा। अकस्मात् आहत मूर्च्छितकी तरह महेन्द्र इस चिट्ठीको पढकर स्तम्भित रह गया। जिस लाइनपर उसका मन रेलगाडीकी तरह पूरी रफ्तारसे दौड रहा था उस लाइनकी विपरीत-दिशासे एक धक्का खाकर उसका मन लाइनके बाहर जा पड़ा और उलट-पुलटकर विकल होकर एक ढेर-सा बनकर पड़ा रहा।

बहुत देर सोचनेके बाद फिर उसने दो-तीन बार चिट्ठी पढी। कुछ समय तक जो बात सुदूर आभासके समान थी, आज वह मानो प्रस्फुटित हो उठी। उसके जीवनाकाशके एक कोनेमे जो धूमकेतु छाया-सा दिखाई पड रहा था, आज उसकी उद्यत विशाल पूँछ अग्नि-रेखामे दीप्यमान होकर दिखाई देने लगी।

यह चिट्ठी विनोदिनीकी ही है। सरला आशाने अपनी जानकर लिख दी है। जो बाते पहले उसने कभी सोची तक नही, विनोदिनीके कहे-अनुसार चिट्ठी

लिखते समय वे बाते उसके मनमें जाग उठने लगी। नकल की-हुई बाते बाहरसे बद्धमूल होकर उसके लिए हार्दिक हो गईं। जो नई वेदना उसके हृदयमे पैदा हुई थी, इस तरह इतनी सुन्दरतासे आशा उसे हरगिज व्यक्त नही कर सकती थी। वह सोचने लगी थी, 'सखी मेरे मनकी बात ऐसी अच्छी तरह समझ कैसे गई? और कैसे वह इतनी अच्छी तरह प्रकट कर सकी?' अपनी अन्तरङ्ग सखीको आशाने मानो और भी आग्रहके साथ अपना लिया, कारण जो व्यथा उसके मनके भीतर है उसकी भाषा है उसकी सखीके पास,—वह इतनी ज्यादा निरुपाय है!

महेन्द्र कुरसी छोडकर उठ खडा हुआ, और भौहे चढाकर विनोदिनीपर क्रोध करनेकी भरसक कोशिश करने लगा, किन्तु क्रोध आने लगा आशापर। 'देखो तो सही, आशाकी यह कैसी मूढता है, पतिके प्रति उसका यह कैसा अत्याचार है!' कहता-हुआ वह कुरसीपर बैठ गया, और प्रमाण-स्वरूप फिर चिट्ठी पढने लगा। पढते-पढते भीतर-ही-भीतर उसके हर्षका सचार होने लगा। चिट्ठीको उसने आशाकी ही चिट्ठी समझकर बार-बार पढनेकी कोशिश की। किन्तु यह भाषा तो किसी भी तरह सरला आशाकी याद नही दिलाती! दो-चार लाइन पढते ही एक तरहका सुखोन्मादकारी सन्देह फेनिल मदिराकी तरह उसके मनके चारो तरफ निकल-निकलकर फैलने लगा। इस प्रच्छन्न किन्तु व्यक्त, निषिद्ध किन्तु निकटागत, विषाक्त किन्तु मधुर, एक समयमे उपहृत किन्तु प्रत्याहृत प्रेमके आभासने महेन्द्रको पागल कर दिया। उसका जी चाहने लगा कि अपने हाथ-पैरमे कही एक जगह चाकू भोककर या और-कुछ करके नशा छुडाकर मनको और-किसी तरफ विक्षिप्त कर दे। सहसा वह टेबिलपर जोरसे मुक्का जमाकर उछल पडा, और बोल उठा, "हटाओ, चिट्ठीको जला डालो।"

और फिर वह उस चिट्ठीको जलानेके लिए लैम्पके पास ले गया, किन्तु जला न सका, फिर एक बार पढने लगा।

दूसरे दिन सवेरे नौकरको महेन्द्रकी टेबिलपरसे कागजकी बहुत-सी राख झाड़नी पड़ी। किन्तु वह आशाकी चिट्ठीकी राख नही थी। आशाकी चिट्ठीके जवाबमे की-गई बहुत-सी अधरी कोशिशोको महेन्द्रने जलाकर खाक कर दिया था।

२०

इस बीचमे और भी एक चिट्ठी आ पहुँची। उसमे लिखा था –

"तुमने मेरी चिट्ठीका जवाब नही दिया? अच्छा ही किया। ठीक बाते तो लिखनेमे आती नही, तुम्हारा जो जवाब है उसे मैं मन-ही-मन समझे लेती हूँ। भक्त जब अपने देवताको पुकारता है तो देवता क्या मुँहकी बातोसे जवाब देते है? आशा है दुखियाका विल्वपत्र चरणोमे स्थान पा चुका होगा।

किन्तु भक्तकी पूजा ग्रहण करनेमे शिवका यदि तपोभङ्ग हो, तो उससे नाराज न होना, मेरे हृदय-देव! तुम वर दो या न दो, आँख उठाकर देखो या न देखो, पूजा बिना किये तो भक्तकी और-कोई गति नही। इसीसे आज यह छोटा-सा पत्र लिख रही हूँ। हे मेरे पाषाण-देवता, तुम अविचलित बने रहना।"

महेन्द्र इस चिट्ठीका जवाब लिखने बैठा। किन्तु आशाको लिखते-लिखते विनोदिनीकी बातोका उत्तर अपने-आप लेखनीके मुँहसे निकल पडता है। ढकके छिपाके कौशल करके लिखते नही बनता। बहुत-से पत्र लिखते और फाडते-फाड़ते आधीसे ज्यादा रात बीत गई। फिर एक लिखा भी तो उसे लिफाफेमें भरकर उसपर आशाका नाम लिखते समय सहसा उसकी पीठपर मानो चाबुक-सा आ पडा ; मानो कोई बोल उठा, 'अरे पाखण्डी, विश्वासघातक, विश्वस्त बालिकासे ऐसी प्रतारणा, ऐसी धोखेबाजी!' महेन्द्रने उस चिट्ठीके सैकड़ो टुकडे कर डाले, और बाकीकी रात उसने टेबिलपर अपने दोनो हाथ रखकर, उनपर अपना मुँह रखकर, अपने-आपको मानो अपनी दृष्टिसे छिपानेकी कोशिशमे बिता दी।

फिर तीसरा पत्र आया। अबकी बार लिखा है –

"जो बिलकुल ही रूठना नही जानता वह क्या प्यार करता है? अपने प्रेमको अगर मैं अनादर-अपमानसे बचाकर न रख सकी, तो उस प्रेमको मैं तुम्हे दूँगी कैसे?

तुम्हारे मनको शायद मैं ठीकसे समझ नही सकी हूँ, इसीसे इतना साहस कर रही हूँ। और इसीसे, जब कि तुम मुझे छोड़कर चले गये तब भी मैंने खुद आगे बढ़कर तुम्हे चिट्ठी लिखी, और जब कि तुम चुप थे तब

भी मै अपने मनकी बात कहती गई। किन्तु मैने अगर तुम्हें गलत समझा हो, तो क्या वह सिर्फ मेरा ही दोष है? एक बार शुरूसे आखिर तक सब बातें सोच तो देखो, मैंने जो-कुछ समझा था सो क्या तुम्हीने नही समझाया?

कुछ भी हो, गलत हो या सही, जो मै लिख चुकी हूँ वह मिटाया नही जा सकता, जो मै दे चुकी हूँ उसे वापस नही ले सकती, यही मेरा पछतावा है। छी छी, ऐसी लज्जाकी बात भी नारीके भाग्यमें बदी होती है! किन्तु इसके मानी यह मत समझ लेना कि जो प्यार करता है वह अपने प्यारको बराबर अपदस्थ करने देगा! यदि मेरी चिट्ठियोकी तुम्हें जरूरत न हो, तो रहने दो,—अगर तुमने उत्तर नही दिया, तो बस यही खतम है।"

इसके बाद फिर महेन्द्रसे रहा नही गया। वह सोचने लगा कि 'आशाकी चिट्ठियोसे नाराज होकर ही घर लौट रहा हूँ। विनोदिनीने समझा होगा कि मै उसे भूलनेके लिए ही घर छोडकर भागा हूँ।' विनोदिनीकी इस स्पर्धाको हाथो-हाथ अप्रमाणित करनेके लिए ही महेन्द्रको उसी वक्त घर लौटनेका सङ्कल्प करना पडा।

इसी समय बिहारी आ गया। बिहारीको देखते ही महेन्द्रका भीतरका पुलक सहसा मानो दूना हो उठा। इसके पहले तरह-तरहके सन्देहोसे भीतर-ही-भीतर बिहारीके प्रति उसकी ईर्षा बढ रही थी; और दोनोकी मित्रता क्लिष्ट होने लगी थी। पत्र पढनेके बाद आज उसने अपना सम्पूर्ण ईर्षाभाव छोडकर अतिरिक्त आवेगके साथ बिहारीको ग्रहण किया। कुरसीसे उठकर उसने बिहारीकी पीठ थपथपाकर, उसका हाथ पकडकर, उसे अपने पास कुरसीपर बिठा लिया।

किन्तु बिहारीका चेहरा आज उदास था। महेन्द्रने सोचा, 'बेचारा इस बीचमें जरूर विनोदिनीसे मिला होगा, और वहाँसे धक्का खाकर यहाँ आया होगा।

महेन्द्रने पूछा, "इधर तुम हमारे घर गये थे क्या?"

बिहारीने गम्भीर मुँहसे कहा, "अभी वहीसे आ रहा हूँ।"

महेन्द्रने बिहारीकी वेदनाकी कल्पना करके मन-ही-मन जरा कुतूहल अनुभव किया। उसने अपने मनमे कहा, 'अभागा बिहारी! स्त्रियोके प्रेमसे बिलकुल ही वचित रहा बेचारा!' और फिर उसने अपनी छातीके पासकी जेबपर हाथ रखकर जरा मसककर देखा, भीतरसे तीनो चिट्ठियाँ खड़खड़ा उठी।

महेन्द्रने पूछा, "कैसा देखा सबको ?"

बिहारीने उसकी बातका कोई जवाब न देकर पूछा, "घर छोडकर तुम यहाँ कैसे ?"

महेन्द्रने कहा, "आजकल जो प्राय· नाइट-ड्युटी पडती है, इसलिए, घरसे आने-जानेमे बडी परेशानी होती थी।"

बिहारीने कहा, "इसके पहले भी तो नाइट-ड्युटी पडा करती थी, तब तो तुम्हें घर छोडते नही देखा ?"

महेन्द्र हँस दिया, बोला, "मनमें किसी तरहका सन्देह हो रहा है क्या ?"

बिहारीने कहा, "नही, हँसीकी बात नही, चलो अब घर चलो।"

महेन्द्र घर लौटनेके लिए तैयार था , किन्तु बिहारीका अनुरोध सुनकर मुकरने लगा,—मानो घर जानेका उसे कोई आग्रह ही न हो। बोला, "यह कैसे हो सकता है, बिहारी ? फिर तो मेरा यह साल ही नष्ट हो जायगा।"

बिहारीने कहा, "देखो, भाई साहब, तुम्हे मैं बचपनसे देखता आया हूँ, मुझे तुम गलत समझानेकी कोशिश न करो। यह तुम अन्याय कर रहे हो।"

महेन्द्रने कहा, "किसपर अन्याय कर रहा हूँ, जज साहब ?"

बिहारी नाराज होकर बोल उठा, "तुम हमेशासे अपने हृदयकी बडाई करते आये हो,—तुम्हारा वह हृदय अब चला कहाँ गया, भाई साहब ?"

महेन्द्रने कहा, "फिलहाल कालेजके अस्पतालमे।"

बिहारीने कहा, "बस अब रहने दो, भाई साहब, रहने दो। तुम यहाँ मेरे साथ हँस-हँसकर बाते कर रहे हो, और आशा वहाँ तुम्हारे ऊपरके कमरेमे नीचेके कमरेमें रोते-रोते प्राण दिये दे रही है।"

आशाके रोनेकी बात सुनते ही महेन्द्रके मनपर सहसा एक गहरी चोट पहुँची। ससारमे और भी किसीको कोई सुख-दु ख हो सकता है, महेन्द्रके नये नशेमें इस बातके लिए जगह ही नही मिली थी। आज सहसा उसका हृदय-मन चौक पडा, बोला, "आशा रो क्यो रही है ?"

बिहारीने झुँझलाकर कहा, "यह बात तुम नही जानते, मै जानूँगा क्यो ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारे 'भाई-साहब' तो सर्वज्ञ नही, इसके लिए गुस्सा होना हो तो उनके सृष्टिकर्तापर होना चाहिए।"

बिहारीके इस प्रबल आवेगको देखकर महेन्द्रको आश्चर्य हुआ। महेन्द्र जानता था कि बिहारीके 'हृदय' नामकी कोई बला नही। 'तो फिर उसे यह बीमारी कबसे हो गई? जिस दिन कुमारी आशाको देखने गया था उसी दिनसे क्या? बेचारा बिहारी!' महेन्द्रने मन-ही-मन बिहारीसे बेचारा जरूर कहा, किन्तु उसे दु खका अनुभव नही हुआ, बल्कि कुछ मजा ही आया। आशाका मन एकान्तरूपसे किस तरफ है, इस बातको महेन्द्र निश्चित जानता था। 'दूसरोके लिए जो कामनाकी वस्तु है किन्तु अधिकारके बाहर होनेसे मिल नही सकती, मेरे आगे उसने हमेशाके लिए अपने आपको समर्पण कर दिया है'—इस बातका अनुभव करके मारे गर्वके वह फूला नही समाया। उसने बिहारीसे कहा, "अच्छा, चलो, कोई बात नही। हाँ तो, किसीको भेजकर एक गाडी तो मँगवाओ।"

२१

महेन्द्रके घरमे आते ही उसका मुँह देखकर आशाके मनका सम्पूर्ण सशय क्षणभगुर कुहरेकी तरह क्षण-भरमे दूर हो गया। अपनी चिट्ठियोकी बात याद करके महेन्द्रके आगे आशा मानो अपना मुँह ही नही उठा सकी। महेन्द्रने मीठी भर्त्सनाके साथ कहा, "इस तरह लाञ्छन-सा लगाते-हुए तुमने मुझे इस तरहकी उलाहना-भरी चिट्ठियाँ लिखी कैसे?"—कहते-हुए उसने अपनी जेबमेंसे तीनो चिट्ठियाँ निकाल ली।

आशाने व्याकुल होकर कहा, "मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ, इन्हे तुम फाड फेंको।" और महेन्द्रके हाथसे चिट्ठियाँ लेनेके लिए वह छीनाझपटी करने लगी। महेन्द्रने उसे रोकते-हुए चिट्ठियाँ जेबमे रख ली। और बोला, "मै तो पढाईकी सुविधाके लिए गया, और तुमने और-ही कुछ समझ लिया! मुझपर सन्देह किया?"

आशाकी आँखे भर आईं, उसने कहा, "अबकी बार तुम मुझे माफ कर दो, अब मुझसे ऐसा कसूर कभी नही होगा।"

महेन्द्रने कहा, "कभी नही?"

आशाने कहा, "कभ्भी नही।"

तब महेन्द्रने आशाको अपनी तरफ खीचकर उसकी भोली सूरतपर एक चुम्बन जड़ दिया।

आशाने कहा, "चिट्ठियाँ मुझे दो, फाड फेकूँ।"

महेन्द्रने कहा, "नही, रहने दो।"

आशा विनयके साथ सोचने लगी, 'मेरे कसूरकी सजाके तौरपर चिट्ठियाँ इन्होने अपने पास रख ली है।'

इन चिट्ठियोके मामलेमे विनोदिनीसे आशाका मन जरा-कुछ फिर-सा गया। पतिके आगमन-सवादको लेकर वह सखीके पास आनन्द प्रकट करने नही गई, बल्कि उससे कुछ बची-बची ही रही। विनोदिनी भी इस बातको ताड गई और काम-काजके बहाने इनलोगोसे दूर-ही-दूर रहने लगी।

महेन्द्रने सोचा, 'यह तो बडी विचित्र बात है! मैंने तो सोचा था कि अबकी बार विनोदिनी खास तौरसे मेरे सामने आयेगी, किन्तु हुआ उलटा! तो फिर उन चिट्ठियोके क्या मानी?'

महेन्द्रने अपने मनको इस बातके लिए काफी मजबूत कर लिया था कि वह नारी-हृदयका रहस्य जाननेकी कतई कोशिश नहीं करेगा। उसने सोचा था कि 'विनोदिनी यदि पास आनेकी कोशिश करेगी भी, तो भी मै दूर रहूँगा।' किन्तु आज मन-ही-मन बोला, 'नही, यह तो ठीक नही हो रहा। ऐसा लगता है कि मानो हमलोगोमे सचमुच ही कोई विकार आ गया हो। विनोदिनीके साथ सहज-स्वाभाविक ढगसे बातचीत हँसी-मजाक और आमोद-प्रमोद करके इस सशयाच्छन्न उमसकी-सी स्थितिको खतम कर देना ही चाहिए।'

महेन्द्रने आशासे कहा, "अब तो मालूम होता है मैं ही तुम्हारी सहेलीकी आँखकी किरकिरी बन गया हूँ। आजकल उनके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये है।"

आशाने उदासीनतासे उत्तर दिया, "मालूम नही उसे क्या हो गया है!"

इतनेमे राजलक्ष्मी चली आई और रुँधे-हुए गलेसे बोली, "बिपिनकी बहूने तो जानेकी ही ठान ली है, मानती ही नही!"

महेन्द्रने अपने चकित-भावको सम्हालते-हुए कहा, "क्यो, मा?"

राजलक्ष्मीने कहा, "मालूम नही क्या बात है! अबकी तो वह जानेके लिए मेरे पीछे ही पड गई है। तू तो किसीकी खातिर करना जानता ही नही। भले-घरकी लड़की पराये घर पडी है, उसे अपना समझकर अपनाया नही जाय तो वह रहेगी क्यो?"

विनोदिनी अपने सोनेके कमरेमे बैठी बिछौनेकी चादर सी रही थी। महेन्द्रने पहुँचते ही पुकारा, "किरकिरी !"

विनोदिनी सयत होकर बैठ गई , बोली, "क्या है, महेन्द्र-बाबू ?"

महेन्द्रने कहा, "यह क्या! महेन्द्र अब 'बाबू' कबसे हो गया ?"

विनोदिनीने सिलाईकी तरफ नत दृष्टि रखकर कहा, "तो फिर आपसे क्या कहा करूँ ?"

महेन्द्रने कहा, "अपनी सखीको जो कहती हो, 'आँखकी किरकिरी'।"

विनोदिनीने पहलेकी तरह मजाकमे इसका उत्तर नही दिया, अपनी चादर सीनेमे ही लगी रही। महेन्द्रने कहा, "मालूम होता है सखीके साथ पक्का-सच्चा सम्बन्ध हो गया है, इसीसे अब उस नामसे दूसरेसे सखापा नही जोडते बनता !"

विनोदिनीने जरा ठहरकर दाँतसे बचा-हुआ सिलाईका डोरा काटते-हुए कहा, "सो मै क्या जानूँ, आप ही जाने !" इतना कहकर उसने और-सब उत्तरोको दबाते-हुए गम्भीर मुँहसे कहा, "कालेजके 'मेस'से अचानक लौट कैसे आये ?"

महेन्द्रने कहा, "सिर्फ मुरदे चीरकर और कितने दिन काट सकता था ?"

विनोदिनीने फिर दाँतसे सूत काटा और मुँह बगैर उठाये ही कहा, "अब शायद जिन्दोकी जरूरत है ?"

महेन्द्रने तय किया था कि आज वह विनोदिनीके साथ अत्यन्त सहज स्वाभाविक भावसे हास्य-परिहास और उत्तर-प्रत्युत्तर करके बातचीतका अच्छा सिलसिला जमा लेगा, किन्तु विनोदिनीकी तरफसे ऐसा एक गाम्भीर्यका भार उसपर हावी हो गया कि कोई हलका जवाब जी-जानसे कोशिश करनेपर भी उसकी जबानपर नही आया। विनोदिनी आज कैसा-तो एक तरहका कठिन दूरत्व रखती-हुई चल रही है, यह देखकर महेन्द्रका मन बडे वेगके साथ उसकी तरफ बढ़ने लगा। उसकी इच्छा होने लगी कि कोई एक जोरका धक्का देकर इस व्यवधानको वह धूलमे मिला दे। विनोदिनीके अन्तिम वाक्याघातके विरुद्ध कोई प्रतिघात न करके महेन्द्रने उसके पास बैठकर कहा, "तुम हमलोगोको छोड़कर जाना क्यो चाहती हो ? कोई अपराध बन पडा है हमसे ?"

विनोदिनीने जरा पीछे हटकर सिलाईसे मुँह उठाकर अपने विशाल उज्ज्वल नेत्रोको महेन्द्रके मुँहपर स्थापित करते-हुए कहा, "जरूरी काम तो सभीको होता

है। आप जिन-सबोको घरमे छोडकर कालेजके 'मेस'मे गये थे, सो क्या किसीके अपराधसे गये थे ? मुझे भी क्या नही जाना चाहिए ? मेरा भी क्या कोई जरूरी काम नही हो सकता ?"

महेन्द्रको इसका कोई अच्छा जवाब बहुत देर तक ढूँढे न मिला। कुछ देर ठहरकर उसने पूछा, "तुम्हारे ऐसा क्या जरूरी काम आ पडा कि बिना गये बने ही नहीं ?"

विनोदिनीने अत्यन्त सावधानीसे सुईमे डोरा पिरोते-हुए कहा, "जरूरी काम कोई है या नही, सो तो अपना ही मन जान सकता है। आपके सामने उसकी अब क्या सूची पेश करूँ!"

महेन्द्र गम्भीर चिन्तित मुँह लिये खिडकीके बाहर दूरके एक नारियलके पेडकी चोटीकी तरफ देखता-हुआ बहुत देर तक चुप बैठा रहा। विनोदिनी चुपचाप बैठी सीती ही रही। कमरेकी यह हालत हो गई कि सुई गिरे तो आवाज सुनाई दे।

बहुत देर बाद महेन्द्र सहसा बोल उठा, और अकस्मात् निस्तब्ध नीरवता भङ्ग होनेसे विनोदिनी चौक पडी, और उसकी उँगलीमे सुई चुभ गई। महेन्द्रने कहा, "तुम्हे अब क्या अनुनय-विनय करके भी किसी तरह नही रोका जा सकता ?"

विनोदिनीने अपनी आहत उँगलीका रक्त-बिन्दु चूसते-हुए कहा, "इतना अनुनय-विनय आखिर है किसलिए ? मै रहूँ तो क्या, और न रहूँ तो क्या! आपका इससे क्या बनता-बिगडता है ?" कहते-कहते उसका गला भारी हो आया, और फिर वह बहुत ज्यादा सिर झुकाकर बडे ध्यानसे सिलाई करने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि शायद उसकी झुकी-हुई आँखोमे आँसू भर आये हो।

माघका अपराह्न उस समय सन्ध्याके अन्धकारमे बिला जानेकी तैयारी कर रहा था।

महेन्द्रने उसी क्षण विनोदिनीका हाथ पकडकर गद्गद कण्ठसे कहा, "यदि उससे मेरा बनता-बिगडता हो, तो तुम रह जाओगी ?"

विनोदिनी जल्दीसे हाथ छुडाकर पीछे हट गई। महेन्द्रका भावावेगका नशा छूट गया। अपने अन्तिम शब्द गहरे व्यङ्गकी तरह उसके अपने ही कानोमे बार-बार प्रतिध्वनित होने लगे। अपनी अपराधिनी जीभको उसने दाँतोसे काट लिया, उसके बाद रसना उसकी चुप हो गई।

ठीक इसी समय उस निस्तब्ध कमरेमे आशाने प्रवेश किया। विनोदिनी उसी क्षण मानो पूर्व-कथोपकथनके सिलसिलेमे हँसती-हुई बोल उठी, "आपलोग जब कि मेरी इतनी कीमत बढा रहे है तो मेरा भी कर्तव्य है कि आपकी बात मान जाऊँ। जब तक आपलोग खुशीसे विदा नही करते तब तक मुझे रहना ही पडेगा।"

आशा पतिकी सफलतापर उत्फुल्ल होकर सखीसे लिपट गई। बोली, "तो यह बात पक्की रही!" और तुरत अपना हाथ बढाकर कहने लगी, "रक्खो हाथपर हाथ, तीन बार बचन दो,—जब तक हमलोग विदा नही करते तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।"

विनोदिनीने तीन बार वचन देकर प्रतिज्ञा की।

आशाने कहा, "बहन किरकिरी, तुम्हे रहना तो पडा ही, फिर इतने मनावने क्यो कराये? आखिर इनसे तो तुम्हे हार माननी ही पडी!"

विनोदिनीने हँसकर कहा, "क्यो लालाजी, मैने हार मानी है या तुमने?"

महेन्द्र अब तक स्तम्भित-सा हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो उसके अपराधसे सारा घर भर उठा है, लाछनाने मानो उसके सारे तन-मनको घेर लिया है। आशासे वह कैसे प्रसन्न मनसे स्वाभाविक ढगसे बात करे? एक क्षणमे वह कैसे अपने वीभत्स असयमको सरल सरस हास्यालापमे बदल डाले? ऐसा पैशाचिक इन्द्रजाल रचना उसके बूतेके बाहरकी बात है। उसने गम्भीर मुँहसे कहा, "हार तो मेरी ही हुई है।" और फिर वह तुरत कमरेसे निकलकर बाहर चला गया।

कुछ देर बाद महेन्द्र फिर लौट आया, और विनोदिनीसे बोला, "मुझे क्षमा करो।"

विनोदिनीने कहा, "तुमने कसूर क्या किया है, लालाजी, जो क्षमा करूँ!"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हे यहाँ जबरदस्ती बाँध रखनेका हमे कोई अधिकार नही।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "जबरदस्ती की कब? मैने तो नही देखी। प्रेमसे अच्छी तरह ही तो रहनेके लिए कहा है। इसका नाम जबरदस्ती थोडे ही है। बताओ तो, बहन किरकिरी, जबरदस्ती और प्रेम क्या एक ही चीज हुई?"

आशाने उससे पूरी तरह सहमत होकर कहा, "हरगिज नही।"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, तुम्हारी इच्छा है कि मै यहाँ रहूँ, मेरे चले

जानेसे तुम्हें कष्ट होगा,—यह तो मेरे लिए सौभाग्यकी बात है। क्यो बहन किरकिरी, संसारमे ऐसे सहृदय कितने मिलते है? और, किसी तरह अगर व्यथामे-व्यथित और सुखमे सुखी होनेवाले ऐसे बन्धु सौभाग्यसे मिल ही जाये, तो मै भला उन्हे छोडनेके लिए क्यो व्यस्त होने लगी!"

आशा अपने पतिको झेपकर निरुत्तर रहते देख जरा-कुछ व्यथित चित्तसे बोली, "तुम्हारे साथ बातोमे कौन जीत सकता है, बहन! इन्होने तो हार मान ही ली है, अब तुम तो जरा चुप रहो।"

महेन्द्र फिर तेजीसे बाहर चला गया। ठीक इसी समय बिहारी राजलक्ष्मीसे कुछ देर गपशप करके महेन्द्रकी खोजमे आ रहा था। महेन्द्र उसे दरवाजेके सामने देखते ही बोल उठा, "भाई बिहारी, मुझ-जैसा पाखण्डी ससारमे शायद ही कोई हो!" यह बात उसने आवेगमे आकर ऐसे जोरसे कही कि वह कमरेके भीतरवालोने भी सुन ली।

कमरेके भीतरसे उसी क्षण आह्वान आया, "बिहारी-लालाजी!"

बिहारीने कहा, "जरा ठहरो, भाभी,—अभी आया।"

विनोदिनीने कहा, "एक बार सुन तो जाओ!"

बिहारीने कमरेमे घुसते ही एक क्षणके लिए एक बार आशाकी तरफ देखा, घूँघटमेसे आशाका मुँह जितना देख सका उसमें विषाद या वेदनाका कोई चिह्न ही दिखाई नही दिया। आशाने उठके जानेकी कोशिश की तो विनोदिनीने उसे जबरदस्ती पकडके बिठा लिया, और कहने लगी, "अच्छा लालाजी, मेरी 'ऑखकी किरकिरी'के साथ तुम्हारा क्या सौतका नाता है? तुम्हे देखते ही यह भागना क्यों चाहती है?"

आशाने अत्यन्त लज्जित होकर विनोदिनीको नोचते-हुए डाट दिया।

बिहारीने हँसते-हुए जवाब दिया, "विधाताने मुझे वैसा सुन्दर नही बनाया न, इसीसे!"

विनोदिनी बोली, "देख लिया-न, किरकिरी! बिहारी-लालाजी भी बचाकर बात करना जानते है। तेरी रुचिको दोष न देकर विधातापर मढ दिया दोष। मगर लक्ष्मण-जैसा ऐसा सुलक्षण देवर पाकर भी तैंने उसकी कदर नही जानी। तेरा भाग्य ही खराब है।"

बिहारीने कहा, "इससे अगर तुम्हे मुझपर दया आती हो, भाभीजी, तो फिर मुझे अफसोस ही किस बातका !"

विनोदिनीने कहा, "समुद्र तो सामने पडा है, फिर भी मेघकी धाराके बिना चातककी प्यास क्यो नही बुझती ?"

आशाको पकडके नही रखा जा सका। वह जबरदस्ती विनोदिनीसे अपना हाथ छुडाकर चली गई। बिहारी भी जाना चाहता था। इतनेमे विनोदिनी बोल उठी, "लालाजी, महेन्द्र-बाबूको हो क्या गया है, बता सकते हो ?"

सुनकर बिहारी ठिठककर खडा हो गया। बोला, "सो तो मै नही जानता। कुछ हुआ है क्या ?"

विनोदिनीने कहा, "क्या मालूम, लालाजी, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नही दिखाई देते।"

बिहारी उद्विग्न होकर चौकीपर बैठ गया। और बातको खुलासा सुननेके लिए व्यग्रभावसे विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखने लगा।

विनोदिनी कोई बात न कहकर मन लगाकर अपना चादरा सीने लगी।

कुछ देर प्रतीक्षा करनेके बाद बिहारीने कहा, "महेन-भइयाके विषयमे कोई खास बात तुम्हारे लक्ष्यमे आई है क्या ?"

विनोदिनीने अत्यन्त साधारण-भावसे कहा, "क्या मालूम, लालाजी, मुझे तो कुछ अच्छा नही मालूम हो रहा है। मुझे अपनी 'किरकिरी'के लिए बडी चिन्ता हो रही है।" इतना कहकर उसने एक लम्बी साँस ली, और चादरा रखकर जानेके लिए उठ खडी हुई।

बिहारी व्यग्रताके साथ कह उठा, "जरा बैठो, भाभी !"

विनोदिनीने कमरेके सब दरवाजे-जंगले खोलकर लैम्पकी बत्ती जरा ऊँची कर दी, और सिलाईका चादरा लेकर अपने बिछौनेपर दूर कोनेमें जाकर बैठ गई। फिर बोली, "लालाजी, मै तो हमेशा यहाँ रहूँगी नही,—पर, मेरे चले जानेके बाद मेरी 'किरकिरी'पर तुम जरा दृष्टि रखना,—वह असुखी न होने पाये।" इतना कहकर मानो उसने अपने हृदयोच्छ्वासको रोकनेके लिए दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

बिहारी बोला उठा, "भाभी, तुम्हे यहाँ रहना ही होगा। ससारमे तुम्हारा अपना कहनेको कोई नही,—इस सरला बालिकाके सुख-दु.खकी रक्षाका भार तुम

ले लो। तुम इसे छोडकर चली जाओगी तो मुझे तो फिर कोई उपाय ही नहीं दीखता।"

विनोदिनी बोली, "लालाजी, तुम तो ससारकी रीति जानते हो। यहाँ मैं हमेशा कैसे रह सकती हूँ! लोग क्या कहेगे?"

बिहारीने कहा, "लोग जो कहे सो कहते रहे, तुम उधर कान ही मत दो। तुम देवी हो, असहाय बालिकाकी ससारके निष्ठुर आघातोसे रक्षा करना तुम्हारे ही उपयुक्त काम है। भाभी, मैंने तुम्हें पहले नही पहचाना था, इसके लिए मुझे क्षमा करना। मैंने भी सङ्कीर्णहृदय साधारण नीच लोगोकी तरह तुम्हारे सम्बन्धमें अपने मनमें नीच धारणाको स्थान दिया था। और एक बार तो ऐसा भी समझ लिया था कि तुम आशाके सुखसे ईर्षा कर रही हो, और चाहती हो,—किन्तु उस बातको जीभसे उच्चारण करना भी पाप है। उसके बाद, मुझे तुम्हारे देवी-हृदयका परिचय मिला और तुमपर गभीर भक्ति हो गई मेरी। इसीसे आज तुम्हारे आगे अपने समस्त अपराध स्वीकार किये बिना मुझसे रहा नही गया।"

विनोदिनीका सारा शरीर पुलकित हो उठा। यद्यपि वह छलना कर रही थी, तो भी बिहारीके इस भक्ति-उपहारको मिथ्या समझकर वह अपने मनमें भी उसे लौटा न सकी। ऐसी चीज उसे कभी भी किसीसे नही मिली। क्षण-भरके लिए उसे ऐसा लगा कि मानो वह वास्तवमे पवित्र है, उन्नत है, और आशाके प्रति एक प्रकारकी अनिर्देश्य दयासे उसकी आँखोसे आँसू गिरने लगे। उन आँसुओको उसने बिहारीसे छिपाया नही। उस अश्रुधाराने विनोदिनीमे ऐसा एक मोह उत्पन्न कर दिया कि जिससे वह स्वय अपने आगे अपनेको पूजनीया समझने लगी।

विनोदिनीको आँसू गिराते देख बिहारी अपने आँसू रोकनेके लिए उठकर महेन्द्रके कमरेमे चला गया। महेन्द्रने सहसा अपनेको 'पाखण्डी' क्यो घोषित किया, बिहारीको इसका कोई तात्पर्य ढूँढे नही मिला। ऊपर महेन्द्रके कमरेमें जाकर उसने देखा, महेन्द्र नही है। मालूम हुआ कि वह बाहर घूमने गया है। पहले महेन्द्र बिना-कारण कभी भी घर छोडकर बाहर नही जाता था। सुपरिचित आदमी और सुपरिचित घरके बाहर जानेमें महेन्द्रको अत्यन्त क्लान्ति और पीडा अनुभव होती थी। बिहारी अपने मनमे उधेड़-बुन करता-हुआ अपने घर चला गया।

विनोदिनीने आशाको अपने कमरेमे ले जाकर, उसे छातीसे लगाकर ऑखोमे आँसू भरकर कहा, "बहन किरकिरी, मै बडी अभागिन हूँ, मै बडी कुलक्षणी हूँ।"

आशाने व्यथित होकर उसे अपने बाहु-पाशमे बाँध लिया और स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा, "क्यो बहन, ऐसी बात क्यो कर रही हो?"

विनोदिनी रोदनोच्छ्वसित शिशुकी तरह आशाकी छातीमे अपना मुँह रखकर बोली, "मै जहाँ भी रहूँगी वहाॅ सिर्फ बुरा-ही-बुरा होगा। छोड़ दे, बहन, मुझे अपने जङ्गल-देशमे जाकर रहने दे।"

आशाने विनोदिनीकी ठोडीसे हाथ लगाकर उसका मुँह ऊपर उठाते-हुए कहा, "मेरी लछमी बहन है-न, ऐसी बात मुँहसे न निकाल, तेरे बिना मै नही रह सकती। मुझे छोड जानेकी बात तेरे मनमे आई कैसे!"

इतनेमे अकस्मात् बिहारी आ गया। महेन्द्रसे जब उसकी भेट नही हुई तो उसने सोचा कि किसी बहानेसे विनोदिनीके पास जाकर महेन्द्र और आशाके बीच पैदा होनेवाली आशङ्काके विषयमे कुछ जानकारी हासिल कर ली जाय तो अच्छा। और वह विनोदिनीसे इस बातका अनुरोध करनेके लिए कि महेन्द्रको वे कल सवेरे उसके घर जरूर भेज दे, वही खाना-पीना होगा, सीधा उसके कमरेमे चला आया। बिहारीके मुँहसे "विनोदा-भाभी" निकला ही था कि उसने सहसा लैम्पके उजालेमे बाहरसे ही देखा, दोनो सखियाॅ आलिङ्गनबद्ध है और दोनोकी ऑखोमे आँसू चमक रहे है। देखते ही वह ठिठककर जहाॅ-का-तहाॅ खडा रह गया।

सहसा आशाको ऐसा लगा कि जरूर बिहारीने उसकी 'आँखकी किरकिरी'को कोई अनुचित बात कही होगी या कोई निन्दाकी बात कही होगी,—इसीसे फिर आज उसने इस तरह चले जानेकी बात उठाई है। उसने सोचा, 'बिहारी-बाबू यह बड़ा अन्याय करते है; उनका मन साफ नही है।' आशा असन्तुष्ट होकर कमरेसे बाहर निकल गई। और बिहारी भी विनोदिनीके प्रति अपनी भक्तिकी मात्रा बढाकर विगलित-हृदयसे जल्दीसे अपने घर चला गया।

उस दिन रातको महेन्द्रने आशासे कहा, "चुन्नी, मै कल सवेरेकी गाड़ीसे काशी जा रहा हूँ।"

आशाकी छाती धडक उठी, बोली, "क्यो?"

महेन्द्रने कहा, "बहुत दिनोंसे चाचीको नहीं देखा, एक बार मिल आऊँ।"

सुनकर आशाको बडी लज्जा मालूम हुई। यह बात बहुत पहले ही उसके मनमें उदित होनी चाहिए थी। अपने सुख-दुःखके आकर्षणमें स्नेहमयी मौसीको भूले-हुए थी वह, किन्तु महेन्द्रने उस प्रवासिनी तपस्विनीकी याद की, इससे अपनेको वह कठोर-हृदया समझकर धिक्कारने लगी।

महेन्द्रने कहा, "चाची, अपने जीवनके एकमात्र 'स्नेहके धन'को मेरे ही हाथ सौंपकर चली गई है, एक बार उन्हें देखे बिना मेरा मन सुस्थिर नहीं हो सकता।"

कहते-कहते महेन्द्रका गला भर आया। स्नेह-पूर्ण नीरव आशीर्वाद और अव्यक्त मङ्गल-कामनाके साथ बार-बार वह आशाके ललाट और माथेपर अपना दाहना हाथ फेरने लगा। आशा इस अकस्मात्-स्नेहावेगका सम्पूर्ण मर्म न समझ सकी, सिर्फ उसका हृदय विगलित हो उठा और आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। आज ही शामको विनोदिनीने अकारण स्नेहातिशयसे उससे जो बातें कही थीं उनकी उसे याद उठ आई। महेन्द्र और विनोदिनीकी बातोंमें कहीं कोई सम्बन्ध है या नहीं, सो भी उसकी समझमें नहीं आया। किन्तु इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि मानो यह उसके जीवनमें किसी बातकी सूचना है। अच्छी है या बुरी, कौन जाने!

भय-व्याकुल चित्तसे उसने महेन्द्रको अपने बाहुपाशमें आबद्ध कर लिया। महेन्द्र आशाकी उस अकारण आशङ्काके आवेशका अनुभव करने लगा। बोला, "चुन्नी, तुमपर तुम्हारी पुण्यवती मौसीका आशीर्वाद है, तुम्हें कोई डर नहीं। वे तुम्हारे ही मङ्गलके लिए अपना सर्वस्व त्यागकर चली गई हैं, तुम्हारा कभी भी कोई अकल्याण नहीं हो सकता।"

आशाने तब दृढचित्तसे सम्पूर्ण भय दूर कर दिया। पतिके इस आशीर्वादको उसने अक्षय-कवचके रूपमें ग्रहण किया। वह मन-ही-मन बार-बार अपनी मौसीकी पवित्र पदधूलि माथेसे लगाती रही, और एकाग्र मनसे कहने लगी, 'मौसी, तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे पतिकी रक्षा करता रहे।"

दूसरे दिन महेन्द्र चला गया। विनोदिनीको वह कुछ भी नहीं कह गया। विनोदिनीने मन-ही-मन कहा, 'खुद तो अन्याय करना और गुस्सा मेरे ऊपर! ऐसा साधु तो मैंने कहीं नहीं देखा। पर ऐसा साधुपन ज्यादा दिन टिकता नहीं।'

२२

ससार-त्यागिनी अन्नपूर्णाने बहुत दिन बाद अकस्मात् जो महेन्द्रको आते देखा, तो एक ओर जैसे वे स्नेहके आनन्दमे फूली न समाई, दूसरी ओर वैसे उन्हें भय भी हुआ कि आशाको लेकर मासे महेन्द्रका कोई विरोध तो नही उठ खडा हुआ, जिसकी शिकायत लेकर वह यहाँ दौड़ा आया हो सान्त्वना पानेके लिए।

महेन्द्र बचपनसे ही सब तरहके सङ्कट और सन्तापके समय अपनी चाचीकी शरण लेता आया है। पहले वह किसीसे गुस्सा हो जाता था तो अन्नपूर्णा उसे समझाकर शान्त कर देती थी, या किसी बातसे उसके मनमे कोई दु ख बैठ जाता था तो वे महेन्द्रको उसे सह लेनेका उपदेश देती थी, और महेन्द्र उसे मान लेता था। किन्तु ब्याहके बादसे महेन्द्रके जीवनमे जो सबसे बड़ा सङ्कटका कारण बन गया है, उसके प्रतिकारकी चेष्टा तो दूर रही, उसमे किसी प्रकारकी सान्त्वना देना भी अन्नपूर्णाके लिए बूतेके बाहरकी बात हो गई है। असलमें, अन्नपूर्णाको जब इस बातका पक्का निश्चय हो गया कि इस विषयमे वे चाहे कितनी ही सावधानीसे हस्तक्षेप क्यो न करे, उससे घरमे अशान्ति बढनेके सिवा घटेगी बिलकुल नही, तभी वे घर छोडकर काशी चली आई थी। बीमार बच्चा जब पानीके लिए रोता है और वैद्यकी तरफसे पानी देनेकी सख्त मनाही होती है, तब पीड़ित चित्तसे मा जैसे दूसरे कमरेमे चली जाती है, अन्नपूर्णा भी ठीक उसी तरह घरसे बहुत दूर प्रवासमे चली आई थी। दूर तीर्थ-वासमे रहकर धर्म-कर्मके नियमित अनुष्ठानोमे इधर कुछ दिनोसे वे घरको बहुत-कुछ भूले-हुए थी,—अब महेन्द्र क्या फिर उन-सब विरोधकी बातोको छेडकर उनके प्रच्छन्न घावमें चोट पहुँचानेके लिए यहाँ तक दौडा आया है?

किन्तु महेन्द्रने आशा और माके विषयमे कोई चर्चा ही नही की। तब अन्नपूर्णाकी आशङ्का दूसरी तरफ मुडी। जो महेन्द्र आशाको छोडकर कालेज नही जा सकता था वह आज चाचीकी खबर लेने काशी कैसे चला आया? तो क्या आशाके प्रति महेन्द्रका आकर्षण ढीला होता जा रहा है? अन्तमे महेन्द्रसे उन्होने कुछ आशङ्काके साथ पूछा, "महेन, तुझे अपनी चाचीकी सौगन्द है, सच-सच बताना, चुन्नी अच्छी तरह है?"

महेन्द्रने कहा, "हाँ, सब अच्छी तरह है।"

अन्नपूर्णाने फिर पूछा, "आजकल वह रहती कैसे है? तुमलोगोका लडकपन वैसा ही बना-हुआ है या काम-काज भी कुछ सम्हालने लगे हो?"

महेन्द्रने कहा, "लडकपन अब बिलकुल ही जाता रहा है। सब झगडोकी असल जड वो 'चारु-पाठ' किताब न-जाने कहाँ गायब हो गई, कुछ पता ही नही। तुम रहती तो देखकर खुश होती कि पढने-लिखनेमे स्त्रियोको जितनी लापरवाही करनी चाहिए, चुन्नीने अपने उस कर्तव्यमे जरा भी लापरवाही नही की।"

अन्नपूर्णाने कहा, "बिहारी क्या करता है?"

महेन्द्रने कहा, "अपना काम छोडकर बाकी सब करता है। नायब-गुमाश्ते जमीन-जायदादका काम देखते है,—किस दृष्टिसे देखते है, सो मै नही कह सकता। उसका तो हमेशासे यही हाल है। उसका निजका काम और-लोग देखते है, और औरोका काम वह खुद देखता है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "अच्छा महेन, वो क्या ब्याह करेगा ही नही?"

महेन्द्रने मुसकराते-हुए कहा, "कहाँ, कोई लक्षण तो नही दिखाई देता।"

सुनकर अन्नपूर्णाके हृदयके गुप्त स्थानमे चोट पहुँची। वे निश्चित जान गई है कि उनकी बहनौतको देखकर एक बार बिहारी बडे आग्रहके साथ ब्याह करनेको तैयार हो गया था, किन्तु उसका वह उन्मुख आग्रह अन्याय-पूर्वक अकस्मात् दलित कर दिया गया है। बिहारीने कहा था, "चाची, मुझसे अब कभी भी ब्याह करनेका अनुरोध न करना।" व्यथित-हृदयके वे शब्द अब भी अन्नपूर्णाके कानोमे गूँज रहे थे। अपने उस एकान्त अनुगत स्नेहपात्र बिहारीको वे ऐसी भग्न-हृदयकी दशामें छोडकर चली आई है, उसे किसी तरहकी सान्त्वना भी नही दे आ सकी, इससे अन्नपूर्णा अत्यन्त विमर्ष और भयभीत होकर सोचने लगी, 'अब भी क्या बिहारीका मन आशाके प्रति आकृष्ट है?'

महेन्द्र कभी हँसी-हँसीमे और कभी गम्भीरताके साथ घरके आधुनिकतम सभी सवाद सुनाता रहा, किन्तु विनोदिनीका उसने कही कोई उल्लेख तक नही किया।

इस समय कालेज खुला-हुआ है, लिहाजा काशीमे उसे ज्यादा दिन नही ठहरना चाहिए। किन्तु कठिन रोगके बाद स्वास्थ्यकर आब-हवामे जाकर आरोग्य-लाभ करनेमे जो सुख होता है, महेन्द्र काशीमे अन्नपूर्णाके पास रहकर प्रतिदिन उसी सुखका

अनुभव कर रहा था, इसलिए कलकत्ते जानेकी बात उसके मनमे ही न आई। उसके मनमे अपने साथ अपना जो एक विरोध पैदा होने लगा था, देखते-देखते वह दूर हो गया। इधर कई दिनोसे सर्वदा धर्मपरायणा अन्नपूर्णाकी स्नेहमयी मुखच्छवि देखते-देखते घर-गृहस्थीका कर्तव्य-पालन उसे इतना सहज और सुखकर मालूम होने लगा कि उसके पहलेके आतङ्ककी याद करके उसे हँसी आने लगी। उसे ऐसा लगने लगा कि विनोदिनी कुछ भी नही है। यहाँ तक कि उसके चेहरेको भी वह अपने मनमे स्पष्ट रूप न दे सका। अन्तमे महेन्द्र काफी जोरके साथ मन ही मन कहने लगा, 'आशाको मेरे हृदयसे एक बाल-बराबर भी हटा सके, ससारमे ऐसा तो मुझे कही कोई दिखाई नही पडता।'

महेन्द्रने अन्नपूर्णासे कहा, "चाची, कालेजमे मेरी गैरहाजिरी बढती जा रही है, अब मुझे जाना चाहिए। यद्यपि तुम घरकी ममता त्यागकर इतनी दूर एकान्तमे आकर रह रही हो, तो भी आज्ञा दो, कभी-कभी आकर मै तुम्हारी चरणोकी धूल ले जाया करूँ।"

महेन्द्रने घर आकर जब आशाको उसकी मौसीकी तरफसे दो स्नेहोपहार दिये, सिन्दूरकी डिबिया और सफेद पत्थरकी छोटी-सी घण्टी, तब आशाकी आँखोसे झरझर आँसू झरने लगे। मौसीके परम स्नेहमय धैर्य और उनपर अपने और सासके उपद्रवोकी याद करके आशाका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने पतिसे कहा, "मेरी बडी इच्छा होती है कि मै भी एक बार मौसीके पास जाकर उनसे क्षमा माँग आऊँ और उनके चरणोंकी धूल ले आऊँ। तुम मेरी इतनी-सी प्रार्थनाको क्या किसी भी तरह पूरी नही कर सकते?"

महेन्द्र आशाकी वेदनाको समझ गया, और कुछ दिनके लिए उसे मौसीके पास काशी भेजनेको राजी भी हो गया; किन्तु फिरसे कालेजकी गैरहाजिरी करके आशाको काशी पहुँचानेमे उसका मन दुबिधा करने लगा।

आशाने कहा, "मेरी ताईजी जल्दी ही काशी जानेवाली है, उनके साथ भेज दो तो क्या हर्ज है?"

महेन्द्रने मासे जाकर कहा, "मा, बहू एक दफे काशी जाना चाहती है, चाचीसे मिलने—"

राजलक्ष्मीने श्लेष-वाक्यमें कहा, "बहू जाना चाहती है तो जरूर जायेंगी, जाओ, उन्हे ले जाओ।"

महेन्द्रने फिर अन्नपूर्णाके पास जाना-आना शुरू कर दिया है, यह उन्हे अच्छा नहीं लगा, बहूके जानेकी बात सुनकर वे भीतर-ही-भीतर और भी नाराज हो उठी।

महेन्द्रने कहा, "मेरा कालेज चालू है, मै नही जा सकूँगा। उसके ताऊ जा रहे है, उनके साथ चली जायगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह तो और भी अच्छी बात है! उसके ताऊ बड़े आदमी ठहरे, हम-जैसे गरीबोकी कभी छाया तक नही छूँदते,—बहूरानी अगर उनके साथ जा सकी, तो हमारा कितना गौरव बढेगा!"

इस तरह उत्तरोत्तर माके श्लेष-वाक्य सुनते-सुनते महेन्द्रका मन सहसा कठोर होकर मुड खडा हुआ। उसने माको कोई उत्तर न देकर आशाको काशी भेजनेकी दृढ प्रतिज्ञा कर ली, और बडी तेजीसे वहाँसे चल दिया।

बिहारी जब राजलक्ष्मीसे मिलने आया तब उन्होने उससे कहा, "सुन लिया, बिहारी, हमारी बहूरानी काशी जाना चाहती है!"

बिहारीने कहा, "तुम कहती क्या हो, मा! महेन-भइया फिर कालेजका हर्ज करके काशी जायेगे?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नही नही, महेन क्यों जाने लगा! तब फिर बीबीका 'बीबियाना' कहाँ रहा? महेन्द्र यही रहेगे, बहूरानी अपने ताऊ महाराजके साथ काशी पधारेगी! अब क्या है, बिहारी, सब 'साहब-बीबी' बने जाते है।"

बिहारी भीतर-ही-भीतर उद्विग्न हो उठा, किन्तु आधुनिक साहबी-फैशनकी दुश्चिन्ता उसका कारण नही। बिहारी सोचने लगा, 'मामला क्या है? महेन्द्र जब काशी गया तब आशा यही रही, और महेन्द्र जब यहाँ आया तब आशा काशी जाना चाहती है! तो क्या दोनोके बीच कोई जबरदस्त मनमुटाव हो गया है? किन्तु इस तरह कितने दिन चलेगा? मित्र होकर भी मै क्या इसका कोई प्रतिकार नही कर सकता, दूर खडा तमाशा देखता रहूँगा?'

माताके व्यवहारसे अत्यन्त क्षुब्ध होकर महेन्द्र अपने सोनेके कमरेमें जाकर बैठा था। इस बीचमे विनोदिनी महेन्द्रसे मिली नही थी, इसलिए आशा बगलके कमरेमे बैठी विनोदिनीसे महेन्द्रके पास चलनेके लिए अनुरोध कर रही थी।

इतनेमे बिहारीने आकर महेन्द्रसे कहा, "आशा-भाभीका काशी जाना क्या तय हो चुका है ?"

महेन्द्रने कहा, "होता क्यों नही ? बाधा क्या है ?"

बिहारीने कहा, "बाधाकी बात कौन कह रहा है ? किन्तु अचानक ऐसी खामखयाली तुमलोगोके दिमागमे आई कैसे ?"

महेन्द्रने कहा, "मौसीसे मिलनेकी इच्छा या प्रवासी आत्मीय-जनोके लिए व्याकुलता दिमागमे आना कोई विचित्र बात नही,—मानव-चरित्रमे कभी-कभी ऐसा हुआ ही करता है।"

बिहारीने कहा, "तुम साथ जा रहे हो ?"

प्रश्न सुनते ही महेन्द्र ताड गया कि बिहारी शायद इसी बातकी आलोचना करने आया है कि ताऊके साथ आशाका काशी जाना उचित नही। इसलिए उसने इस डरसे कि बात-बातमे बात न बढ जाय और उसका क्रोध उग्र न हो उठे, सक्षेपमे कह दिया, "नही।"

बिहारी महेन्द्रको पहचानता है। उसका भीतरी गुस्सा बिहारीसे छिपा न रहा। बिहारी यह भी जानता है कि एक बार वह जिद पकड ले तो फिर उसे विचलित नही किया जा सकता। इसलिए फिर उसने महेन्द्रके जानेकी बात नही छेड़ी। वह सोचने लगा, 'बेचारी आशा अगर अपनी मानसिक वेदनाका बोझ लिये-हुए ही काशी जा रही हो, तो वहाँ उसे बहुत-कुछ सान्त्वना मिल सकती है।' और फिर वह धीरेसे बोला, "साथमे विनोदा-भाभी जाये तो कैसा ?"

महेन्द्र गरज उठा, बोला, "सुनो बिहारी ! तुम अपने मनकी बात साफ-साफ कह डालो। मेरे साथ छल-छन्द करनेकी कोई जरूरत नही। मै जानता हूँ, तुम भीतर-ही-भीतर मुझपर सन्देह करते हो कि मै विनोदिनीसे प्रेम करता हूँ। मैं प्रेम नही करता। मेरी रक्षाके लिए तुम्हे पहरा देते-फिरनेकी जरूरत नही। तुम अब अपनी रक्षा करो। यदि सरल मित्रताका भाव तुम्हारे मनमे होता, तो बहुत दिन पहले तुम मुझसे अपने मनकी बात कह देते, और अपनेको मित्रके अन्त पुरसे बहुत दूर ले जाते। अब मै तुम्हारे मुँहपर साफ-साफ कहता हूँ, तुम आशासे प्रेम करते हो।"

जबरदस्त चोट या दर्दके स्थानको दोनो पाँवोसे रौद देनेसे आहत व्यक्ति

जैसे एक क्षण भी विचार न करके तुरत आघातकारीको जोरसे धक्का देकर फेंक देनेकी कोशिश करता है, रुद्धकण्ठ बिहारी भी उसी तरह अपना सफेद-फक मुँह लिये कुरसीसे उठकर महेन्द्रकी तरफ झपटा, किन्तु दूसरे ही क्षण सहसा ठिठककर बडी मुश्किलसे गलेसे आवाज निकालकर बोला, "ईश्वर तुम्हे क्षमा करे, मै जाता हूँ।" और लडखडाता-हुआ घरसे बाहर निकल गया।

इतनेमे, बगलके कमरेमेसे बाहर निकलकर, विनोदिनीने पीछेसे पुकारा, "बिहारी-लालाजी!"

बिहारीने दीवारके सहारे खडे होकर जरा हँसनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "क्या है, विनोदा-भाभी?"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, किरकिरीके साथ मै भी काशी जाऊँगी।"

बिहारीने कहा, "नही भाभी, नही, यह नही होगा, हरगिज नही होगा। तुमसे मै विनती करता हूँ, मेरी बातपर तुम कुछ भी मत करना। मै यहाँका कोई भी नही हूँ, मै यहाँकी किसी भी बातमे दखल नही देना चाहता, इससे अच्छा नही होगा। तुम देवी हो, तुम जो अच्छा समझो सो करो। मै चल दिया।"

इतना कहकर बिहारीने विनोदिनीको विनम्र नमस्कार किया, और तुरत वहाँसे चल दिया।

विनोदिनीने उसे टोकते-हुए कहा, "मै देवी नही हूँ, लालाजी, जरा सुन जाओ। तुम्हारे चले जानेसे यहाँ किसीकी भी भलाई नही होगी। पीछे तुम मुझे दोष न देना!"

बिहारी चला गया। महेन्द्र स्तम्भित-हुआ बैठा था। विनोदिनी उसपर अग्निमय वज्रके समान एक कठोर कटाक्ष फेकती-हुई बगलके कमरेमे चली गई। उस कमरेमे आशा असह्य लज्जा और सङ्कोचके मारे मरी जा रही थी। बिहारी उससे प्रेम करता है, यह बात महेन्द्रके मुँहसे सुनकर उससे अपना मुंह उठाये नही उठ रहा था। किन्तु उसपर विनोदिनीको आज दया नही आई। आशा अगर उस समय आँख उठाकर विनोदिनीकी तरफ देखती तो वह डर जाती। विनोदिनीपर मानो खून सवार हो गया हो, मानो घर-भरको वह इसी क्षण भस्म कर देना चाहती हो। मानो, मन-ही-मन वह कह रही हो, 'सब झूठ बात है। मुझसे कोई नही प्रेम करता, सब-के-सब इस लज्जावती मोमकी गुडियासे ही प्रेम करते है।'

महेन्द्रने उस दिन जो आवेगमे आकर बिहारीसे कह डाला था कि "मै पाखण्डी हूँ" उसके लिए आवेश शान्त होनेके बादसे वह बिहारीके आगे कुछ लज्जित-सा रहता था। वह समझ रहा था कि उसकी सभी बाते मानो व्यक्त हो गई है। वह विनोदिनीको नही चाहता, किन्तु बिहारी समझ गया है कि वह चाहता है, इससे बिहारीपर उसे बडा गुस्सा आ रहा था। खासकर उस घटनाके बादसे जितनी भी बार बिहारी उसके सामने आता था उतनी ही बार उसे ऐसा लगता था कि बिहारी मानो कुतूहलके साथ उसके भीतरकी बातोका पता लगाता फिर रहा है। उसका यह सन्देहमय क्रोध उत्तरोत्तर जमता ही चला जा रहा था, और आज जरा-सा आघात लगते ही वह फूट पडा।

किन्तु विनोदिनीका बगलके कमरेसे इस तरह व्याकुलताके साथ दौडकर आना, इस तरह आर्त कण्ठसे बिहारीको रोकनेकी कोशिश करना और बिहारीके आदेशानुसार आशाके साथ काशी जानेको तैयार हो जाना, ये सब बाते महेन्द्रके लिए कल्पनातीत थी। इस दृश्यने महेन्द्रको प्रबल आघातसे विह्वल कर दिया। उसने कहा था कि वह विनोदिनीको नही चाहता, किन्तु उसने जो-कुछ सुना, जो-कुछ देखा, उसने उसे सुस्थिर नही रहने दिया, वह उसे चारो तरफसे विचित्र-रूपसे पीडित करने लगा। महेन्द्र बार-बार निष्फल परितापके साथ सोचने लगा कि 'विनोदिनीने मेरे मुँहसे सुन लिया कि मै उसे नही चाहता।'

२३

महेन्द्र सोचने लगा, "मैने कहा है कि 'झूठ बात है, मै विनोदिनीको नही चाहता।' बहुत ही कठोरतासे कहा है। 'मै उससे प्रेम करता हूँ', यह न सही, किन्तु 'मै उससे प्रेम नही करता', यह तो बड़ी कठोर बात है। ऐसी स्त्री कौन है जिसे इस बातसे चोट न पहुँचे? इसके विरुद्ध प्रतिवाद करनेका अवसर कब और कहाँ मिलेगा? यह बात ठीकसे नही कही जा सकती कि 'मै उसे चाहता हूँ', किन्तु 'मैं नही चाहता' इस बातको जरा हलकी करके नरम करके जताना जरूरी था। विनोदिनीके मनमे ऐसी एक निष्ठुर किन्तु गलत धारणा होने देना अन्याय है।"

सोचते-सोचते महेन्द्र अपने बक्समेसे फिर उन तीनो चिट्ठियोको निकालकर पढ़ने लगा। और मन-ही-मन कहने लगा, 'विनोदिनी मुझसे प्यार करती है, इसमें

सन्देह नही। किन्तु कल वह बिहारीके आगे इस तरह क्यो आ पडी? सिर्फ मुझे दिखानेके लिए? मैने जब कि उससे स्पष्ट ही कह दिया था कि मै उसे नही चाहता, तो वह किसी मौकेसे मेरे प्रेमको न ठुकराती तो क्या करती? इस तरह मुझसे अपमानित होकर शायद वह बिहारीसे प्रेम कर भी सकती है।'

महेन्द्रका क्षोभ इतना ज्यादा बढता गया कि अपनी चचलतासे वह खुद ही विस्मित और भयभीत हो उठा। मान लो, विनोदिनीने सुन ही लिया कि महेन्द्र उससे प्यार नही करता, तो उसमे दोष क्या हो गया? मान लो, इस बातसे अभिमानिनी विनोदिनी महेन्द्रकी तरफसे अपना मन खीच लेनेकी कोशिश करेगी, तो इससे उसका नुकसान क्या? आँधी-तूफानके समय नावकी जजीर जैसे लंगरको जोरसे खीचे रहती है, महेन्द्र वैसी ही व्याकुलताके साथ आशाको मानो जरूरतसे ज्यादा जोर लगाकर पकडे रहनेकी कोशिश करने लगा।

रातको महेन्द्रने आशाको अपनी छातीके पास खीचते-हुए कहा, "चुन्नी, तुम मुझे कितना प्यार करती हो, ठीक-ठीक बताना?"

आशा सोचने लगी, यह कैसा प्रश्न? बिहारीको लेकर आज जो एक अत्यन्त लज्जाजनक बात उठी है उसीसे क्या उसपर ऐसी सन्देहकी छाया पड़ रही है? उसने मारे शरमके मरकर कहा, "छी छी, आज तुम ऐसी बात क्यो पूछ रहे हो? मै तुम्हारे पॉवो पडती हूँ, तुम मुझसे खुलासा कहो, मेरे प्यारमे तुमने कब कहाँ क्या कमी पाई है?"

महेन्द्रने आशाको पीडित करके उसका माधुर्य निकाल लेनेकी गरजसे कहा, "तो फिर तुम काशी क्यो जाना चाहती हो?"

आशाने कहा, "मै काशी नही जाना चाहती,—मै कही भी नही जाना चाहती।"

महेन्द्रने कहा, "इसके पहले तो जाना चाहती थी?"

आशाने अत्यन्त व्यथित होकर कहा, "तुम्हे तो मालूम है, मै क्यो जाना चाहती थी।"

महेन्द्रने कहा, "मुझे यहाँ अकेला छोड़कर अपनी मौसीके पास शायद तुम ज्यादा आरामसे रहती?"

आशाने दृढताके साथ कहा, "नही, कभी नही। मै वहाँ आरामके लिए नही जाना चाहती थी।"

महेन्द्रने कहा, "मै सच कहता हूँ, चुन्नी, तुम और-किसीसे ब्याह करती तो बहुत ज्यादा सुखी हो सकती थी।"

इस बातको सुनते ही आशा क्षणमे महेन्द्रकी छातीके पाससे हटकर तकियेसे मुँह ढककर, पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो रही , और दूसरे ही क्षण अपने रोनेको वह रोके न रोक सकी। महेन्द्रने सान्त्वना देनेके लिए उसे छातीसे लगानेकी कोशिश की, किन्तु आशाने तकिया नही छोडा। पतिव्रताके इस अभिमानसे महेन्द्र सुखसे गर्वसे धिक्कारसे क्षुब्ध हो उठा।

जो बाते अब तक भीतर-ही-भीतर आभासके रूपमे थी, उन-सबने सहसा स्पष्ट शब्दोमे परिस्फुट होकर सबके मनमे एक तरहकी हलचल मचा दी।

विनोदिनी अपने मनमे सोचने लगी, ऐसे स्पष्ट दोषारोपके विरुद्ध बिहारीने कोई प्रतिवाद क्यो नही किया? बिहारी अगर झूठा प्रतिवाद भी करता, तो भी विनोदिनी शायद कुछ खुश ही होती। अच्छा हुआ, महेन्द्रने बिहारीको जो चोट पहुँचाई है वह उसे मिलनी ही चाहिए थी। बिहारी सरीखा ऐसा महान पुरुष क्यो आशासे प्रेम करेगा? अच्छा हुआ, इस चोटने बिहारीको दूर ढकेल दिया, यह अच्छा ही हुआ। इससे विनोदिनी मानो निश्चिन्त हो गई।

किन्तु बिहारीका वह मृत्यु-वाणाहत रक्तहीन सफेद-फक चेहरा विनोदिनीके सब काममे मानो उसके पीछे-पीछे फिरने लगा। विनोदिनीके भीतर जो सेवा-परायणा नारी-प्रकृति थी वह उस आर्त-मुखको देख-देखकर रोने लगी। रुग्ण बच्चेको मा जैसे अपनी छातीके पास हिलाती-बहलाती रहती है, उसी तरह उस आतुर मूर्तिको विनोदिनी अपने हृदयमे रखकर हिलाने-बहलाने लगी। उसे स्वस्थ करके उस चेहरेपर फिर रक्तकी झलक, प्राणोका प्रवाह, हास्यका विकाश देखनेके लिए विनोदिनीमे एक तरहकी अधीर उत्सुकता पैदा हो गई।

दो-तीन दिन तक सब कामोमे इस तरह उन्मना रहनेके बाद विनोदिनीसे फिर रहा नही गया। उसने बिहारीके नाम एक सान्त्वनाका पत्र लिखा। उसमे लिखा :—

"लालाजी, जबसे मैने तुम्हारा उस दिनका सूखा चेहरा देखा है तबसे मै बराबर प्राण-मनसे यही कामना कर रही हूँ कि तुम स्वस्थ होओ, तुम जैसे थे वैसे ही हो जाओ। तुम्हारी वह सहज-सरल हँसी अब मै कब देखूँगी,

तुम्हारी वे उदार बाते अब मै कब सुनूँगी ? तुम कैसे हो, दो लाइन लिखकर मुझे जता देना।

तुम्हारी—
विनोदा-भाभी।"

विनोदिनीने यह चिट्ठी दरवानके हाथ बिहारीके घर भिजवा दी।

बिहारीने कभी स्वप्नमे भी इस बातकी कल्पना नही की थी कि उसके और आशाके विषयमे महेन्द्र कभी भी इतना रूढ होकर ऐसे गर्हित ढगसे ऐसी बात मुँहसे निकाल सकता है कि 'आशासे बिहारी प्रेम करता है!' कारण, उसने खुद भी कभी ऐसी बातको स्पष्टत मनमे स्थान नही दिया। पहले तो वह वज्राहत-सा हो गया, उसके बाद क्रोधसे घृणासे फड़फडाता-हुआ कहने लगा, "यह अन्याय है, असङ्गत है, बेबुनियाद है।"

किन्तु बात जब कि एक बार उच्चारित हो चुकी है तब उसे फिर पूरी तरह मारके मिटाया नही जा सकता। उसमे जितना-सा भी सत्यका बीज था वह देखते-देखते अकुरित हो उठने लगा। एक दिन वह 'लडकी देखने' महेन्द्रके साथ श्यामबाजार गया था, और वहाँ सूर्यास्तके समय बगीचेसे उच्छ्वसित पुष्प-सुगन्ध-प्रवाहमे उसने जिस लज्जिता बालिकाके सुकुमार मुखडेको बिलकुल अपना समझकर विगलित अनुरागके साथ देखा था, आज उसीकी उसे बार-बार याद आने लगी और अपनी छातीके पास वह कैसा-तो एक भारी बोझ-सा अनुभव करने लगा। उसे ऐसा लगा, मानो एक अत्यन्त कठिन वेदना उसके हृदयसे लेकर कण्ठ तक आलोडित हो रही हो। बहुत रात तक छतपर पडे-पडे और मकानके सामनेके रास्तेपर तेजीसे टहलते-टहलते उसके मनमे अब तक जो अव्यक्त था वह व्यक्त हो उठा। जो सयत था वह उद्दाम हो उठा। अपने आगे भी जिसका कोई प्रमाण नही था, महेन्द्रकी बातसे मानो वह विराट प्राण पाकर बिहारीके भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त हो गया।

और तब उसने अपनेको अपराधी समझा, और मन-ही-मन कहा, 'मेरे लिए तो अब नाराज होना शोभा नही देता, महेन्द्रसे क्षमा माँगनेके बाद ही मुझे उससे विदा लेनी चाहिए। उस दिन मै इस तरह चला आया, मानो महेन्द्र दोषी हो और मै विचारक। अपने उस अन्यायको मै स्वीकार कर आऊँगा।'

बिहारी समझता था कि आशा काशी चली गई होगी। एक दिन शामके

वक्त वह आहिस्ते-आहिस्ते टहलता-हुआ महेन्द्रके घरके सामने उपस्थित हुआ। राजलक्ष्मीके दूर-सम्पर्कके मामा साधुचरण सामने मिल गये, तो बिहारीने उनसे पूछा, "इधर कई दिनोसे मैं आ नही सका,—यहाँकी खबर तो सब अच्छी है?"

साधुचरणने सबका कुशल-सवाद जता दिया।

बिहारीने पूछा, "बहू काशी कब गई?"

साधुचरणने कहा, "अभी नही गई,—अब शायद जायगी भी नही।"

सुनते ही, कोई बाधा न मानकर बिहारीका मन अन्त पुरकी तरफ दौड चला। पहले वह जैसे सहज-स्वाभाविक भावसे, जैसे आनन्दसे, आत्मीयकी तरह परिचित जीनेसे खटाखट सीढियाँ चढता-हुआ भीतर चला जाया करता था, सबके साथ स्निग्ध कौतुकसे हास्यालाप किया करता था, मनमे किसी तरहका खयाल ही नही उठता था, आज उन सब बातोको अपने लिए अवैध और दुर्लभ समझकर ही उसका चित्त मानो उन्मत्त हो उठा। आज और-एक बार, अन्तिम बार उसी तरह भीतर जाकर घरके लडकेकी तरह राजलक्ष्मीसे बातचीत करके, एक बार घूँघटसे आवृत आशासे 'भाभी' कहकर दो-चार तुच्छ बाते कर आना उसके लिए परम आकाक्षाका विषय हो उठा।

साधुचरणने कहा, "अँधेरेमे खडे कैसे रह गये, भई, चलो भीतर चलो।"

मामाकी बात सुनकर बिहारी तेजीसे कदम रखता-हुआ कुछ दूर तक भीतर गया, और फिर अकस्मात् रुककर बोला, "जाता हूँ, एक जरूरी काम है मुझे।" इतना कहकर वह जल्दीसे अपने घर चला गया।

और उसी दिन रातकी गाडीसे वह पश्चिमकी तरफ घूमने चल दिया।

इधर जो दरवान विनोदिनीकी चिट्ठी लेकर गया था, वह बिहारीके घरपर न मिलनेसे वापस लौट रहा था। महेन्द्र उस समय अपने मकानके सामनेवाले छोटे-से बगीचेमे टहल रहा था। उसने दरवानके हाथमे चिट्ठी देखकर पूछा, "किसकी चिट्ठी है?"

दरवानने सब बात बता दी। महेन्द्रने उससे चिट्ठी ले ली।

एक बार उसने सोचा कि चिट्ठी लेकर वह खुद विनोदिनीके पास जाय, और अपराधिनी विनोदिनीका लज्जित चेहरा एक बार वह खुद देख आये; अपने मुँहसे वह कुछ कहेगा-सुनेगा नही। इस चिट्ठीमे विनोदिनीके लिए लज्जाकी बात होगी

ही, इसमे महेन्द्रको जरा भी सन्देह नही था। उसे याद उठ आई, पहले भी और-एक दिन बिहारीके नाम इस तरहकी चिट्ठी गई थी। चिट्ठीमें क्या लिखा है, इस बातको जाने बगैर महेन्द्रको किसी भी तरह चैन नही पड़ा। उसने मनको समझाया कि विनोदिनी उसके घरमे है, इस समय वही उसका अभिभावक है और वही उसकी भलाई-बुराईके लिए जिम्मेदार है, इसलिए, इस तरहकी सन्देह-जनक चिट्ठी खोलकर देखना उसका कर्तव्य है। विनोदिनीको बुराईके रास्ते जाने देना किसी भी हालतमे उचित नही।

महेन्द्रने छोटी-सी चिट्ठी खोलकर पढ ली। वह सहज-सरल भाषामे लिखी गई थी, इसलिए अकृत्रिम उद्वेग उसमेसे स्पष्ट प्रकट हो रहा था। चिट्ठीको बार-बार पढकर और बहुत सोच-विचारकर भी महेन्द्र तय नही कर पाया कि विनोदिनीके मनकी गति किस तरफ है। उसे बार-बार यही आशका होने लगी कि 'मैने जो उसका 'नही चाहता' कहकर अपमान किया है, उस अभिमानसे ही विनोदिनी दूसरी तरफ मन लगानेकी चेष्टा कर रही है। गुस्सेमे आकर मेरी आशा उसने बिलकुल ही छोड दी है।'

इस बातका खयाल आते ही महेन्द्रके लिए धीरज रखना एकदम असम्भव हो उठा। जो विनोदिनी स्वय ही उसके आगे आत्म-समर्पण करने आई थी वह उसकी क्षण-भरकी मूढतासे उसके अधिकारसे बिलकुल ही अलग चली जायगी, इस सम्भावनाने महेन्द्रको स्थिर नही रहने दिया। वह सोचने लगा, 'विनोदिनी मुझे अगर मन-ही-मन चाहती है, मुझसे प्रेम करती है, तो यह उसके लिए मगलकारी है, वह एक ही जगह बँधी रहेगी। मै अपने मनको जानता हूँ, मै उसके साथ किसी तरहका अन्याय नही करूँगा। वह मुझसे बेखटके प्रेम कर सकती है। मै आशाको प्यार करता हूँ, मुझसे उसे कोई डर नही। किन्तु वह यदि और-किसी तरफ मन दे, तो उसका क्या सर्वनाश हो सकता है, कौन जाने!' अन्तमे उसने तय किया कि उसे खुद पकडाई न देकर विनोदिनीके मनको किसी मौकेसे और-एक बार अपनी तरफ खीचना ही पडेगा।

महेन्द्रने अन्त पुरमे प्रवेश करते ही देखा कि विनोदिनी रास्तेमे खडी-खड़ी मानो किसीके लिए उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा कर रही है। देखते ही महेन्द्रके मनमे चटसे विद्वेष भभक उठा। उसने कहा, "अजी, यहाँ व्यर्थ ही खडी हो, मुलाकात

नहीं होनेकी। यह देखो तुम्हारी चिट्ठी लौट आई है।" कहते-हुए उसने चिट्ठी उसके सामने पटक दी। विनोदिनीने कहा, "खुली-हुई क्यो ?"

महेन्द्र कुछ जवाब दिये बिना ही चला गया। विनोदिनीने समझा कि बिहारीने चिट्ठी खोली है और पढकर बिना उत्तरके ही वापस कर दी है। इससे उसके एडीसे चोटी तक सर्वाङ्गमे आग-सी लग गई। जो दरवान चिट्ठी लेकर गया था उसे बुला भेजा। किन्तु वह दूसरे कामसे चला गया था, मिला नही। प्रदीपके मुँहसे जैसे जलती-हुई तेलकी बूँदे टपकती है, ठीक वैसे ही बन्द कमरेमे विनोदिनीकी आँखोमेंसे हृदयकी ज्वाला आँसूके रूपमे झरने लगी। अपनी चिट्ठीको फाडकर उसने टुकडे-टुकडे कर डाले, फिर भी उसे सान्त्वना नही मिली। उस दो-चार पक्तिके स्याहीके दागको अतीतसे वर्तमानसे बिलकुल पोछकर साफकर देनेका, बिलकुल 'ना' कर देनेका अब कोई उपाय ही नही रहा? क्रुद्धा मधुकरी जिसे सामने पाती है उसीको काट खाती है, क्षुब्धा विनोदिनी भी उसी तरह अपने चारो तरफके सब-कुछको जला डालनेके लिए तैयार हो गई। वह जो चाहती है उसीमे बाधा? क्या वह किसी बातमे ही कृतकार्य नही हो सकेगी? सुख यदि नही मिला, तो न सही,—जो उसके समस्त सुखके अन्तराय बने है, जिन्होने उसे कृतार्थतासे भ्रष्ट किया है और समस्त सम्भावित सम्पदासे वञ्चित किया है उन्हे परास्त करके धूलमे मिला देनेसे ही उसके व्यर्थ जीवनका कार्य पूरा हो जायगा।

२४

उस दिन नूतन फागुनमे प्रथम-वसन्तकी हवा चलते ही आशा बहुत दिन बाद सन्ध्याके आरम्भमें छतपर चटाई बिछाकर बैठी थी। हाथमें एक मासिकपत्र लिये-हुए उस स्वल्प प्रकाशमे वह कोई धारावाहिक लम्बी कहानी खूब मन लगाकर पढ रही थी। कहानीका नायक तब साल-भर बाद दुर्गा-पूजाकी छुट्टियोमें घर आते समय रास्तेमे डाकुओके हाथ पड गया था। आशाका हृदय उद्वेगसे काँपने लगा। उधर अभागिनी नायिका ठीक इसी समय विपत्तिका स्वप्न देखकर रोती हुई जाग पडी। आशासे अपने आँसू रोके न रुके। आशा कहानी-साहित्यकी उदार समालोचक थी। वह जो भी कहानी पढती थी वही उसे 'बहुत अच्छी' लगती थी। और उसी वक्त विनोदिनीको बुलाकर कहती थी, "किरकिरी, तुम्हे मेरे

गलेकी सौगन्द, जरा इस कहानीको पढो। ऐसी सुन्दर है कि क्या कहूँ ! पढते-पढते रुलाई आने लगती है।" किन्तु विनोदिनी भले-बुरेका विचार करके अपनी समालोचनासे आशाके उच्छ्वसित उत्साहको बडी चोट पहुँचाया करती थी।

आजकी कहानी पढकर आशाने निश्चय किया कि वह इसे महेन्द्रको पढने देगी। कहानी पूरी पढकर ज्योही उसने मासिकपत्र बन्द किया त्योही महेन्द्र आ पहुँचा। महेन्द्रका चेहरा देखते ही आशा उत्कण्ठित हो उठी। महेन्द्रने जबरदस्ती प्रफुल्लता लानेकी चेष्टा करते-हुए कहा, "अकेली छतपर बैठी किस भाग्यवानका ध्यान कर रही हो?"

आशा नायक-नायिकाकी बात बिलकुल भूल गई। बोली, "आज तुम्हारी तबीयत अच्छी नही क्या?"

महेन्द्रने कहा, "तबीयत तो अच्छी ही है।"

आशाने कहा, "तो फिर भीतर-ही-भीतर किसी दुश्चिन्तामे होगे। मुझे साफ-साफ बताओ-न, क्या बात है?"

महेन्द्रने आशाके पानदानसे एक पान उठाकर मुँहमे डालते-हुए कहा, "मैं सोच रहा था, तुम्हारी मौसी बेचारीने कितने दिनोसे तुम्हे देखा नही है,—एक बार अचानक अगर तुम उनके पास जा खडी हो तो वे कितनी खुश होगी!"

आशा कुछ उत्तर न देकर महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखती रही। उसकी कुछ समझमे नही आया कि महेन्द्रके मनमे आज फिर क्यो यह बात नये रूपमे उठी।

आशाको चुप देखकर महेन्द्र बोला, "जानेको जी नही चाहता तुम्हारा?"

इस बातका उत्तर देना कठिन है। मौसीको देखनेके लिए जानेकी इच्छा तो होती है, किन्तु महेन्द्रको छोडकर जानेकी इच्छा नही होती।

आशाने कहा, "कालेजसे छुट्टी लेकर तुम जब जा सकोगे, तभी मैं जाऊँगी तुम्हारे साथ।"

महेन्द्रने कहा, "छुट्टी तो मिल जायगी, पर, मेरा जाना बिलकुल असम्भव है। मुझे परीक्षाके लिए तैयारी करनी होगी।"

आशाने कहा, "तो जाने दो, फिर कभी देखा जायगा।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो, जाने क्यो दो? तुम तो जाना चाहती थी,—जाओ-न, हो आओ।"

आशाने कहा, "नही, मेरी जानेकी इच्छा नही।"

महेन्द्रने कहा, "उस दिन तो इतनी इच्छा थी, आज अचानक वह इच्छा कहाँ चली गई ?"

इस बातपर आशा आँखे नीची करके चुप बैठी रही। बिहारीके साथ सन्धि करनेके लिए बाधाहीन सुअवसरकी चाहमे महेन्द्र भीतर-ही-भीतर अत्यन्त अधीर हो उठा था। आशाको चप रहते देख उसे अकारण क्रोध आ गया। बोला, "तुम मुझे भीतर-ही-भीतर सन्देह करने लगी हो क्या ? इसीलिए शायद तुम मुझे अपनी आँखोके सामने रखकर पहरा देना चाहती हो ?"

आशाकी स्वाभाविक मृदुता नम्रता और धैर्य महेन्द्रके लिए सहसा अत्यन्त असह्य हो उठा। उसने अपने मनमे कहा, 'मौसीके पास जानेकी इच्छा है तो कहना चाहिए कि मै जाऊँगी ही, जैसे भी हो मुझे भेज दो,—सो तो नही, कभी हाँ, कभी ना, कभी चुप,—यह क्या ढग है!'

सहसा महेन्द्रकी इस उग्रताको देखकर आशा विस्मित और भयभीत हो उठी। बहुत कोशिश करनेपर भी उसे कोई उत्तर नही सूझा। उसकी कुछ समझमे नही आता कि महेन्द्र क्यो कभी सहसा इतना प्यार करने लगता है और क्यो अचानक ऐसा निष्ठुर हो उठता है। इस तरह महेन्द्र आशाके लिए जितना ही दुर्बोध्य होता जाता है, आशाका कम्पम्पित चित्त भय और प्रेमसे उतना ही उसे कसकर बाँधना चाहता है।

आशा महेन्द्रपर सन्देह करके उसे अपनी आँखोके आगे रखकर पहरा देना चाहती है! यह कठोर उपहास है या निर्दय सन्देह ? सौगन्द खाकर उसे इसका प्रतिवाद करना चाहिए या बातको हँसीमे उडा देना चाहिए ?

हतबुद्धि आशाको फिर भी चुप रहते देखकर अधीर महेन्द्र बडी तेजीसे वहाँसे उठकर चला गया। तब न-जाने कहाँ गया उस मासिकपत्रकी कहानीका नायक और कहाँ गई उसकी नायिका! सूर्यास्तकी आभा अन्धकारमे विलीन हो गई, और सन्ध्यारम्भकी क्षणिक वसन्तकी हवाकी जगह हेमन्तकी हवा चलने लगी। और आशा छतपर उसी तरह चटाईपर औधी पडी रही।

बहुत रात बीते आशा जब भीतर अपने कमरेमे गई तो देखा कि महेन्द्र उसे बिना बुलाये ही अकेला आकर सो गया है; और तब आशा सोचने लगी कि

'स्नेहमयी मौसीके प्रति मेरी उदासीनता देखकर ही ये मुझसे भीतर-ही-भीतर घृणा करने लगे है।' बिस्तरपर जाकर उसी क्षण वह महेन्द्रके पैरोसे लिपटकर पड़ रही। तब महेन्द्रने करुणासे विचलित होकर उसे ऊपर खीचनेकी कोशिश की। किन्तु आशा टमसे मस न हुई। बोली, "मुझसे कोई दोष बन गया हो तो मुझे तुम क्षमा करो।"

महेन्द्रने आर्द्र चित्तसे कहा, "तुम्हारा कोई दोष नही, चुन्नी! मै बहुत ही निर्दयी हूँ, पाखण्डी हूँ, इसीसे बेमतलब तुम्हे चोट पहुँचाया करता हूँ।"

सुनते ही आशाकी आँखोमे आँसुओकी धारा बहने लगी, और उससे महेन्द्रके चरणोका अभिषेक शुरू हो गया। महेन्द्र तुरत उठ बैठा और आशाको अपनी भुजाओसे उठाकर अपने पास सुला लिया।

रोनेका आवेग थमनेपर आशाने कहा, "मौसीको देखने जानेकी क्या मेरी इच्छा नही होती? पर, तुम्हे छोडकर अकेले जानेको जी नही चाहता। इसीसे मै नहीं गई। तुम गुस्सा मत होओ।"

महेन्द्रने धीरे-धीरे आशाके भीगे कपोलोको पोछते-हुए कहा, "यह क्या गुस्सा होनेकी बात है, चुन्नी? मुझे छोडकर नही जा सकती, इससे मै गुस्सा होऊँगा! जाने दो, तुम्हे कही भी नही जाना होगा।"

आशाने कहा, "नही, मै काशी जाऊँगी।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो?"

आशाने कहा, "मै तुमपर सन्देह करती हूँ इसीसे नही जाना चाहती, यह बात जब एक बार तुम्हारे मुँहसे निकली है तो मुझे कुछ दिनके लिए यहाँसे जाना ही होगा।"

महेन्द्र बोला, "पाप किया मैने, और उसका प्रायश्चित्त करोगी तुम?"

आशाने कहा, "सो मै नही जानती,—पर पाप मेरे अन्दर कही-न-कही जरूर हुआ है, नही-तो ऐसी-सब अनहोनी बाते उठती ही कैसे? जिन-सब बातोको मै सपनेमे भी नही सोच सकती थी वे बाते तुमसे मुझे क्यो सुननी पडती?"

महेन्द्रने कहा, "इसका कारण यह है कि मै कितना बुरा आदमी हूँ सो तुम्हारे स्वप्नके भी अगोचर है।"

आशा चचल होकर बोली, "फिर? ऐसी बात तुम मत कहा करो। पर, इस बार मै काशी जाऊँगी जरूर।"

महेन्द्र हँसता-हुआ बोला, "अच्छा, जाओ,—पर मै अगर तुम्हारे पीछे बिगड़ गया तो क्या होगा ?"

आशाने कहा, "देखो, तुम मुझे इतना डराओ मत। हाँ-नही-तो, जैसे मैं मारे सोचके बेचैन हुई जा रही हूँ !"

महेन्द्रने कहा, "परन्तु होना तो चाहिए। अपने ऐसे पतिको अगर तुम अपनी असावधानीसे बिगड जाने दोगी, तो बादमे फिर किसे दोष देती फिरोगी ?"

आशा बोली, "तुम्हे नही दूँगी, इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।"

महेन्द्रने कहा, "तब अपना दोष मान जाओगी-न ?"

आशाने कहा, "एक बार नही, सौ बार।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छी बात है,—तो कल तुम्हारे ताऊसे जाकर यह बात तय कर आऊँगा।" और फिर वह 'बहुत रात हो गई' कहकर करवट लेकर सो गया।

कुछ देर बाद फिर अचानक करवट बदलकर बोल उठा, "चुन्नी, जाने दो, कोई जरूरत नही, तुम मत जाओ।"

आशाने डरते-हुए कहा, "फिर तुम मना क्यो कर रहे हो ? इस बार मै नही गई तो तुम्हारी डाट-फटकार मुझपर लगी ही रह जायगी। मुझे दो-चार दिनके लिए ही भेज दो, पर भेजो जरूर।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा।" और फिर वह करवट लेकर सो गया।

काशी जानेके एक दिन पहले आशा विनोदिनीके गलेसे लिपटकर बोली, "बहन किरकिरी, मेरी देह छूकर एक बात बताओगी ?"

विनोदिनीने आशाके गाल मसकते-हुए कहा, "क्या बात, बहन ? तुम्हारा अनुरोध क्या मै नही रखती ?"

आशाने कहा, "कौन जाने, बहन, आजकल तुम कैसी-तो हो गई हो ! उनके आगे अब तो तुम निकलना ही नही चाहती।"

विनोदिनीने कहा, "क्यो नही निकलना चाहती, सो क्या तू नही जानती ? उस दिन बिहारी-बाबूसे जो-कुछ उन्होने कहा, सो क्या तैने अपने कानोसे नही सुना ? जब ऐसी-ऐसी बाते उठने लगी है, तो तू ही बता, सबके सामने मेरा निकलना-बोलना क्या उचित है ?"

उचित नही है, इतना तो आशा समझती है। इन-सब बातोसे कितनी लज्जा आती है, कितनी बदनामी होती है और कितना दु ख होता है, सो भी इधरकी घटनाओसे उसने अपने मनसे ही समझ लिया है। फिर भी वह बोली, "बात तो ऐसी न-जाने कितनी उठा करती है! उन-सबको अगर सह ही न सकी तो फिर प्रेम ही क्या हुआ, बहन! उस बातको भूल जाओ।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा, बहन, भूल जाऊँगी।"

आशाने कहा, "मै तो, बहन, कल काशी जा रही हूँ। उन्हे किसी तरहकी तकलीफ न हो, इस बातका तुम्हे विशेष ध्यान रखना होगा। अभीकी तरह दूर-दूर रहनेसे काम नही चलेगा।"

विनोदिनी चुप रही।

आशाने उसका हाथ मसकते-हुए कहा, "किरकिरी, तुझे मेरे गलेकी सौगन्द है, इतना वचन तुझे देना ही पडेगा।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा।"

२५

एक तरफ चन्द्र अस्त होता है तो दूसरी तरफ सूर्यका उदय। आशा चली गई, किन्तु महेन्द्रके भाग्याकाशमे विनोदिनी अब तक दिखाई नही दी। महेन्द्र घूमता-फिरता चक्कर लगाता रहता है, बीच-बीचमे किसी-न-किसी बहानेसे माके कमरेमे उपस्थित होता हे, किन्तु विनोदिनी बराबर उसे चकमा देकर भाग जाती है, पकडाई नही देती।

राजलक्ष्मीने महेन्द्रके ऐसे अत्यन्त शून्य-भावको देखकर सोचा, 'बहू चली गई है, इसीसे इस घरमे अब उसे कुछ भी अच्छा नही लग रहा है।' आजकल महेन्द्रके सुख-दु खके लिए मा जो बहूकी तुलनामे बिलकुल ही अनावश्यक हो गई है, इस बातका खयाल आते ही राजलक्ष्मीके मनमे कॉटा-सा चुभने लगता, किन्तु फिर भी पुत्रका इस तरहका विमर्ष-भाव देखकर माको वेदना होने लगी। उन्होने विनोदिनीको बुलाकर कहा, "इन्फ्लुएञ्जाके बादसे मुझे तो दमाकी-सी शिकायत होने लगी है, मुझसे तो सीढी चढकर ऊपर जाया नही जाता,—सो अब तो, बेटी, तुम्हीको महेन्द्रकी पूरी देख-भाल करनी होगी। जन्मकी आदत है-न उसकी, बिना

सेवा-जतनके उससे रहा नही जाता। देखो-न, बहूके जानेके बादसे कैसा-तो हो गया है। बहूको भी धन्य है, चली कैसे गई!"

विनोदिनी जरा-सा सिर झुकाकर बिस्तरका चादरा खोटने लगी।

राजलक्ष्मी बोली, "क्यो बहू, क्या सोच रही हो? इसमे सोचनेकी तो कोई बात नही। लोग कुछ कहे तो कहते रहे,—तुम तो कोई गैर नही हो।"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है, बुआजी!"

राजलक्ष्मीने कहा, "अच्छा तो जाने दो। मुझसे जितना हो सकेगा, मै ही करती रहूँगी।"

इतना कहकर वे उसी समय महेन्द्रका कमरा ठीक करनेके लिए ऊपर जाने लगी।

विनोदिनीने घबराते-हुए कहा, "नही, मा, तुम्हारी तबीयत ठीक नही, तुम मत जाओ, मै जाती हूँ। मुझे माफ करो, बुआजी,—जैसी तुम्हारी आज्ञा होगी वैसा ही करूँगी मै।"

राजलक्ष्मी लोगोकी कानाफूसीकी जरा भी परवाह नही करती। पतिकी मृत्युके बादसे घरमे और समाजमे वे महेन्द्रके सिवा और किसीको भी नही जानती। महेन्द्रके सम्बन्धमे विनोदिनीने समाजकी निन्दाका आभास दिया तो उन्हे बहुत बुरा मालूम हुआ। जन्मसे ही वे महेन्द्रको देखती आ रही है। उस-जैसा 'अच्छा लडका' और है कहाँ? ऐसे महेन्द्रके विषयमे भी निन्दा! अगर कोई उसकी निन्दा करेगा तो उसकी जीभ गल जायगी। स्वय उन्हे जो बात अच्छी लगती हो उसके सम्बन्धमे दुनियाके लोग चाहे कुछ भी क्यो-न कहते रहे, उसकी उपेक्षा करना राजलक्ष्मीकी एक स्वाभाविक जिद बन गई है।

आज महेन्द्र कालेजसे लौटकर जो अपने कमरेमे घुसा तो कमरा देखकर दग रह गया। दरवाजा खोलते ही उसने देखा, धूपकी सुगन्धसे घर आमोदित हो रहा है। मशहरीके चारो तरफ गुलाबी रेशमकी झालर लटक रही है। नीचेके बिस्तरपर दूध-सी सफेद चाँदनी बिछी-हुई है और उसपर पहलेके पुराने तकियोकी जगह नये रेशमी और पशमी कामदार विलायती ढगके चौकोर तकिये लगे-हुए हैं। और उनपर जो सुन्दर शिल्पकलाका निदर्शन दीख रहा है वह विनोदिनीके सुनिपुण हाथोके बहु-परिश्रमका ही फल है। आशा उससे पूछा करती थी, "ये

सब तुम किसके लिए बना रही हो, बहन?" विनोदिनी हँसती-हुई कह देती थी, "अपनी चिताकी सेजके लिए। मरणके सिवा मेरे सुहागका और है ही कौन!"

दीवारपर महेन्द्रकी जो मढी-हुई तसवीर टॅगी थी, उसके फ्रेमके चारो कोनोपर रगीन फीतेसे सुनिपुण हाथोकी चार गाँठे लगी-हुई थी और उसके नीचे दीवारसे सटी-हुई एक तिपाईपर दोनो तरफ दो फूलदानियोमे दो गुलदस्ते ऐसे रखे-हुए थे जैसे कोई चुपकेसे आकर महेन्द्रकी प्रतिमूर्तिकी पूजा कर गया हो। कुल मिलाकर कमरेका रग-रूप बिलकुल बदल गया था। पलग जहाँ था वहाँसे जरा हटा-हुआ है। कमरेको मानो दो भागोमे विभक्त कर दिया गया है। पलगके आगे सागौनकी बनी दो अलगमियाँ लगाकर और उनपर कपडे लटकाकर ऐसी आड कर दी गई है कि नीचे बैठनेका गद्दा और रातको सोनेका पलग अपने-आप ही अलग हो गया है। जिस अलमारीमे आशाकी शौककी चीजे और चीनी-मिट्टीके खिलौने वगैरह रखे थे उसके काँचके भीतरकी तरफ लाल कपडेका चुन्नटदार परदा लगा दिया गया है, ताकि भीतरकी चीजे दीखे नही। कमरेमे उसके पूर्व-इतिहासके जितने भी चिह्न थे वे सब नये हाथकी नई सजावटसे बिलकुल ही ढक दिये गये है।

हरा-थका महेन्द्र नीचेके शुभ्र बिस्तरपर लेट गया। नये तकियेपर सिर रखते ही उसके भीतरकी एक मीठी मोहक सुगन्धने उसे विह्वल कर दिया। तकियोके भीतरकी रूईके साथ काफी मात्रामे नागकेशरके फूलोकी रज और कुछ अतर मिला-हुआ था।

महेन्द्रकी आँखे अपने-आप झपक आई। उसे ऐसा लगने लगा कि इन तकियोपर जिसके निपुण हाथका शिल्प-चातुर्य अङ्कित है उसकी कोमल चम्पक-अगुलियोकी सुगन्ध भी मानो इनमे भरी-हुई है।

इतनेमे, एक हाथमे चाँदीकी तश्तरीमे फल और मिठाई और दूसरे हाथमे काँचके गिलासमे बरफ-शुदा अनन्नासका शरबत लिये-हुए दासी आई और दोनो पात्र महेन्द्रके सामने रखकर चली गई। ये-सब बाते पूर्व-प्रथासे कुछ भिन्न और बडी निपुणतासे हो रही थी। इन-सबके स्वाद गन्ध और दृश्यमे ऐसी नवीनता थी कि उसने महेन्द्रके सम्पूर्ण मन और इन्द्रियोपर एक तरहका जादू-सा कर दिया।

महेन्द्र जब जलपान कर चुका तब हाथमे चाँदीका पानदान लिये-हुए विनोदिनीने धीरे-धीरे कमरेमे प्रवेश किया; और आतेके साथ ही उसने हँसते-हुए

कहा, "इधर कई दिनोसे मै तुम्हारे खाने-पीनेके समय हाजिर नही हो सकी, मुझे माफ करना, लालाजी! और जो-कुछ तुम्हारे मनमे आये सो करना, पर तुम्हे मेरे सिरकी कसम है, मेरी 'किरकिरी'को इस बातकी खबर नही पडनी चाहिए कि मैने तुम्हारी खातिर-तवज्जहमे कोई त्रुटि की है। अपनी शक्ति-भर मै कर रही हूँ,—पर क्या करूँ, घरका सब काम ही जो मेरे ऊपर आ पडा है।"

इतना कहकर विनोदिनीने पानदान महेन्द्रके सामने बढा दिया। आजके पानोमे भी केवड़े-पडे कत्थेकी विशेष सुगन्ध पाई गई। महेन्द्रने कहा, "खातिर-तवज्जहमे कभी-कभी इस तरहकी त्रुटिका होना अच्छा है।"

विनोदिनीने कहा, "क्यो भला, सुनूँ तो सही?"

महेन्द्रने कहा, "क्योकि बादमे छेडछाडकर ब्याज-समेत सब वसूल भी तो किया जा सकता है।"

विनोदिनी बोली, "महाजन बतायेगे क्या कि ब्याज कितना हुआ?"

महेन्द्रने कहा, "खाने-पीनेके समय हाजिर नही थी, अब खाने-पीनेके बाद हाजरी जोडकर कुछ-न-कुछ तो बाकी निकलेगा ही।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "तुम्हारा हिसाब जैसा कडा होता है उसके लिहाजसे तो जो एक बार तुम्हारे जालमे फँस गया उसका उद्धार होना मुश्किल ही है।"

महेन्द्र बोला, "हिसाबकी कडाई तो तभी सार्थक हो सकती है जब वसूल करनेमे सफल होऊँ!"

विनोदिनीने कहा, "वसूल करने-लायक यहाँ है ही क्या! लेकिन फिर भी कैद तो कर ही रक्खा है।" इतना कहनेके बाद उसकी हँसीने तुरन्त गम्भीर रूप धारण कर लिया और वह एक गहरी साँस लेकर चुप रह गई।

महेन्द्रने भी जरा-कुछ गम्भीर होकर कहा, "किरकिरी, तो क्या तुम्हारे लिए यह जेलखाना है?"

इतनेमे नौकर आ गया और नियमानुसार तिपाईपर लैम्प रखकर चला गया।

सहसा आँखोमे बत्तीकी रोशनी लगते ही विनोदिनीने मुँहके सामने हाथकी आड करते-हुए नीची निगाह करके कहा, "कौन जाने! तुम्हारे साथ बातोमे कौन जीत सकता है भला! जाती हूँ अब, काम है।"

महेन्द्रने सहसा उसका हाथ पकड लिया ; और कहा, "बन्धन जब कि स्वीकार ही कर लिया है, तो अब जा कहाँ रही हो ?"

विनोदिनीने कहा, "छी-छी, छोडो छोडो। जिसके लिए भागनेका कोई रास्ता ही नही, भला उसे बाँधनेकी कोशिश क्यो ?"

विनोदिनी जबरदस्ती हाथ छुडाकर चली गई।

महेन्द्र उसी बिस्तरपर सुगन्धित तकियेपर सिर रखे पडा रहा। उसकी छातीके भीतरका खून जोरोसे दौडने लगा। निस्तब्ध सन्ध्या है और निर्जन कमरा, उसपर नव-वसन्तकी हवा चल रही है। मालूम होता है, विनोदिनीका मन अब पकडाई देना ही चाहता है, और उन्मत्त महेन्द्र अब अपनेको रोक नही सकेगा। महेन्द्रने जल्दीसे लैम्प बुझाकर भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया, काँचकी खिडकियाँ भी बन्द कर ली, और असमयमे ही पलगपर जाकर पड रहा।

पलगके बिछौने भी तो पुराने नही मालूम होते। नीचे चार-पाँच तोशकें और उनपर साफ-सुथरा मुलायम-चिकना चादरा बिछाकर वे बहुत ही गुलगुले और कोमल बना दिये गये है। और यह नई सुगन्ध काहेकी है ? अगुरुकी है या खसकी, कुछ समझमे नही आता। महेन्द्र बार-बार इधर-उधर करवट बदलने लगा,—कही भी पुरातनका कोई चिह्न मिल जाय तो मानो उससे वह लिपट जाना चाहता हो। किन्तु कुछ भी हाथ न आया।

रातको नौ बजे आकर बन्द दरवाजेको किसीने खटखटाया। विनोदिनीने बाहरसे कहा, "लालाजी, तुम्हारी थाली आ गई, किवाड खोलो।"

उसी क्षण दरवाजा खोल देनेके लिए महेन्द्र भडभडाकर उठ बैठा, दरवाजेके पास पहुँचा, चटखनीपर हाथ रखा, किन्तु खोलते-खोलते रुक गया। लौटकर जमीनके गद्देपर औंधा होकर पड रहा ; और फडफडाता-हुआ बोला, "नही नही, मुझे भूख नही है, मै खाऊँगा नही।"

बाहरसे उद्विग्न कण्ठकी आवाज सुनाई दी, "तबीयत खराब तो नही हो गई ? पानी ला दूँ ? और कुछ चाहिए क्या ?"

महेन्द्रने कहा, "मुझे कुछ नही चाहिए, किसी चीजकी जरूरत नही मुझे।"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हे मेरे सिरकी सौगन्द है, लालाजी, मुझसे कुछ छिपाओ मत। अच्छा, तबीयत खराब नही तो, एक बार दरवाजा तो खोलो जरा।"

महेन्द्र जोरसे बोल उठा, "नही, मै नही खोलूँगा, हरगिज नही। तुम जाओ।"

इतना कहकर वह जल्दीसे उठकर फिर पलगपर जा सोया, और अन्तर्हिता आशाकी स्मृतिको सूनी शय्या और चचल हृदयके अन्धकारमे टटोलता-हुआ ढूँढने लगा।

नीद जब किसी भी तरह आई ही नही तब महेन्द्र उठ बैठा, और बत्ती जलाकर आशाको चिट्ठी लिखने बैठ गया।

उसने लिखा, "आशा, अब और ज्यादा दिन मुझे यहाँ अकेला मत पडा रहने दो। मेरे जीवनकी लक्ष्मी हो तुम। तुम पास नही रहती तो मेरी समस्त प्रवृत्तियॉ जजीर तोडकर मुझे कहॉ खीच ले जाती है, मेरी कुछ समझमे नही आता। रास्ता देखकर चलना चाहता हूँ, किन्तु उसका उजाला कहॉ है? मेरा उजाला तो तुम्हारे विश्वासपूर्ण नेत्रोके प्रेम-स्निग्ध दृष्टिपातमे है। तुम जल्दी आओ, मेरी शुभे, मेरी ध्रुवे, मेरी एकमात्र, तुम जल्दी आओ। आकर मुझे स्निग्ध करो, मेरी रक्षा करो, मेरा हृदय परिपूर्ण कर दो। तुम्हारे प्रति लेशमात्र अन्यायके महापापसे, तुम्हारी क्षणमात्रकी विस्मृति-विभीषिकासे मुझे बचाओ, मेरा उद्धार करो।"

इस तरह महेन्द्र अपनी ताडना करनेके लिए आशाकी ओर अपनेको जोर-जोरसे ढकेल-ढकेलकर बहुत रात तक बहुत-सी बाते लिखता रहा। दूरसे सुदूर तक बहुत-से गिरजोकी घडियोमे ढन-ढन-ढन तीन बजते चले गये। कलकत्तेकी सडकोपर गाडियोकी आवाज प्राय बन्द हो चुकी है, मुहल्लेके उस पार किसी मकानके दूसरी मजिलके कमरेमेसे नटीके कण्ठसे विहाग-रागिनीका जो गाना सुनाई दे रहा था वह विश्वव्यापिनी शान्ति और निद्रामे बिलकुल डूब गया। महेन्द्रने एकाग्र मनसे आशाकी याद करके और मनके उद्वेगको लम्बे पत्रमे नाना प्रकारसे व्यक्त करके बहुत-कुछ सान्त्वना पाई, और फिर बिस्तरपर जाकर पडते ही उसे नीद आ गई।

सवेरे जब महेन्द्रकी ऑख खुली तब काफी अबेर हो चुकी थी, कमरेमे घाम आ गई थी। महेन्द्र जल्दीसे उठ बैठा। गहरी नीद सो लेनेके बाद पिछली रातकी सारी घटना उसके मनमे हलकी-सी हो आई। बिस्तरसे उठकर टेबिलके पास आकर उसने देखा कि पिछली रातको उसने जो आशाके लिए चिट्ठी लिखी थी वह दावातके नीचे दबी रखी है। चिट्ठीको वह आद्योतान्त पढ गया; और मन-ही-मन बोला, 'किया क्या है मैने! यह तो नाटकीय मामला है। अच्छा-हुआ जो उसी

वक्त भेज नही दी ; नही-तो आशा पढती तो क्या कहती अपने मनमे ! चिट्ठीकी आधी बाते तो उसकी समझमे ही नही आती ।'

रातको क्षणिक कारणसे उसका हृदयावेग जो इस तरह असङ्गत-रूपसे बढ गया था उसके लिए वह बहुत ही लज्जा अनुभव करने लगा। उस चिट्ठीके उसने टुकडे-टुकडे कर डाले, और फिर उसने सहज-सरल भाषामे आशाको एक सक्षिप्त चिट्ठी लिखी। उसमे लिखा, "तुम अब और कितने दिन लगाओगी ? तुम्हारे ताऊजीका अगर जल्दी लौटनेका इरादा न हो, तो मुझे लिखो, मै खुद आकर तुम्हे ले आऊँगा। यहाँ अकेले मुझे अच्छा नही लग रहा है।"

२६

महेन्द्रके चले जानेके कुछ ही दिन बाद जब आशा काशी पहुँची, तो अन्नपूर्णाके मनमे भारी आशङ्का बैठ गई। आशासे वे नाना प्रकारसे नाना प्रश्न करने लगी। पूछने लगी, "क्यो री चुन्नी, तू जो अपनी सखी 'आँखकी किरकिरी'की तारीफ कर रही थी, सो क्या वह सचमुच ही बडी गुणवती है ? तेरी बातोंसे तो मालूम होता है, ऐसी अच्छी लडकी ससारमे और-कोई है ही नही !"

"हाँ, मौसी, मै बढा-चढाकर नही कह रही, जैसी उसकी बुद्धि है वैसा ही रूप। और काम-काजमे भी ऐसी होशियार है कि कुछ पूछो मत।"

"तेरी सखी है, तू तो उसे सब गुणोकी खान समझेगी ही, पर घरके और-सब उसके बारेमे क्या कहते-सुनते हे, सो तो बता ?"

"मा तो उसकी तारीफ करते-करते नही थकती। 'किरकिरी' जब-कभी देश जानेकी बात कहती है तो वे व्याकुल हो उठती है। ऐसी सेवा करना कोई नही जानता। घरके नौकर-चाकरोमेसे कभी कोई बीमार पड जाता है तो वह उसकी मा-बहनकी तरह देख-भाल करती है।"

"महेन्द्रकी क्या राय है ?"

"उन्हे तो तुम जानती ही हो, मौसी, कोई बहुत ही अपना आदमी हो तभी वह उन्हे रुचता है, नही तो नही। मेरी 'किरकिरी'को और तो सब अच्छा समझते है, प्यार करते है, पर उसके साथ उनकी आज तक पटरी नही बैठी।"

"सो कैसे ?"

"मैने तो बडी कोशिश करके उनसे उसकी भेट करा दी, बातचीत भी करा दी ; पर वे ऐसे है कि बात भी नही करते। तुम तो जानती हो उनका स्वभाव, अकेले एक कोनेमे पडे रहेगे, पर मिलेगे-जुलेगे किसीसे नही। लोग समझते है कि वे घमण्डी है, बडा मान है उन्हे, पर असलमे ऐसी कोई बात नही, दो-एक आदमीके सिवा और-कोई उन्हे सहन ही नही होता।"

अन्तिम शब्द मुँहसे निकल जानेके बाद सहसा आशाको बडी लज्जा मालूम हुई, उसके गाल लाल-सुर्ख हो उठे। अन्नपूर्णा खुश होकर मन-ही-मन हँसी, और बोली, "ठीक बात है, उस दिन महेन्द्र जब यहाँ आया था, तेरी 'किरकिरी'का उसने एक बार जिक्र तक नही किया।"

आशाने दु खित होकर कहा, "यही तो उनमे दोष है। जिससे उनका प्रेम नही, उनके लिए मानो वह है ही नही, मानो उसे उन्होने कभी देखा ही नही, उसे जानते ही नही,—यही हाल है उनका।"

अन्नपूर्णाने शान्त स्निग्ध हास्यके साथ कहा, "और जिसे प्यार करते है, जन्म-जन्मान्तरमे मानो वे केवल उसीको देखते है, जानते है,—यह बात भी तो है उनमे! क्यो ठीक है-न, चुन्नी ?"

आशाने कुछ जवाब न देकर नीचेको निगाह कर ली, और मन-ही-मन हँसने लगी। अन्नपूर्णाने पूछा, "बिहारीकी क्या खबर है, बेटी? वो क्या ब्याह करेगा ही नही ?"

क्षणमात्रमे आशाका चेहरा गम्भीर हो गया। वह क्या जवाब दे, उसकी कुछ समझमे न आया।

आशाको निरुत्तर और गम्भीर देखकर अन्नपूर्णा डर गई, बोली, "सच बता, चुन्नी, बिहारीकी तबीयत तो ठीक है, बीमार-ईमार तो नही पड गया ?"

बिहारी इस चिर-पुत्रहीना रमणीके स्नेह-सिहासनमे पुत्रके मानस-आदर्शके रूपमे विराज रहा है। बिहारीको वे घर-ससारमे प्रतिष्ठित देखकर नही आ सकी, यह दु ख दूर-प्रवासमे आकर भी उनके मनमे जाग उठता है। उनकी छोटी-सी दुनियामे और-सब-कुछ एक तरहसे सम्पूर्ण हो चुका है, केवल बिहारीकी गृहहीन-अवस्थाकी याद आते ही उनके परिपूर्ण वैराग्य-साधनमे व्याघात होने लगता है।

आशाने कहा, "मौसी, बिहारी-लालाजीकी बात मुझसे न पूछो।"

अन्नपूर्णा आश्चर्यसे दग रह गई, बोली, "क्यो, क्या बात है, बता तो?"

आशाने कहा, "सो मै नही बता सकूँगी।" इतना कहकर वह वहाँसे उठकर चल दी।

अन्नपूर्णा चुप बैठी सोचने लगी, 'मेरा हीरा-सा लडका बिहारी, इस बीचमें वह ऐसा क्या बदल गया कि चुन्नी आज उसका नाम सुनकर उठ गई? तकदीरका खेल है। क्यो तो उसके साथ चुन्नीके ब्याहकी बात चली, और क्यो महेन्द्रने उसके हाथसे चुन्नीको छीन लिया!"

बहुत दिन बाद आज अन्नपूर्णाकी आँखोसे आँसू झर पडे। वे मन-ही-मन कहने लगी, 'हाय, मेरे बिहारीने अगर ऐसा कुछ किया भी हो जो उसके योग्य नही, तो योही नही कर बैठा होगा।' बिहारीके उस दु खकी गहराईकी कल्पना करके अन्नपूर्णाकी छाती व्यथित हो उठी।

सन्ध्याके समय अन्नपूर्णा पूजा करने बैठी ही थी कि इतनेमे सहसा घरके दरवाजेपर एक गाडी आकर ठहरी। सईस बन्द दरवाजेपर धक्का दे-देकर घरवालोको पुकारने लगा।

अन्नपूर्णा पूजा-घरसे बोल उठी, "लो, मै तो बिलकुल भूल ही गई थी, आज कुजीकी सास और उसकी दो बहनौते इलाहाबादसे आनेवाली थी, शायद वे आ गई। चुन्नी, जा तो बेटी, लालटेन लेकर नीचे जाकर जरा दरवाजा तो खोल आ।"

आशा लालटेन हाथमे लेकर दरवाजा खोलने गई, और दरवाजा खोलते ही देखा, तो, सामने बिहारी खडा है! बिहारी बोल उठा, "यह क्या, भाभीजी, मैने तो सुना था कि तुम काशी नही आओगी!"

आशाके हाथसे लालटेन छूट गई। मानो वह सामने प्रेत-मूर्ति देखकर एक साँसमे भागी-भागी ऊपर पहुँची और आर्तस्वरमे बोली, "मौसी, मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, तुम उनसे अभी यहाँसे चले जानेको कह दो।"

अन्नपूर्णा पूजाके आसनसे चौककर उठ खडी हुई, बोली, "किसे, चुन्नी, किसे?"

आशाने कहा, "बिहारी-लालाजी यहाँ भी चले आये है।"

इतना कहकर वह बगलके कमरेमे चली गई, और भीतरसे किवाड बन्द कर लिये।

सिरहाने बैठकर महेन्द्रके माथेपर हाथ फेरते-फेरते विह्वल-यौवनके भारी भारसे विनोदिनीका सिर धीरे-धीरे झुक आया, और अन्तमे उसकी अलकोने महेन्द्रके कपोलोका मृदु-मृदु स्पर्श करना शुरू कर दिया, हवासे लहराते-हुए उस केश-गुच्छके मृदु स्पर्शसे महेन्द्रका शरीर बार-बार कॉप-कॉप उठा, और सहसा मानो विनोदिनीका निश्वास महेन्द्रकी छातीके पास आबद्ध होकर निकलनेका रास्ता भूल गया। महेन्द्र सहसा भडभडाकर उठ बैठा, बोला, "नही नही, मेरा कालेज है, मै चल दिया।" कहता-हुआ वह विनोदिनीके मुँहकी तरफ बगैर देखे ही उठ खडा-हुआ।

विनोदिनीने कहा, "इतनी घबराहट क्यो? ठहरो जरा, मै तुम्हारे कपडे निकाले देती हूँ।"

विनोदिनी महेन्द्रके कालेजके कपडे निकाल लाई।

महेन्द्र जल्दीसे कालेज चला गया। किन्तु वहाँ भी वह स्थिर न रह सका। पढने-लिखनेमे मन लगानेकी उसने बहुत देर तक वृथा चेष्टा की, किन्तु कुछ भी फल न हुआ। उसे जल्दी घर लौट आना पडा।

घर आकर अपने कमरेमे घुसते ही उसने देखा, विनोदिनी छातीके नीचे तकिया रखकर नीचेके बिस्तरपर औधी पडी कोई किताब पढ रही है। ढेरके ढेर काले बाल उसकी पीठपर बिखरे पडे है। शायद उसने महेन्द्रके जूतोकी आवाज नही सुनी। महेन्द्र धीरे-धीरे दबे-पॉव उसके पास जा खडा हुआ। उसे स्पष्ट सुनाई दिया, विनोदिनीने किताब पढते-पढते एक गहरी सॉस ली।

महेन्द्रने कहा, "ओ करुणामयी, काल्पनिक आदमीके लिए हृदयकी इतनी फजूलखर्ची मत करो। मुझे भी तो मालूम हो कि क्या पढा जा रहा है?"

विनोदिनी भडभडाकर उठ बैठी, और पुस्तकको उसने अपने आँचलमे छिपा लिया। महेन्द्र पुस्तक छीनकर देखनेकी कोशिश करने लगा। बहुत देर छीनाझपटी करनेके बाद पराजित विनोदिनीके ऑचलसे महेन्द्रने पुस्तक छीन ली; देखा कि बङ्किमचन्द्रका 'विषवृक्ष' उपन्यास है। विनोदिनी जोरोसे सॉस लेती-हुई नाराजीसे मुँह फेरकर चुपचाप बैठी रही।

महेन्द्रका हृदय जोरोसे धडक रहा था। बडी कोशिशसे हँसते-हुए उसने कहा, "छी-छी, बडा धोखा हुआ मुझे, मैने सोचा था कि कोई खास गुप्त चीज होगी। इतनी छीनाझपटीके बाद आखिर निकला क्या, तो, 'विषवृक्ष'!"

विनोदिनीने कहा, "मेरे छिपानेकी और क्या चीज हो सकती थी ?"

महेन्द्र चटसे कह बैठा, "यही, मान लो, बिहारीकी कोई चिट्ठी होती।"

पल-भरमे विनोदिनीकी आँखोमे बिजली-सी खेल गई। अब तक जो अनङ्ग घरके कोनेमे खेल रहा था, मानो वह दूसरी बार भस्म हो गया। क्षणमे प्रज्ज्वलित अग्निशिखाके समान विनोदिनी उठ खडी हुई। महेन्द्रने उसका हाथ पकडकर कहा, "मुझे माफ करो, मै मजाक कर रहा था। मुझे तुम माफ कर दो।

विनोदिनीने झटकेसे अपना हाथ छुडा लिया, और कहा, "मजाक किसका कर रहे थे ? तुम अगर बिहारीसे मित्रता करनेके योग्य होते, तो उनके साथ किये-गये मजाकको मै सह लेती। तुम्हारा ओछा मन है, मित्रता करनेकी शक्ति नही है उसमें, और तुम करने चले हो मजाक !"

विनोदिनीने जानेके लिए पैर बढाया ही था कि महेन्द्रने घुटने टेककर दोनो हाथोसे उसके पैर घेर लिये।

इतनेमे सामने एक छाया आ पडी। महेन्द्रने विनोदिनीके पैर छोडकर चौककर पीछे देखा तो, बिहारी खडा है !

बिहारीने स्थिर दृष्टिपातसे दोनोको दग्ध करते-हुए धीर और शान्त स्वरमे कहा, "बडे असमयमे आ गया मै, किन्तु ज्यादा देर ठहरूँगा नही। एक बात कहने आया था। मै काशी गया था, मुझे मालूम न था कि भाभीजी वही है। बिना जाने उनके समक्ष अपराधी हुआ, पर उनसे क्षमा माँगनेका अवसर नही मिला। इसीसे तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ। मेरे मनको ज्ञानमे या अज्ञानमे यदि किसी तरहके पापने स्पर्श किया हो, तो उसके लिए उन्हे किसी तरहका दु ख न सहना पडे, बस, तुमसे मेरी इतनी-सी प्रार्थना है।"

बिहारीके सामने अकस्मात् अपनी कमजोरी जाहिर हो जानेसे महेन्द्रके मनमे आग-सी लग गई। यह उसके लिए उदारता दिखानेका समय नही। उसने जरा हँसते-हुए कहा, "तुम तो 'चोरकी दाढीमे तिनका'-वाली मसल कर रहे हो,—'पूजा घरमे कौन ?' न, 'मैने केले नही खाये।' मैने तुमसे न तो दोष स्वीकार करनेको कहा है और न अस्वीकार करनेको, तो फिर क्षमा माँगकर साधु बनने क्यो आये हो ?"

बिहारी कुछ देर तक काठके पुतलेकी तरह जडवत् खडा रहा। उसके बाद जब बात करनेकी चेष्टामे उसके ओठ काँपने लगे तब विनोदिनी बोल उठी,

"बिहारी-लालाजी, तुम कुछ भी जवाब मत दो। कुछ भी मत कहो। इस आदमीने जो बात मुँहसे निकाली है उससे इन्हींके मुँहपर कलङ्क लगा रहेगा। वह कलङ्क तुम्हे छू तक नही सकता।"

विनोदिनीकी बात बिहारीके कानमें गई या नही, इसमे सन्देह है। वह मानो स्वप्नाविष्टकी तरह महेन्द्रके कमरेके सामनेसे मुडकर जीनेसे नीचे उतरने लगा।

विनोदिनी उसके पीछे-पीछे जाकर बोली, "बिहारी-लालाजी, मुझसे क्या तुम्हे कुछ भी नही कहना? अगर तिरस्कार करने-योग्य कोई बात मुझसे हुई हो तो मेरा तिरस्कार तो करो।"

बिहारी जब बिना कुछ उत्तर दिये उतरता ही चला गया तब विनोदिनीने उसके-सामने जाकर अपने दोनो हाथोसे उसका दहना हाथ पकड़ लिया।

बिहारी अत्यन्त घृणाके साथ उसे ढकेलकर चला गया। उस धक्केसे विनोदिनी गिर पडी, किन्तु बिहारीको मालूम भी न पडा।

गिरनेका धमाका सुनकर महेन्द्र दौडा आया। देखा कि विनोदिनीके बाये हाथकी कोहनी छिल गई है और उससे खून बह रहा है।

महेन्द्रने कहा, "ओह, यह तो बहुत छिल गया।" कहते-हुए उसने उसी क्षण अपने मलमलके कुरतेमेसे धजीर फाडकर चोटकी जगह पट्टी बाँधनी चाही, किन्तु विनोदिनीने चटसे अपना हाथ हटा लिया, और कहा, "नही नही, कुछ मत करो, गिरने दो खून।"

महेन्द्रने कहा, "पट्टी बाँधकर एक दवा डाले देता हूँ,—उससे दर्द जाता रहेगा और जल्दी अच्छा भी हो जायगा।"

विनोदिनीने जरा अलग हटकर कहा, "इस दर्दको बना रहने दो,—मुझे अच्छा नही कराना।"

महेन्द्रने कहा, "मैने आज अपना होश-हवास खोकर दूसरेके सामने तुम्हे लज्जित और अवमानित किया,—क्या तुम मुझे माफ कर सकोगी?"

विनोदिनी बोली, "माफी किसलिए? तुमने अच्छा ही किया है। मै क्या दूसरोसे डरती हूँ? मै किसीको भी नही मानती। जो लोग धक्के देकर चोट पहुँचाकर पडा छोड़ जाते है वे ही क्या मेरे सब-कुछ है, और जो पैर पकडकर मुझे रखना चाहते हैं वे मेरे कोई भी नही!"

महेन्द्र उन्मत्त होकर गद्गद कण्ठसे बोल उठा, "विनोदिनी, तो तुम मेरे प्रेमको कभी नही ठुकराओगी ?"

विनोदिनीने कहा, "नही, उसे मै सिर-आँखोसे लगा रखूँगी। अपने इस जन्ममे प्रेम मुझे इतना ज्यादा नही मिला कि उसे मै 'नही चाहिए' कहकर लौटा दूँ।"

महेन्द्रने उसी क्षण अपने दोनो हाथोसे विनोदिनीके दोनो हाथ पकडकर कहा, "तो चलो मेरे कमरेमे। तुम्हे आज मैने बडी व्यथा पहुँचाई है, और तुम भी मुझे व्यथित करके चली आई हो, जब तक वह बिलकुल धुल-पुँछकर मिट नही जाय तब तक मुझे खाने-पीने सोने-उठनेमे बिलकुल चैन नही मिलेगा।"

विनोदिनीने कहा, "नही, आज नही, आज मुझे छोड दो। मैने अगर तुम्हारा जी दुखाया हो, तो मुझे तुम माफ करना।"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी मुझे माफ करना,—नही तो मुझे रात-भर नींद नही आयेगी।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा, मैने माफ कर दिया।"

महेन्द्र उसी क्षण अधीर होकर विनोदिनीसे हाथो-हाथ क्षमा और प्रेमका कोई निदर्शन पानेके लिए व्यग्र हो उठा। किन्तु विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखते ही वह ठिठककर खडा रह गया।

विनोदिनी सीढियोसे उतरती-हुई नीचे चली गई।

और, महेन्द्र भी धीरे-धीरे सीढियाँ तय करके छतपर जाकर चहलकदमी करने लगा।

आज महेन्द्र जो बिहारीके आगे अकस्मात् पकडाई दिया, उससे वह अपने मनमे एक तरहका मुक्तिका आनन्द अनुभव करने लगा। दुबका-चोरीमे जो एक प्रकारकी घृण्यता है, एकके आगे प्रकट हो जानेसे मानो वह बहुत-कुछ दूर हो गई। महेन्द्र मन-ही-मन कहने लगा, 'मै अपनेको अच्छा वताकर झूठा दम्भ नही करना चाहता,—हाँ, हाँ, मै विनोदिनीसे प्रेम करता हूँ, करता हूँ, यह बात झूठ नही।'

अपने प्रेमके गौरवमे महेन्द्रकी स्पर्धा यहाँ तक बढ गई कि अपनेको बुरा समझकर ही अपने मनमे वह उद्धत-रूपसे गर्व करने लगा। निस्तब्ध सन्ध्याकालमे नीरव ज्योतिष्क-मण्डलीसे सुशोभित अनन्त जगत्के प्रति एक तरहकी अवज्ञा फेकता-हुआ वह मन-ही-मन कह उठा, 'कोई मुझे कितना ही बुरा क्यो-न समझा करे,—मै प्रेम

करता हूँ, प्रेम करता हूँ।' उसने विनोदिनीकी मानस-मूर्तिसे समस्त आकाशको, समस्त ससारको, समस्त कर्तव्यको आच्छन्न कर डाला। बिहारीने सहसा आकर आज मानो महेन्द्रके जीवनकी डाट-बन्द दावातको उलटकर तोड़ डाला, और, विनोदिनीकी काली आँखो और काले बालोकी स्याहीने देखते-देखते विस्तृत होकर पहलेकी सम्पूर्ण शुभ्रता और सारीकी सारी लिखावटको लीप-पोतकर मानो एकाकार कर दिया।

२८

दूसरे दिन सवेरे बिस्तरसे उठते ही एक तरहके मधुर आवेगसे महेन्द्रका हृदय भर उठा। प्रभातके सूर्यालोकने मानो उसकी चिन्ताधारापर वासनाका सोना चढा दिया। कैसी सुन्दर पृथ्वी है, कैसा मधुमय आकाश है, और हवा तो मानो पुष्परेणुकी तरह सम्पूर्ण मनको उडाये लिये जा रही है।

सवेरे-सवेरे आज वैष्णव भिक्षुकने खजरी बजाकर गाना शुरू कर दिया। दरवानने उसे भगाना चाहा तो महेन्द्रने दरवानको डाटते-हुए भिक्षुकको एक रुपया दे डाला। नौकर काँचका लैम्प उठाकर ले जा रहा था कि असावधानीसे वह उसके हाथसे गिरकर चकनाचूर हो गया। महेन्द्रके मुँहकी ओर देखकर मारे डरके नौकर बेचारेके प्राण सूख गये। किन्तु महेन्द्रने उसका जरा भी तिरस्कार न करके प्रसन्न मुखसे कहा, "देखता क्या है, सब अच्छी तरह साफ करके बाहर फेक दे, नही-तो किसीके पॉवमे कॉच चुभ गया तो मुश्किल हो जायगी।" आज उसे कोई हानि ही हानि नही मालूम हो रही।

प्रेम इतने दिनोसे नेपथ्यकी आडमे छिपा बैठा था, आज वह परदा उठाकर सामने आ खडा हुआ। जगत्-ससारके ऊपरसे आज मानो आवरण-सा उठ गया। प्रतिदिनकी पृथ्वीकी समस्त तुच्छता आज मानो अन्तर्हित हो गई। पेड-पौधे, पशु-पक्षी, चलता-फिरता जन-समुदाय, नगरका कोलाहल, सब-कुछ आज सुन्दर लग रहा है। यह विश्वव्यापी नवीनता अब तक थी कहाँ?

महेन्द्रको ऐसा लगने लगा मानो आज विनोदिनीके साथ और-और दिनोकी तरह साधारण-भावसे मिलन नही होगा। आज तो मानो कवितामे बात करने और सङ्गीतमे भाव प्रकट करनेसे ही ठीक होगा। आजके दिनको महेन्द्र ऐश्वर्यसे

सौन्दर्यसे परिपूर्ण करके सृष्टि और समाजसे निराला अरबी उपन्यास 'अलिफ-लैला' का एक अद्भुत दिन बना डालना चाहता है। वह सच भी होगा और स्वप्न भी। उसमे जगत्‌का कोई नियम-कानून नही होगा, कोई दायित्व नही होगा, और न किसी तरहकी वास्तविकता होगी।

आज सवेरेसे ही महेन्द्र चचल-हुआ घूम-फिर रहा है। आज वह कालेज भी न जा सका, कारण, मिलनका लग्न अकस्मात् कब आविर्भूत होगा, किसी पचाङ्गमें तो लिखा नही।

घरके काम-काजमे लगी-हुई विनोदिनीका कण्ठस्वर कभी भण्डार-घरसे और कभी रसोईमेसे आ-आकर महेन्द्रके कानोमे प्रवेश करने लगा। किन्तु आज उसे वह अच्छा नही लगा। विनोदिनीको आज जो उसने ससारसे अलग बहुत दूर ले जाकर अपने कल्पना-मन्दिरमे प्रतिष्ठित किया है!

समय कटना ही नही चाहता। महेन्द्र नहा चुका और खा भी चुका। घरका सब काम-काज समाप्त हो चुका, और मध्याह्न भी निस्तब्ध हो आया। किन्तु फिर भी विनोदिनी नही दिखाई दी। दु ख और सुखसे, अधैर्य और आशासे महेन्द्रकी हृदय-वीणाके सबके सब तार झंकृत होने लगे।

कलकी छीनाझपटीसे प्राप्त 'विषवृक्ष' उपन्यास नीचेके बिस्तरपर पडा था। उसे देखते ही कलकी उस छीनाझपटीकी स्मृतिसे महेन्द्रके मनमे पुलक-आवेश जाग उठा। विनोदिनी जिस तकियेको छातीके नीचे दबाकर लेटी थी उस तकियेको खीचकर महेन्द्र उसपर सिर रखकर लेट गया, और 'विषवृक्ष' उठाकर उसके पन्ने उलटने लगा। पन्ने उलटते-उलटते पढनेमे लग गया,—और कब पाँच बज गये, उसे होश ही न रहा।

इतनेमे एक मुरादाबादी बडे थालमे फल और मिठाईकी तश्तरियाँ और बरफ-चीनी-सुगन्धि-युक्त खरबूजेका कटोरा लिये-हुए विनोदिनीने कमरेमें प्रवेश किया, और थालको महेन्द्रके सामने रखती-हुई बोली, "क्या कर रहे हो, लालाजी? तुम्हे हो क्या गया है? पाँच बज गये, अभी तक न तो हाथ-मुँह धोया, न कपडे ही बदले!"

महेन्द्रके मनपर एक धक्का-सा लगा। 'महेन्द्रको क्या हुआ है'—यह क्या पूछनेकी बात है? विनोदिनीसे क्या यह छिपा रहना चाहिए? आजका दिन

क्या और-और दिनके समान है ? महेन्द्र इस डरसे कि कही ऐसा न हो कि उसने जो आशा कर रखी है उससे उलटा ही कुछ हो जाय, कलकी बातका स्मरण दिलाकर कोई दावा पेश न कर सका।

महेन्द्र जलपान करने बैठा। विनोदिनी छतपर धूपमे-पडे महेन्द्रके कपडे जल्दीसे उठा लाई, और अपने निपुण हाथोसे अच्छी तरह घरी करके उन्हे अलमारीमें रखने लगी।

महेन्द्र बोला, "जरा ठहरो, जलपान करके मै तुम्हारी सहायता करता हूँ।"

विनोदिनीन हाथ जोडकर कहा, "दुहाई है तुम्हे, तुम और चाहे जो करो, पर सहायता न करना।"

महेन्द्र हाथ-मुँह धोकर उठ बैठा, और आगे बढकर बोला, "अच्छा! मुझे तुमने अकर्मण्य समझ रखा है! अच्छा तो आज परीक्षा हो जाय।" इतना कहकर वह कपडे घरी करनेकी वृथा चेष्टा करने लगा।

विनोदिनीने महेन्द्रके हाथसे कपडा छीनते-हुए कहा, "अजी महाशय, आप रहने दीजिये, मेरा काम न बढाइये।"

महेन्द्रने कहा, "तो तुम काम किये जाओ, मै देख-देखकर सीखता हूँ।" यह कहता-हुआ वह अलमारीके सामने विनोदिनीके पास जमीनपर पालथी मारकर बैठ गया। विनोदिनी कपडे फटकारनेके लिए महेन्द्रकी पीठका उपयोग करने लगी और फिर उन्हे अच्छी तरह घरी करके अलमारीमें रखने लगी।

आजका मिलन इसी तरह आरम्भ हुआ। महेन्द्रने सवेरेसे जैसी कल्पना कर रखी थी वैसी अपूर्वताका कोई लक्षण ही नही पाया गया। इस तरहका मिलन न तो काव्यमे लिखने-योग्य है और न सङ्गीतमे गाने-योग्य, और तो क्या, उपन्यास रचने-योग्य भी नही। किन्तु फिर भी महेन्द्र दुखित नही हुआ, बल्कि उसे कुछ आराम ही मिला। अपने काल्पनिक आदर्शको वह किस तरह खडा कर रखता, उसके लिए क्या-क्या आयोजन करता, किस तरहकी बाते करता, कैसा भाव दिखाता, सब तरहकी साधारणताको किस तरीकेसे दूर हटाये रखता, ये सब बाते महेन्द्रसे तय करते नही बन रही थी, इसलिए इस कपडे झाडने और घरी करनेमें हँसी-मजाक करके मानो वह स्वरचित एक असम्भव दुरूह आदर्शके हाथसे छुटकारा पाकर जी गया।

ठीक इसी समय कमरेमे राजलक्ष्मीने प्रवेश किया ; और आतेके साथ ही वे महेन्द्रसे बोली, "महेन, बहू तो कपडे रख रही है,—तू यहाँ बैठा-बैठा क्या कर रहा है ?"

विनोदिनीने कहा, "देखो-न, मेरा सिर्फ काम बढा रहे है, यहाँ बैठे-बैठे।"

महेन्द्र बोल उठा, "वाह रे वाह ! मै तो उलटा काममे मदद कर रहा हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "ऐसे ही मेरे भाग्य है-न ! तू, और काममे मदद करेगा ! जानती हो, बहू, महेनका शुरूसे ही यही हाल है। हमेशासे मा और चाचीका लाड पा-पाकर ऐसा हो गया है कि जानता ही नही काम किसे कहते है।"

इतना कहकर माता परम स्नेहसे काममे अपटु अपने पुत्रको देखने लगी।

राजलक्ष्मी बराबर विनोदिनीसे यही परामर्श करती रहती कि उनकी इस अकर्मण्य और नितान्त मातृ-स्नेहापेक्षी वयस्क सन्तानको कैसे सर्व प्रकारसे सुखमे रखा जाय। अपने पुत्रकी सेवाके विषयमे विनोदिनीपर निर्भर रहकर वे अत्यन्त निश्चिन्त और परम सुखी थी। अब महेन्द्र जो विनोदिनीकी कदर करने लगा है और उसे रखनेके लिए उसमे जो आग्रह पैदा हो गया है, इससे भी राजलक्ष्मीको बडी खुशी होने लगी है। उन्होंने महेन्द्रको सुनाते-हुए कहा, "बहू, आज तो तुमने महेन्द्रके गरम कपडे घाममे डाल दिये,—अब कल इसके नये रूमालोपर इसका नाम काढ देना। तुम्हे जबसे यहाँ लाई हूँ, आराम तो कुछ दे न सकी, बेटी, सिर्फ काम कराते-कराते नाकमे दम किये दे रही हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "बुआजी, तुम अगर ऐसे कहोगी तो मै समझूँगी कि तुम मुझे गैर समझती हो, हाँ !"

राजलक्ष्मीने बडे लाडसे कहा, "नही, बेटी, ऐसी बात न कहो,—तुम सरीखी ऐसी अपनी बिटिया मुझे मिलेगी कहाँ ?"

विनोदिनी जब सब कपडे रख चुकी तब राजलक्ष्मीने कहा, "अब क्या मै चीनीका रस चढा दूँ चुल्हेपर, या तुम्हे और-कोई काम करना है ?"

विनोदिनीने कहा, "नही, बुआजी, और कोई काम नही मेरे हाथमे। चलो, मिठाई ही बना ली जाय चलके।"

महेन्द्र बोल उठा, "मा, अभी-अभी तो तुम्हे बडी दया आ रही थी इनपर कि काम ले-लेकर तुम इन बेचारीके नाकमे दम कर देती हो, और अब तुरत फिर काममे घसीटे लिये जा रही हो !"

राजलक्ष्मीने विनोदिनीकी ठोडी छूते-हुए कहा, "यह हमारी लक्ष्मी-बिटिया है-न, काममे लगे रहनेमे ही प्रसन्न रहती है।"

महेन्द्रने कहा, "आज शामको मुझे कोई काम नही था,—मैंने सोचा कि चलो किरकिरीके साथ कोई किताब ही पढ़ूँगा।"

विनोदिनी बोल उठी, "बुआजी, आज शामको हम-तुम दोनो मिलकर लालाजीसे कोई पुस्तक सुनेगी। क्यो ठीक है-न?"

राजलक्ष्मीने सोचा, 'महेन बेचारा बिलकुल ही अकेला पड गया है, इस समय हम सबको मिलकर उसका मन बहलाना चाहिए।' और बोली, "हॉ, ठीक है, मिटाई और शामकी रसोई बनाकर हम दोनो आज शामको यही बैठकर पुस्तक सुनेगी। क्यो, महेन, ठीक है-न?"

विनोदिनीने कटाक्षके साथ एक बार महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखा।

महेन्द्रने कहा, "अच्छा।" किन्तु उसका सारा उत्साह जाता रहा।

विनोदिनी राजलक्ष्मीके साथ-साथ नीचे चली गई।

महेन्द्र नाराज होकर सोचने लगा, 'मै भी आज बाहर चला जाऊँगा और देर करके घर आऊँगा।' और तुरत उसने बाहर जानेके लिए कपडे पहन लिये। किन्तु उसका सङ्कल्प कार्यमे परिणत नही हुआ। बहुत देर तक वह छतपर टहलता रहा, बीच-बीचमे जीनेकी तरफ झाँकता रहा, और अन्तमे कमरेमे जाकर बैठ गया। और झुँझलाकर मन-ही-मन कहने लगा, 'आज मै मिठाई छुऊँगा तक नही,—माको जता दूँगा कि इतनी देर तक चासनी बनाते रहनेसे उसमे मिठास नही रहती।'

आज भोजनके समय विनोदिनी राजलक्ष्मीको साथ लेती आई। राजलक्ष्मी साँस फूलनेके डरसे प्राय ऊपर आना नही चाहती, किन्तु विनोदिनीके आग्रहसे उन्हे आना ही पडा। महेन्द्र अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाकर खाने बैठा।

विनोदिनी बोली, "यह क्या, लालाजी, आज तो तुम कुछ खा ही नही रहे हो!"

राजलक्ष्मी व्यस्त होकर पूछने लगी, "क्या बात है, बेटा, तबीयत तो ठीक है-न?"

विनोदिनीने कहा, "इतनी मेहनत करके इतने चावसे मिठाई बनाई,—तुम्हे मेरी सौगन्द है, लालाजी, खानी ही पडेगी। अच्छी नही बनी क्या? तो रहने दो। नही नही, अनुरोधके लिहाजसे जबरदस्ती खानेमे क्या है! नही नही, रहने दो।"

महेन्द्रने कहा "क्या मुसीबत है! मिठाई खानेकी सबसे ज्यादा इच्छा है, लग भी अच्छी रही है, तुम्हारे रोकेसे मै रुक कैसे जाऊँ?"

थालीकी सब मिठाई महेन्द्रने खाकर खतम कर दी, उसकी चूर तक थालीमें नही छोडी।

भोजन करनेके बाद महेन्द्र ऊपर अपने कमरेमे चला आया। और इसके कुछ देर बाद चौका उठा-उठाकर राजलक्ष्मी और विनोदिनी भी ऊपर आकर बैठ गईं।

राजलक्ष्मीने कहा, "तू क्या-तो पढके सुनानेवाला था-न, सुना अब।"

महेन्द्रने कहा, "पर, उसमे तो, मा, देवी-देवताओका वर्णन नही है, उसका वर्णन सुननेमे तुम्हे अच्छा नही लगेगा।"

अच्छा नही लगेगा राजलक्ष्मीको! आज वे इसके लिए कृतसङ्कल्प है, जैसे भी हो, अच्छा लगना ही है आज उन्हे। महेन्द्र अभी अगर अरबी या फारसी भाषाकी कोई पुस्तक पढना शुरू कर दे तो वह भी उन्हे अच्छी लगकर रहेगी। अहा, बेचारा महेन्द्र, बहू काशी चली गई है, अकेला पड़ गया है। उसे जो अच्छा लगे, भला माको वह कैसे अच्छा न लगेगा!

विनोदिनीने कहा, "सुनो, तुम एक काम करो, लालाजी, बुआजीके कमरेमें 'शान्ति-शतक' रखी है,—और कोई पुस्तक न पढकर आज उसीको सुनाओ। बुआजीका मन भी लग जायगा, और शाम भी अच्छी तरह कट जायगी।"

महेन्द्रने नितान्त करुण-भावसे एक बार विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखा।

इतनेमे नौकरानीने आकर खबर दी, "माजी, कायथ-ठकुरानी आकर तुम्हारे कमरेमें बैठी है।"

कायथ-ठकुरानीसे राजलक्ष्मीकी अन्तरङ्ग मित्रता है। शामके बाद उनसे गप-शप करनेका प्रलोभन राजलक्ष्मी छोड नही सकती थी, किन्तु फिर भी उन्होने नौकरानीसे कह दिया, "उनसे जाकर कह दे कि आज महेन्द्रके कमरेमे मुझे काम है जरा,—कल वे जरूर-जरूर आवे।"

महेन्द्र जल्दीसे बोल उठा, "क्यो मा, तुम उनसे मिल ही आओ-न।"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है, बुआजी, तुम यही रहो, मै जाकर उनके पास बैठती हूँ।"

राजलक्ष्मी प्रलोभनको न सम्हाल सकी, उन्होने कहा, "बहू, तुम यही बैठो, मै जाती हूँ,–देखूँ दो चार बात करके विदा कर सकी तो आ जाऊँगी।' तुमलोग पढना शुरू करो,–मेरी राह न देखना।"

राजलक्ष्मीके कमरेसे बाहर निकलते ही महेन्द्रसे फिर रहा नही गया, बोला, "क्यो तुम मुझे जान-बूझकर इस तरह झूठ-मूठको सताया करती हो?"

विनोदिनी मानो आश्चर्यसे दग रह गई, बोली, "वाह जी वाह! मैने तुमको क्या सताया? तो क्या तुम्हारे कमरेमे मेरा आना ही जुर्म है! मुझे क्या पडी है! ये लो, मैं चल दी।"–कहती-हुई वह अत्यन्त विमर्ष मुँह बनाकर जानेको तैयार हो गई।

महेन्द्रने उसका हाथ पकड लिया, बोला, "इसी तरह तो तुम मुझे जलाती रहती हो।"

विनोदिनीने कहा, "चलियो सम्हालियो, कोई है! मुझे क्या मालूम था कि मुझमे इतना तेज है! तुम्हारे भी तो प्राण कुछ कम कठिन नही, बहुत सह लेते है। पर चेहरा देखकर तो यह नही मालूम होता कि बहुत ज्यादा झुलस गये हो!"

महेन्द्रने कहा, "चेहरेसे क्या समझोगी तुम!" और चटसे उसने बलपूर्वक विनोदिनीका हाथ पकडकर अपनी छातीपर धर दबाया।

विनोदिनी "ऊ फ्" कहके चीख उठी, और महेन्द्रने उसी क्षण उसका हाथ छोड दिया। बोला, "लग गई क्या?"

देखा कि कल विनोदिनीके जहाँ चोट लगी थी वहाँसे फिर खून गिर रहा है। उसने अनुतप्त होकर कहा, "मै भूल गया था,–बडा अन्याय हुआ मुझसे। आज लेकिन मै अभी तुरत दवा लगाकर बैण्डेज बाँध दूँगा, छोडूँगा नही।"

विनोदिनीने कहा, "नही, जरूरत नही। मुझे दवा नही लगवानी।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो, क्या बात है?"

विनोदिनीने कहा, "बात क्या होगी। तुम्हे डाक्टरी करनेकी जरूरत नही, मेरा जैसा है वैसा ही रहने दो।"

महेन्द्र क्षणमे गम्भीर हो गया, और मन-ही-मन बोला, 'कुछ समझमे नही आता! विचित्र है इन औरतोका मन!'

विनोदिनी उठ खड़ी हुई।

अभिमानी महेन्द्रने बाधा नही दी, बोला, "कहाँ जा रही हो ?"

विनोदिनीने कहा, "काम है।" और फिर वह धीर-गतिसे नीचे चली गई।

मिनट-भर बैठा रहकर महेन्द्र विनोदिनीको लौटा लानेके लिए बड़ी तेजीसे उठ खडा हुआ ; और जीनेके पास तक जाकर और फिर वापस आकर छतपर चहलकदमी करने लगा।

विनोदिनी दिन-रात उसे अपनी ओर आकर्षित भी करती है और फिर एक क्षणके लिए अपने पास भी नही फटकने देती,—यह रहस्य क्या है ? महेन्द्रको इस बातका गर्व था कि उसे कोई जीत नही सकता। उसका वह गर्व जाता रहा। किन्तु, कोशिश करनेपर वह दूसरेको जीत सकता है, इस गर्वकी भी क्या वह रक्षा न कर सकेगा ? आज उसे खुद हार माननी पडी, किन्तु दूसरेसे वह हार न मनवा सका। अपने हृदय-क्षेत्रमे महेन्द्रका मस्तक बहुत ही ऊँचा था, दूसरे किसीको भी वह अपने समान नही समझता था,—आज वही उसे अपने मस्तकको धूलमे रुलाना पडा। उसने जो अपनी श्रेष्ठता खो दी, उसके बदले उसे कुछ मिला भी नही। भिक्षुकके समान बन्द द्वारके सामने सन्ध्याके समय उसे रीते हाथ राहमे खडा रहना पडा।

फागुन-चैतमे बिहारीकी जमीदारीसे सरसोके फूलोका शहद आया करता था। और हर साल उसे वह राजलक्ष्मीके यहाँ भेज दिया करता था। इस साल भी भेज दिया।

विनोदिनी शहदका भाँड लेकर स्वय राजलक्ष्मीके पास पहुँची, और बोली, "बुआजी, बिहारी-लालाजीके यहाँसे शहद आया है।"

राजलक्ष्मीने उसे भण्डारमे रखनेके लिए कह दिया। शहद भण्डारमे रखकर विनोदिनी उनके पास आकर बैठ गई , और बोली, "बिहारी-लालाजी हमारे घरकी बराबर खबर-सुध लिया करते है। उन बेचारेकी मा नही है, तुम्हीको वे मा समझते है।"

बिहारीको राजलक्ष्मी महेन्द्रकी छाया समझती थी, और इसीलिए कभी वे उसके बारेमे विशेष-कुछ सोचती न थी,—वह इस घरका बिना-वेतनका बिना-जतनका बिना-चिन्ताका अनुगत सेवक था। विनोदिनीने जब राजलक्ष्मीको मातृहीन बिहारीकी मा बताया तब राजलक्ष्मीका हृदय अकस्मात् उसकी ममतासे

विह्वल हो उठा। सहसा उन्हे खयाल आया कि 'बात तो सच है, बिहारीके मा नही है, मुझे ही वह मा समझता है।' याद उठ आई, रोगमे सङ्कटमें बिहारी बराबर बिना-बुलाये बिना आडम्बरके उनके पास दौडा आया है और उनकी चुपचाप निष्ठाके साथ सेवा की है। राजलक्ष्मीने उसकी सेवाको निश्वास-प्रश्वासके समान अत्यन्त सहज-रूपमे ग्रहण किया है, और उसके लिए कभी किसीके प्रति कृतज्ञ होनेकी कोई बात ही उनके मनमे उदित नही हुई। किन्तु बिहारीकी खबर-सुध किसने रखी है? जब अन्नपूर्णा थी तब वे जरूर उसकी खबर-सुध रखती थी। और तब राजलक्ष्मी सोचती थी, 'बिहारीको वशमे रखनेके लिए अन्नपूर्णा स्नेहका आडम्बर करती है।'

राजलक्ष्मीने आज एक गहरी साँस लेकर कहा, "तुम ठीक कहती हो, बहू, बिहारी मेरे लडकेके समान ही है।" कहनेके साथ ही वे सोचने लगी, बिहारी उनके अपने लडकेसे बढकर है, और कभी भी विशेष-कुछ प्रतिदान न मिलनेपर भी उनके प्रति उसकी भक्ति बराबर एकसी बनी रही। सोचते-सोचते उनके हृदयके भीतरसे एक दीर्घ-निश्वास निकल आया।

विनोदिनीने कहा, "बिहारी-लालाजीको तुम्हारे हाथकी रसोई बहुत अच्छी लगती है।"

राजलक्ष्मीने स्नेहपूर्ण गर्वसे कहा, "और-किसीके हाथका मछलीका झोर उसे रुचता ही नही।" कहते-कहते उन्हे खयाल आया कि बहुत दिनोसे बिहारी आया नही। वे बोली, "अच्छा, बहू, बिहारी आजकल दिखाई क्यो नही देता?"

विनोदिनीने कहा, "मै भी तो यही सोच रही थी। बात यह है, बुआजी, कि तुम्हारे बेटाजी तो ब्याहके बादसे अपनी बहूको लेकर ऐसे फँसे हुए है कि उन्हे और कोई सूझता ही नही,—फिर इष्ट-मित्र कोई आकर क्या करे, बताओ?"

बात राजलक्ष्मीको बिलकुल जँच गई। अपनी बहूके पीछे महेन्द्रने अपने सभी हितैषियोको दूर हटा दिया है। बिहारी अगर महेन्द्रसे रूठ गया हो, तो इसमे कोई बेजा बात नही। बिहारीको अपने पक्षमे पाकर उसके प्रति राजलक्ष्मीकी समवेदना बढ गई। राजलक्ष्मी विनोदिनीको विस्तारके साथ बताने लगी कि बिहारी बचपनसे बिलकुल नि.स्वार्थ-भावसे महेन्द्रका कितना उपकार करता आया है, और उसके लिए उसे कितनी बार कितने कष्ट सहने पड़े है। और उस वर्णनमे वे इस बातका भी समर्थन करने लगी कि लड़केके विरुद्ध उनकी निजकी जो शिकायत

है वह ठीक है। और अन्तमे उन्होने सिद्ध कर दिया कि दो-दिनकी बहूके पीछे महेन्द्र अगर अपने चिरकालके हितैषी बन्धुओका ऐसा अनादर करता है, तो फिर ससारमे न्याय-धर्म कहनेको रह ही क्या जायगा!

विनोदिनीने कहा, "कल रविवार है, बुआजी, कल तुम बिहारी-लालाजीको न्योता देकर खिलाओ-पिलाओ तो वे बहुत खुश होगे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुमने बहुत ठीक कहा, बहू! तो मै महेनको बुलवाती हूँ, वो बिहारीको न्योता भिजवा देगा।"

विनोदिनीने कहा, "नही, बुआजी, तुम खुद न्योता भेजो।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मै क्या तुमलोगोकी तरह पढी-लिखी हूँ ?"

विनोदिनी बोली, "इससे क्या हुआ, तुम्हारी तरफसे मै लिख दूँगी-न!"

विनोदिनीने राजलक्ष्मीके नामसे खुद ही निमन्त्रणकी चिट्ठी लिखकर भेज दी।

रविवार महेन्द्रके लिए अत्यन्त आग्रहका दिन है। शनिवारकी रातसे उसकी कल्पना उद्दाम हो उठती है। यद्यपि आज तक उसकी कल्पनाके अनुरूप कुछ भी हुआ नही, फिर भी प्रभातकी सूर्य-किरणे आज उसकी आँखोमे सुधा बरसाने लगी। जाग्रत नगरीका सम्पूर्ण कोलाहल उसके कानोमे अपूर्व सङ्गीतके रूपमे प्रवेश करने लगा।

किन्तु बात क्या है ? माका आज कोई व्रत है क्या ? आज तो वे और दिनोकी तरह विनोदिनीपर घरके काम-काजका भार सौपकर निश्चिन्त नही बैठी। आज तो वे खुद ही व्यस्तताके साथ रसोईका काम सम्हाल रही है!—महेन्द्र सोचने लगा।

काम-काजकी धूममे दस बज गये। किन्तु इस बीचमे महेन्द्र किसी बहानेसे विनोदिनीसे एक क्षणके लिए भी एकान्तमे मिल नही सका। किताब पढनेकी कोशिश की, किन्तु पढनेमे कतई मन नही लगा। अखबार उठाकर उसके एक अनावश्यक विज्ञापनको वह पन्द्रह मिनट तक एकटक देखता रहा। अन्तमे उससे रहा नही गया, उठके नीचे चल दिया।

नीचे जाकर उसने देखा कि मा अपने कमरेके सामनेवाले दालानमे बैठी सिगडीपर कुछ राँध रही है, और विनोदिनी कमरसे धोतीका पल्ला लपेटे उनकी सहायतामे जुटी-हुई है।

महेन्द्रने पूछा, "आज बात क्या है, मा ? इतनी धूमधाम क्यो ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहूने तुझसे कहा नही क्या? आज मैने बिहारीको न्योता दिया है।"

बिहारीको न्योता! महेन्द्रके नीचेसे ऊपर तक आग लग गई। उसने उसी क्षण कहा, "लेकिन, मा, मै तो आज घर रह नही सकूँगा।"

"क्यो?"

"मुझे बाहर जाना है।"

"तो खा-पीकर जाना, ज्यादा देर नही होगी।"

"बाहर मुझे न्योतेमे तो जाना ही है।"

विनोदिनीने एक क्षणके लिए महेन्द्रकी ओर कटाक्ष-पात करते-हुए कहा, "इनका न्योता है तो इन्हे जाने दो-न, बुआजी! हर्ज क्या है? बिहारी-लालाजी आज अकेले ही खा-पी लेगे।"

किन्तु अपने हाथकी इतने जतनसे बनाई-हुई रसोई वे महेन्द्रको न खिला सके, भला यह कैसे हो सकता है? घर ही पर खानेके लिए महेन्द्रसे वे जितना ही अनुरोध करने लगी उतना ही महेन्द्र अकडता गया। कहने लगा, "बहुत ही जरूरी निमन्त्रण है, उसे टाला नही जा सकता। बिहारीको न्योता देनेके पहले मुझसे सलाह तो कर लेनी चाहिए थी।" इत्यादि-इत्यादि।

इस तरह नाराज होकर महेन्द्रने मन-ही-मन माको सजा देनेकी ठान ली। राजलक्ष्मीका सारा उत्साह ही जाता रहा। उनकी इच्छा होने लगी, सब-कुछ फेंक-फॉककर वे और-कही चली जाये।

विनोदिनीने कहा, "बुआजी, तुम कुछ चिन्ता मत करो,—लालाजी मुँहसे ही गरज रहे है, बरसेगे नही। आज ये कही नही जानेके।"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाते-हुए कहा, "नही, बहू, तुम जानती नही महेनको, एक बार कोई जिद पकड लेता है तो फिर वह उसे पूरी करके ही छोडता है।"

किन्तु बादमे यही प्रमाणित हुआ कि विनोदिनी महेन्द्रको राजलक्ष्मीसे कम नही जानती। महेन्द्रने समझा था कि बिहारीको विनोदिनीने ही न्योता दिलाया है। इससे, उसका हृदय ईर्षासे जितना ही जलने लगा उतना ही उसके लिए दूर जाना कठिन हो गया। बिहारी क्या करता है, विनोदिनी क्या करती है, यह बिना देखे वह जायेगा कैसे? देख-देखकर जलेगा, किन्तु देखेगा जरूर।

बिहारीने आज बहुत दिन बाद निमन्त्रित-आत्मीयके रूपमे महेन्द्रके अन्त पुरमें प्रवेश किया। बचपनसे जो घर उसका सुपरिचित है, और जहाँ वह शुरूसे घरके लडकेकी तरह बेरोक-टोक प्रवेश करके ऊधम मचाता रहा है, आज उसी घरके दरवाजेके पास आकर वह क्षण-भरके लिए ठिठककर खडा हो गया। सहसा एक अश्रु-तरङ्गने ऊपर उठनेके लिए उसके हृदय-द्वारपर आघात किया। उस आघातको जहाँका तहाँ रोककर अपनेको सम्हालते-हुए उसने स्मित हास्यके साथ भीतर प्रवेश किया, और सद्य स्नाता राजलक्ष्मीको प्रणाम करके पाँवोकी धूल माथेसे लगाई। इस घरमें बिहारीका जब रोजका जाना-आना था तब इनमे ऐसे अभिवादनकी प्रथा नही थी। आज मानो वह बहुत दूर-प्रवाससे घर लौटा हो। बिहारी ज्यो ही प्रणाम करके उठा, राजलक्ष्मीने स्नेहके साथ उसके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

राजलक्ष्मीने आज निगूढ सहानुभूतिके कारण बिहारीके प्रति पहलेसे बहुत ज्यादा लाड और स्नेह प्रकट किया। कहा, "क्यो रे बिहारी, तू इतने दिनोसे आया क्यो नही? मै रोज सोचा करती थी कि आज जरूर आयेगा, पर तू आया ही नही?"

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "रोज आनेसे तो तुम बिहारीको रोज याद नही करती, मा!—महेन-भइया कहाँ है?"

राजलक्ष्मी उदास होकर बोली, "महेनका आज कही निमन्त्रण है, इससे वह ठहर नही सका।"

सुनते ही बिहारीका मन बैठ गया। बचपनसे जो प्रेम चला आ रहा है उसका क्या यही परिणाम है? एक लम्बी साँस छोडकर, अपने मनसे सम्पूर्ण विषाद-वाष्पको कमसे कम इस समयके लिए उडा देनेकी चेष्टा करते-हुए बिहारीने पूछा, "आज क्या-क्या बनाया है, मा, सुनूँ तो सही?" और फिर वह अपने प्रिय व्यजनोके विषयमे पूछने लगा।

बिहारीकी शुरूसे यह आदत थी कि जिस रोज राजलक्ष्मी खुद रसोई बनाती थी उस रोज वह कुछ अतिरिक्त आडम्बरके साथ अपनेको 'भोजनका लालची' साबित करनेकी कोशिश किया करता था, और इस तरह अपनी लोलुपता दिखाकर वह मातृ-हृदय-शालिनी राजलक्ष्मीका स्नेह वसूल किया करता था। आज भी

राजलक्ष्मीने अपने हाथके बने व्यजनोपर बिहारीका अति-लोभ देखकर हँसते-हुए अपने इस लोभातुर अतिथिको आश्वासन दिया।

इतनेमें महेन्द्र आ गया, और उसने रूखे स्वरमे बिहारीसे शिष्टताके नाते पूछा, "कहो बिहारी, कैसे हो?"

राजलक्ष्मीने आश्चर्यके साथ पूछा, "क्यो रे महेन, तू अपने निमन्त्रणमे नही गया?"

महेन्द्रने अपनी लज्जा ढकनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "नही, उसे टाल देना पडा।"

इतनेमे नहा-धोकर विनोदिनी आ गई। उसे देखकर बिहारीसे कुछ कहते न बना। विनोदिनी और महेन्द्रका जो दृश्य वह उस दिन देख चुका था, उसे अब तक वह भूला नही था।

विनोदिनी बिहारीके पास आकर मृदु स्वरमे बोली, "क्यो लालाजी, मुझे पहचान नही सके क्या?"

बिहारीने कहा, "सबको क्या पहचाना जा सकता है?"

विनोदिनीने कहा, "थोडी समझ हो तो क्यो नही पहचाना जा सकता!" और फिर उसने खबर दी कि 'खाना तैयार है।'

बिहारी और महेन्द्र दोनो खाने बैठे। राजलक्ष्मी पास बैठके देखने लगी और विनोदिनी परोसने लगी।

महेन्द्रका खानेमे ध्यान नही था, वह सिर्फ परोसनेवालीके पक्षपातपर लक्ष्य रखने लगा। उसे ऐसा लगने लगा कि बिहारीको परोसने-खिलानेमे विनोदिनीको एक तरहका विशेष सुख मिल रहा है। बिहारीकी थालीमे ही खास तौरसे जो ज्यादा मछलीका सिरा और दहीकी मलाई पडने लगी उसकी एक खास कैफियत थी कि 'महेन्द्र घरका आदमी है और बिहारी निमन्त्रित अतिथि है', किन्तु मुँह खोलकर शिकायत करनेका कोई ठोस कारण न होनेसे ही महेन्द्र और भी ज्यादा जलने लगा। असमयमे विशेष प्रयत्न-पूर्वक तापसी-मछली जुगाड की गई थी, उनमे एक अण्डेवाली भी थी,—उस मछलीको विनोदिनी बिहारीकी थालीमे देने लगी तो बिहारीने कहा, "नही मुझे नही, महेन-भइयाको दो, इन्हे बहुत अच्छी लगती है।"

महेन्द्रने तीव्र अभिमानके साथ कहा, "नही नही, मुझे नही चाहिए।" इसके बाद विनोदिनीने दूसरी बार अनुरोध न करके उसे बिहारीकी थालीमे डाल दिया।

भोजन करनेके बाद दोनो मित्र उठकर आँगनमे आ गये। विनोदिनीने जल्दीसे आकर कहा, "बिहारी-लालाजी, जानेकी इतनी जल्दी क्या है,–चलो, ऊपरके कमरेमे चलकर बैठो तो सही जरा।"

बिहारीने कहा, "तुम खाओगी नही ?"

विनोदिनीने कहा, "नही,–आज एकादशी है।"

निष्ठुर व्यगकी एक सूक्ष्म हास्य-रेखा बिहारीके ओठोपर दिखाई देकर रह गई, जिसका अर्थ यह था कि 'एकादशी भी पाली जाती है! आचार-अनुष्ठानमें कोई त्रुटि नही!'

यह व्यग-भरी मुसकराहट विनोदिनीकी नजरोसे छिपी नही रही। किन्तु उसने जैसे उस दिनकी चोटको सह लिया था उसी तरह यह भी सह लिया। उसने नम्र विनतीके स्वरमे कहा, "तुम्हे मेरे कण्ठकी सौगन्द है, लालाजी, ऊपर चलकर बैठो जरा।"

महेन्द्र सहसा असङ्गत-रूपसे उत्तेजित होकर बोल उठा, "तुमलोगोको किसी बातका विचार ही नही,–किसीको कोई काम हो, काज हो, इच्छा हो या न हो, फिर भी बैठना तो पडेगा ही! इतना ज्यादा आदर करनेके मानी क्या, मेरी तो कुछ समझमे नही आता।"

विनोदिनी ठहाका मारकर हँस पडी। वह बोली, "बिहारी-लालाजी, सुनो जरा, अपने भाई-साहबकी जरा बात तो सुनो। 'आदर करने'के मानी है आदर करना, कोशमे इसके सिवा और-कोई मानी तो लिखे नही।" और फिर महेन्द्रकी तरफ मुडकर कहने लगी, "तुम कुछ भी कहो, लालाजी, 'ज्यादा आदर'के मानी बचपनसे तुम जितना साफ समझते आ रहे हो, इतना और-कोई नही समझ सकता।" (बगलामे 'आदर'के मानी 'लाड-प्यार' भी है, और यहाँ माके 'लाडले बेटे'पर व्यग है)

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, तुमसे एक बात करनी है, जरा सुन जाओ।" इतना कहकर वह विनोदिनीके प्रति किसी प्रकारका शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही महेन्द्रको साथ लेकर बाहर चला गया।

विनोदिनी बरण्डेमे रेलिगके सहारे चुपचाप खडी-खडी सूने ऑगनकी शून्यताकी तरफ देखती रह गई।

बिहारीने बाहर जाकर महेन्द्रसे कहा, "महेन-भइया, मै जानना चाहता हूँ, हमारी मित्रता क्या यही खतम् है ?"

महेन्द्रकी छातीके भीतर तब आग चल रही थी, विनोदिनीका व्यग-हास्य विद्युत्-शिखाकी तरह उसके मस्तिष्कमे इधरसे उधर बार-बार चमक-चमककर उसे भस्म किये दे रहा था। उसने कहा, "समझौता हो जानेसे तुम्हारे लिए विशेष सुविधा हो सकती है, किन्तु मेरे लिए वह कामनाकी वस्तु नही हो सकती। अपनी गृहस्थीमे मै बाहरी आदमीको नही घुसाना चाहता,—अन्त पुरको मै अन्त पुर ही रखना चाहता हूँ।"

बिहारी बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप चला गया।

ईर्षासे जर्जरित महेन्द्रने पहले तो प्रतिज्ञा की कि विनोदिनीसे अब वह नही मिलेगा, और फिर विनोदिनीसे मिलनेकी आशामे वह भीतर और बाहर, नीचे और ऊपर, इधरसे उधर भटकता-हुआ फिरने लगा।

२६

आशाने एक दिन अन्नपूर्णासे पूछा, "अच्छा, मौसी, मौसाजीकी तुम्हे याद है ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "मै ग्यारह बरसकी उमरमे विधवा हो गई थी,—पतिकी मूर्ति छाया-सी याद पडती है।"

आशाने पूछा, "तो फिर तुम किसका ध्यान किया करती हो, मौसी ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "मेरे पति अब जिनमे मौजूद है उन्ही भगवानका।"

आशाने कहा, "उससे तुम्हे सुख मिलता है ?"

अन्नपूर्णा स्नेहके साथ आशाके सिरपर हाथ फेरती-हुई बोली, "मेरे मनकी बात तू क्या समझ सकेगी, बेटी! यह तो मेरा मन जानता है या वही जानते है जिनका मै ध्यान करती हूँ।"

आशा अपने मनमे सोचने लगी, 'मै जिनकी बात रात-दिन सोचा करती हूँ वे क्या मेरे मनकी बात नही जानते ? मै तो अच्छी तरह चिट्ठी नही लिख सकती इसलिए नही लिख सकी, पर उन्होने क्यो चिट्ठी लिखना छोड दिया ?'

आशाको कई दिनोसे महेन्द्रकी कोई चिट्ठी नही मिली। एक गहरी साँस लेकर फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी, 'किरकिरी अगर पासमे होती तो वह मेरे मनकी बात सब ठीक तरहसे लिख देती।'

भद्दी लिखावटकी तुच्छ चिट्ठी पतिके पास जायगी तो वह आदर नही पायेगी, इस बातका खयाल करके चिट्ठी लिखनेको आशाका हाथ ही नही उठता। वह जितना ही सम्हाल-सम्हालकर लिखना चाहती उतने ही उसके अक्षर बिगड़ जाते। मनकी बातको वह जितना ही ज्यादा सजा-सजाकर लिखनेकी कोशिश करती उतने ही उसके वाक्य अधूरे रह जाते, हजार कोशिश करनेपर भी पूरे नही होते। अगर सिर्फ एक शब्द "श्रीचरणेषु" लिखकर उसके नीचे अपना नाम लिख देनेसे महेन्द्र अन्तर्यामी देवताकी तरह उसके मनकी सब बाते समझ जाता, तो आशाका चिट्ठी लिखना सार्थक हो जाता। विधाताने इतना प्रेम दिया, जरा-सी भाषा क्यो नही दी ?

मन्दिरसे सन्ध्या-आरतीके बाद घर लौटकर आशा अन्नपूर्णाके पैरोके पास बैठी धीरे-धीरे उनके पैरोपर हाथ फेरने लगी। बहुत देर चुप रहनेके बाद वह बोली, "मौसी, तुम जो कहा करती हो, 'पतिकी देवताके समान सेवा करना स्त्रीका धर्म है', सो जो स्त्री मूर्ख है, जिसके बुद्धि नही, जानती नही कि कैसे पतिकी सेवा की जाती है, उसे क्या करना चाहिए ?"

अन्नपूर्णा कुछ देर तक आशाके मुँहकी तरफ देखती रही, फिर एक गहरी किन्तु दबी-हुई साँस लेकर बोली, "बेटी, मै भी तो मूर्ख हूँ, फिर भी तो मै भगवानकी सेवा किया करती हूँ।"

आशाने कहा, "वे जो तुम्हारे मनको जानते है, इसीसे प्रसन्न होते है। पर, मान लो, पति अगर मूर्खाकी सेवासे प्रसन्न न हो ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "सबको प्रसन्न करनेकी शक्ति सबमे नही होती, बेटी! स्त्री अगर आन्तरिक श्रद्धा-भक्तिसे पतिकी सेवा और गृहस्थीका काम करे, तो पति उसे तुच्छ समझकर भले ही ठुकरा दे, स्वय जगदीश्वर उसे जरूर अपना लेते है।"

आशा बिना कुछ उत्तर दिये चुपचाप बैठी रही। मौसीकी इस बातसे सान्त्वना पानेके लिए उसने बहुत चेष्टा की, पर यह बात उसके मनमे किसी तरह

बैठी ही नही कि पति जिसे तुच्छ समझकर ठुकरा देगा, जगदीश्वर उसे भी सार्थकता दे सकते हैं। वह नीचेको दृष्टि किये अपनी मौसीके पैरोपर हाथ फेरने लगी।

अन्नपूर्णाने तब आशाका हाथ पकडकर उसे और भी अपने पास खीच लिया, और उसका माथा चूमकर रुद्ध कण्ठको दृढ चेष्टासे बाधा-मुक्त करके वे कहने लगी, "चुन्नी, दु ख-कष्टसे जो शिक्षा मिलती है, सिर्फ कानसे सुन लेनेसे वह नही मिल सकती। तेरी इस मौसीने भी एक दिन तेरी-सी उमरमे तेरी ही तरह घर-ससारके साथ बडा-भारी लेन-देनका सम्बन्ध जोडा था। तब मै भी तेरी ही तरह सोचा करती थी कि 'जिसकी सेवा करूँगी उसे सन्तोष क्यो नही होगा। जिसकी पूजा करूँगी उसका प्रसाद क्यो नही पाऊँगी। जिसके लिए मै भलाईकी चेष्टा करूँगी वह मेरी चेष्टाको भला क्यो नही समझेगा। किन्तु मैने पग-पगपर देखा कि ऐसा नही होता। अन्तमे एक दिन असह्य मालूम हुआ, देखा कि ससारमे मेरा सब-कुछ व्यर्थ हो गया है, उसी दिन मै घर-ससार त्यागकर चली आई। आज देख रही हूँ कि मेरा कुछ भी निष्फल नही गया। अरी बिटिया, जिनके साथ असल लेन-देनका सम्बन्ध है, जो इस ससार-हाटके मूल महाजन है, वे ही मेरा सब-कुछ ग्रहण कर रहे थे,—हृदयमे बैठकर आज वे इस वातको स्वीकार कर रहे है। तब अगर मै ऐसा जानती! अगर उनका काम समझकर ससारका काम करती, 'उन्हीको दे रही हूँ' समझकर ससारको अपना हृदय दे देती, तो कौन मुझे दु ख दे सकता था?"

आशा बिस्तरपर पडी-पडी बहुत रात तक बहुत बाते सोचती रही, तो भी अच्छी तरह वह कुछ समझ न सकी। किन्तु पुण्यवती मौसीके प्रति उसकी असीम भक्ति थी, इसलिए मौसीकी बातको, पूरी तरह समझमे न आनेपर भी, उसने एक प्रकारसे शिरोधार्य कर लिया। मौसीने समस्त ससारके ऊपर जिन्हे हृदयमे स्थान दिया है उनके लिए उसने अन्धकारमे बिस्तरसे उठकर बैठकर ढोक देकर प्रणाम किया। और कहा, "मै बालिका हूँ, मै तुम्हे नही जानती, मै केवल अपने पतिको जानती हूँ, इसके लिए मेरा कोई अपराध न लेना, प्रभु! अपने पतिको मै जो पूजा चढाती हूँ, भगवान, तुम उनसे उसे ग्रहण करनेके लिए कहना। वे यदि उसे पैरोसे ठुकरा दे, तो फिर मै जी नही सकती। मै अपनी मौसी जैसी पुण्यवती नही हूँ, एकमात्र तुम्हारा ही आश्रय लेकर मै नही बच सकती।" इतना कहकर आशा बार-बार ढोक देकर नमस्कार करने लगी।

आशाके ताऊका कलकत्ते लौटनेका समय आ गया। विदा होनेके पहले दिन शामको अन्नपूर्णाने आशाको अपनी गोदमे बिठाकर कहा, "चुन्नी, बिटिया मेरी, दु:ख-शोक-अमङ्गलसे हमेशा तेरी रक्षा करनेकी शक्ति मुझमे नही है। मेरा यही उपदेश है कि कहीसे भी कितना ही कष्ट क्यो-न मिलता रहे, अपने विश्वासको अपनी भक्तिको तू हमेशा स्थिर रखना, अपने धर्मको तू सदा अटल बनाये रखना।"

आशाने उनके पाँवकी धूल माथेसे लगाते-हुए कहा, "मुझे आशीर्वाद दो, मौसी, भगवान करे ऐसा ही हो।"

३०

आशा कलकत्ता लौट आई। विनोदिनीने उसपर अभिमान करके कहा, "क्यो, किरकिरी, इतने दिन परदेश रह आई, एक चिट्ठी तक नही दी ?"

आशाने कहा, "तुमने भी तो नही दी, बहन !"

विनोदिनी बोली, "पहले मै क्यो देती ? तुम्हारी ही तो पहले देनेकी बात थी।"

अन्तमे आशाने सखीके गलेसे लिपटकर अपना कसूर मजूर कर लिया। उसने कहा, "तुम तो जानती हो, बहन, मुझे ठीकसे लिखना नही आता। खासकर तुम-जैसी पढ़ी-लिखी पण्डितानीको चिट्ठी लिखनेमे मुझे बडी शरम आती थी।"

देखते-देखते दोनो सखियोका मानाभिमानका विवाद मिट गया, और फिर प्रेम उमड़ पड़ा।

विनोदिनीने कहा, "रात-दिन साथ दे-देकर तुमने अपने पतिकी आदत बिलकुल ही खराब कर दी है। हरवक्त उनके पास कोई-न-कोई बना ही रहना चाहिए, इसके बिना उनसे रहा ही नही जाता।"

आशाने कहा, "इसीलिए तो मै तुमपर उनका भार सौप गई थी। कैसे साथ दिया जाता है, यह तुम मुझसे कही अच्छा जानती हो !"

"दिनको तो किसी तरह कालेज भेज-भाजकर निश्चिन्त हो जाती थी, पर शामके बाद फिर छोडना किसे कहते है ! बैठके गप-शप करो तो किताब पढके सुनाओ,—फरमाइशोकी कोई हद ही नही !"

"आखिर अकल ठिकाने आ गई-न ! तुम जो लोगोका मन बहला सकती हो, मोहित कर सकती हो,—भला तुम्हे आसानीसे कौन छोड़ने लगा !"

"सावधान रहना, किरकिरी! लालाजीने जैसी ज्यादती शुरू कर दी है, उससे मुझे अपनेपर सन्देह होने लगा है कि शायद वशीकरण-विद्या आती है मुझे।"

आशा हँसती-हुई बोली, "तुम्हें नही आयेगी तो और किसे आयेगी भला! तुम्हारी-सी विद्या अगर मुझे जरा-सी मिल जाती-न, किरकिरी. तो मै जी जाती।"

विनोदिनीने कहा, "क्यो, किसका सर्वनाश करनेको मन चला है? घरमें जो है, पहले उसीकी रक्षा कर, दूसरोको मोहित करनेकी कोशिश मत कर री किरकिरी! उसमें बडा झझट है।"

आशाने विनोदिनीको हाथके इशारेसे डाटते-हुए कहा, "अरी तू चुप भी रह, क्या बकती है!"

काशीसे लौटनेके बाद पहली ही मुलाकातमें महेन्द्रने आशासे कहा, "तुम्हारी तबीयत तो बहुत अच्छी रही मालूम होता है, खूब मजेकी मोटी-ताजी हो आई हो।"

आशाको बडी शरम मालूम होने लगी। किसी भी हालतमे उसकी तबीयत ठीक नहीं रहनी चाहिए थी। किन्तु मूढ आशाका कुछ भी तो ठीक रास्तेसे नही चलता,—उसका मन जब कि इतना खराब रहता था, उसका खाक शरीर तब मोटा-ताजा हो रहा था! एक तो वैसे ही उसके पास मनकी बात प्रकट करनेको भाषा नही, उसपर उसका यह शरीर भी उलटी बातें करता रहता है।

आशाने मृदु स्वरमे कहा, "तुम कैसे थे?"

पहलेके दिन होते तो महेन्द्र कुछ मजाक और कुछ मनसे कह देता, "मै तो मर रहा था।" किन्तु आज उससे मजाक करते न बना, वह गलेके पास तक आकर रुक गया। बोला, "अच्छा ही था, बुरा क्या!"

आशाने महेन्द्रकी तरफ गौरसे देखा, पहलेसे वह दुबला हो गया है, चेहरा उसका पीला पड़ गया है, ऑखोमे एक तरहकी तीव्र दीप्ति दिखाई पडती है। मानो कोई आभ्यन्तरिक क्षुधा अपनी अग्नि-जिह्वासे उसे चाटे जा रही हो। आशा अपने मनमें वेदना अनुभव करने लगी, सोचने लगी, 'हाय हाय, मेरे पीछे इन्हें इतना कष्ट था, क्यो मैं इन्हे अकेला छोडकर काशी गई!' पति दुबले हो गये और वह खुद मोटी हो गई, इससे अपने स्वास्थ्यपर उसे बड़ा धिक्कार पैदा होने लगा।

महेन्द्र सोचने लगा, अब और क्या बात छेडी जाय, और सोचते-सोचते थोड़ी देर बाद वह पूछ उठा, "चाचीजी अच्छी तरह है?"

इस प्रश्नके उत्तरमें कुशल-सवाद पानेके बाद, आगे कोई दूसरी बात करना उसके लिए दु:साध्य हो गया। पास ही एक फटा-पुराना अखबार पडा था, उसे उठाकर वह अन्यमनस्क-भावसे पढने लगा। और आशा नीची निगाह किये-हुए सोचने लगी, 'इतने दिन बाद भेट हुई, पर ये मुझसे अच्छी तरह बोले क्यों नही? और तो क्या, मेरे मुँहकी तरफ अच्छी तरह देख भी न सके,—यह बात क्या है? मैं तीन-चार दिन चिट्ठी नही लिख सकी, क्या इसीलिए ये नाराज हैं? या मौसीके कहनेसे ज्यादा दिन काशीमे बनी रही, इसलिए नाराज है?' इस तरह आशा अत्यन्त व्यथित चित्तसे अपने अपराधका कारण ढूँढने लगी।

महेन्द्र कालेजसे लौट आया। तीसरे पहर जब वह जलपान करने बैठा तब वहाँ राजलक्ष्मी थी, और कुछ दूरीपर दरवाजेके सहारे आशा भी खड़ी थी घूँघट काढे। और कोई नही था। राजलक्ष्मीने उद्विग्न होकर पूछा, "आज क्या तेरी कुछ तबीयत खराब है?"

महेन्द्रने झुँझलाकर कहा, "नही तो, तबीयत क्यों खराब होने लगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो फिर तू कुछ खा क्यो नही रहा है।"

महेन्द्र फिर झुँझला उठा, बोला, "खा नही रहा तो क्या कर रहा हूँ?"

कुछ-कुछ गरमी पडने लगी थी। महेन्द्र शामके वक्त एक पतली चादर ओढे छतपर टहलने लगा। उसे बडी आशा थी कि आज भी उनलोगोकी पढाई चालू रहेगी। 'आनन्द-मठ' करीब-करीब खतम हो चला है, सिर्फ दो-तीन परिच्छेद और बाकी रह गये हैं। विनोदिनी चाहे जितनी निष्ठुर हो, बाकीके परिच्छेद वह उसे आज जरूर सुना जायगी। किन्तु शाम बीत गई, समय उत्तीर्ण हो गया, और अन्तमे भारी निराशाके साथ उसे बिस्तरकी शरण लेनी पडी।

सुसज्जित और लज्जान्वित आशाने धीरे-धीरे कमरेमे प्रवेश किया। देखा कि महेन्द्र पलगपर सो गया है। अब वह कैसे आगे बढे, उसकी कुछ समझमे ना आया। विच्छेदके बाद पुनर्मिलनमे कुछ देरके लिए एक नई लज्जा आ घेरती है,—जिस जगह परस्पर एक दूसरेसे अलग होते है ठीक उस जगह मिलनेके पहले प्रेमी-प्रेमिका परस्पर एक दूसरेसे नये प्रेमालापकी प्रत्याशा करते हैं। आशा अपनी उस चिर-परिचित आनन्द-शय्यापर आज बिना बुलाये कैसे जाय?

दरवाजेके पास वह बहुत देर तक खडी रही; किन्तु महेन्द्रकी तरफसे आह्वानका

कोई लक्षण ही नही दिखाई दिया। आखिर बहुत धीरे-धीरे वह एक-एक कदम आगे बढने लगी। यदि असावधानीसे अचानक कोई गहना बज उठे, तो मारे शरमके वह मर मिटेगी। कम्पित हृदयसे आशा मशहरीके पास पहुँची, मालूम हुआ कि महेन्द्र सो रहा है। और तब उसका अपना ही साज-सिङ्गार उसके सर्वाङ्गको वेष्टित करके विद्रूपकी हँसी हँसने लगा। उसका जी चाहने लगा कि वह विद्युत्वेगसे कमरेमेंसे निकलकर और-कही भाग जाय।

आशा बहुत-ही सङ्कोचके साथ अत्यन्त सावधानीसे चुपचाप पलगपर जाकर बैठ गई। फिर भी उससे इतना शब्द हुआ और पलग भी इतना हिला-डुला कि महेन्द्र अगर सचमुच सोता होता, तो भी जाग जाता। किन्तु आज उसकी आँख नही खुली, क्योंकि वह सो नही रहा था। महेन्द्र पलगपर उस किनारेसे करवट लिये पडा था। इसलिए आशा उसकी पीठकी तरफ चुपचाप सो रही। आशा चुपचाप पड़ी-हुई आँसू बहा रही है, इतना तो महेन्द्र उस-करवट लेटे-हुए भी स्पष्ट समझ रहा था। उसकी अपनी निष्ठुरता उसके हृत्पिण्डको चक्कीकी तरह पीसकर व्यथित करने लगी। किन्तु वह क्या बात करे, कैसे प्यार करे, उसकी कुछ समझमे न आया। मन-ही-मन वह अपनेपर कशाघात करने लगा, उससे उसे चोट तो लगी, किन्तु उपाय नही सूझा। सोचने लगा, 'सवेरे तो नीदका बहाना टिक न सकेगा, तब फिर मुकाबला होनेपर आशाको क्या जवाब दूंगा?'

किन्तु सवेरा हो भी न पाया कि आशाने खुद ही महेन्द्रका सङ्कट दूर कर दिया। वह बहुत तड़के ही अपने अपमानित साज-सिङ्गारको लिये-हुए पलगसे उठकर चली गई, वह भी महेन्द्रको मुँह न दिखा सकी।

३१

आशा सोचने लगी, 'ऐसा क्यो हुआ? आखिर मैने किया क्या? किन्तु जिस जगह असल विपत्ति छिपी बैठी थी वहाँ उसकी दृष्टि ही नहीं पडी। ऐसी सम्भावना भी कभी उसके मनमे उदित नही हुई कि महेन्द्र विनोदिनीसे प्रेम कर सकता है। ससारका अनुभव उसे कुछ भी नहीं था। इसके सिवा, यह बात भी कभी उसको कल्पनामे नही आई कि विवाहके बादसे महेन्द्रको वह निश्चित-रूपसे जैसा समझती आई है उसके सिवा महेन्द्र और भी कुछ हो सकता है।

महेन्द्र आज कुछ जल्दी ही कालेज चला गया। कालेज जाते समय आशा बराबर खिडकीके पास खडी होकर महेन्द्रकी गाडीकी तरफ देखा करती थी, और महेन्द्र भी एक बार मुँह उठाकर आशाकी ओर देख लिया करता था, यह इनलोगोका नित्यका नियम था। इस अभ्यासके अनुसार गाड़ीका शब्द सुनते ही आशा खिडकीके पास जा खड़ी हुई। और महेन्द्रने भी आदतके अनुसार क्षण-भरके लिए एक बार आँख उठाकर ऊपरको देखा। देखा कि आशा खड़ी है,—अभी तक वह नहाई-धोई नही, मैले कपडे पहने है, बाल बिखर रहे है, चेहरा सूखा-हुआ है। देखते ही उसी क्षण उसने निगाह नीची कर ली, और हाथकी किताब खोलकर देखने लगा। कहाँ गया वह चार आँखोका नीरव सम्भाषण, और कहाँ गई वह भाव-भाषापूर्ण मधुर हँसी?

गाडी चली गई। आशा जहाँकी तहाँ जमीनपर बैठ गई। सारा जगत् उसे फीका लगने लगा,—मानो उसके जीवनका स्वाद ही बिगड गया हो। कलकत्तेके दैनन्दिन कर्म-प्रवाहमें यह ज्वार आनेका समय है। साढ़े-दस बजे हैं, आफिस जानेवाली गाडियोका ताँता बँधा-हुआ है, ट्रामके पीछे ट्राम दौडती चली जा रही है, और उस व्यस्तताके वेगवान कर्म-कल्लोलके पास यह एक वेदनासे निस्तब्ध मुरझाया-हुआ हृदय अत्यन्त विसदृश मालूम होने लगा।

सहसा आशाके मनमे एक विचार उठ आया; वह मन-ही-मन कह उठी, 'अच्छा, अब समझी! बिहारी-लालाजी काशी गये थे, उसी बातपर ये नाराज हुए है। इसके सिवा इधर और कोई नाराजीकी बात तो हुई नही। पर इसमे मेरा क्या दोष था?'

सोचते-सोचते अकस्मात् एक क्षणके लिए मानो आशाके हृदयका स्पन्दन बन्द हो गया। सहसा उसे ऐसी आशङ्का हुई कि शायद उसके पतिको सन्देह हुआ है कि बिहारीके काशी जानेके साथ उसका भी कुछ सम्बन्ध है; दोनोकी सलाहसे यह काम हुआ है। छी छी, ऐसा सन्देह! कैसी लज्जाकी बात है! एक तो बिहारीके साथ उसका नाम आना ही धिक्कारका कारण है, उसपर महेन्द्रको अगर सन्देह हुआ हो, तो फिर उससे प्राण कैसे रखे जायेगे? किन्तु सचमुच ही अगर सन्देहका कोई कारण हो, उससे अगर अपराध बन पडा हो, तो महेन्द्र उसे स्पष्टतासे कहता क्यो नही? उसका न्याय-विचार करके वह उसे दण्ड क्यो नही देता?

किन्तु महेन्द्र तो स्पष्ट कुछ न कहकर बराबर उससे कतराता ही फिरता है। इससे आशाके मनमे बार-बार यही बात उठ रही है कि महेन्द्रके मनमे जरूर ऐसा कोई सन्देह हो रहा है जिसे वह खुद अन्याय समझता है, किन्तु आशाके आगे स्पष्ट-रूपसे स्वीकार करनेमे भी लज्जा अनुभव कर रहा है। नही-तो उसका चेहरा ऐसा अपराधी-जैसा क्यो होता? क्रुद्ध विचारकका ऐसा कुण्ठित भाव होनेका और तो कोई कारण नही दिखाई देता।

महेन्द्र गाडीसे क्षणमात्रके लिए आशाका जो म्लान करुण मुख देख गया था उसे वह दिन-भर अपने मनसे न मिटा सका। कालेजके प्रत्येक लेक्चरमे और श्रेणीबद्ध छात्रमण्डलीमे उसे बार-बार वही वातायन, आशाका वही चेहरा, वही बिखरे-हुए रूखे बाल, वही मलिन वस्त्र और वही व्यथित-व्याकुल चितवन सुस्पष्ट रेखाओमे अङ्कित हो-होकर दिखाई देने लगी।

कालेजका काम पूरा करके वह गोलदिग्घीके किनारे घूमने लगा। घूमते-घूमते शाम हो आई, किन्तु फिर भी वह किसी तरह निर्णय न कर सका कि आशाके साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए,—सदय छल करे या अकपट निष्ठुरता, क्या करे? यह विचार ही नही उठा उसके मनमें कि विनोदिनीको छोड देना चाहिए या नही। दया और प्रेम दोनोकी माँगको वह कैसे निभाये?

अन्तमे महेन्द्रने अपने मनको समझाना शुरू किया कि 'आशासे अब भी मेरा जितना प्रेम है उतना बहुत कम स्त्रियोके भाग्यमे होता है। उस स्नेह और प्रेमको पाकर आशा क्यो नही सन्तुष्ट रहेगी? विनोदिनी और आशा दोनोको ही स्थान देने-लायक प्रशस्त हृदय मेरे पास है। विनोदिनीके साथ मेरा जो पवित्र प्रेमका सम्बन्ध है उससे दाम्पत्य-नीतिमे किसी तरहका व्याघात नही हो सकता।'

इस तरह अपनेको समझाकर महेन्द्रने मनसे एक भारी बोझ उतार दिया। और यह सोचकर कि विनोदिनी और आशा दोनोमेंसे किसीको बिना छोड़े ही दो चन्द्रोसे-सेवित ग्रहके समान वह अपना जीवन इसी तरह बिता देगा, उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। और यह निश्चय करके कि आज रातको वह जल्दीसे बिस्तरपर जाकर अपने लाड-प्यार और स्निग्ध आलापसे आशाके मनसे भारी वेदनाको क्षण-भरमे दूर कर देगा, बड़ी तेजीसे घरकी ओर चल दिया।

भोजनके समय आशा उपस्थित नही थी, फिर भी महेन्द्र यह सोचकर कि

आखिर सोने तो आयेगी ही, अपने कमरेमे जाकर पलगपर लेट गया। किन्तु निस्तब्ध कमरेमें सूनी शय्यापर यह कौन-सी स्मृति उसके हृदयमें जाग उठी? क्या यह आशाके साथ नव-परिणयकी नित्य-नूतन प्रेम-लीलाकी स्मृति है? नही। वे स्मृतियाँ तो वैसे ही क्षीण हो चली हैं जैसे सूर्योदयके साथ-साथ ज्योत्स्ना क्षीण होती रहती है। अब तो वहाँ, उस सरला बालिकाकी सलज्ज स्निग्ध छविको न-जाने कहाँ छिपाकर, एक तीव्र-उज्ज्वल तरुणी-मूर्ति दीप्यमान हो उठी है।

महेन्द्रको विनोदिनीके साथ 'विषवृक्ष'की छीनाझपटी याद आने लगी। और फिर उन दिनोकी याद आने लगी जब शामके बाद विनोदिनी 'कपाल-कुण्डला' पढकर सुनाते-सुनाते बहुत रात कर देती, घरके सब सो जाते, और रातको उस निभृत कमरेकी निस्तब्ध निर्जनतामें विनोदिनीका कण्ठस्वर मानो आवेशमें मृदु-मधुर और रुद्धप्राय हो आता, और तब वह सहसा अपनेको सम्हालकर पुस्तक पटककर उठ खडी होती। फिर महेन्द्र कहता, "मै तुम्हें नीचे तक पहुँचा आऊँ।" इन सब बातोकी बार-बार याद करते-करते महेन्द्रका शरीर-मन पुलकित होने लगा। रात होती गई, महेन्द्रके मनमे आशङ्का-सी होने लगी कि आशा अब आती ही होगी; किन्तु आशा नही आई।

महेन्द्र सोचने लगा, 'मै तो कर्तव्य-पालनके लिए तैयार ही था, किन्तु आशा अगर फजूल नाराज होकर न आये तो मै क्या करूँ!' सोचते-सोचते निशीथ रात्रिमें अपने मनमें वह विनोदिनीके ध्यानको ही घनीभूत करने लगा।

घडीमे जब एक बजा तब फिर महेन्द्रसे न रहा गया। वह मशहरी उठाकर पलंगसे नीचे उतर आया। कमरेसे निकलकर छतपर चला गया। चारो तरफ नजर फैलाकर उसने देखा, ग्रीष्मऋतुकी चाँदनी-रात अत्यन्त रमणीय हो उठी है। कलकत्ता-महानगरीकी विशाल निःशब्दता और सुषुप्ति मानो स्तब्ध समुद्रकी जलराशिके समान स्पर्शगम्य-सी मालूम होने लगी,—निशीथ-रात्रिका मृदु-मन्द पवन मानो असख्य अट्टालिकाओके ऊपरसे महानगरीकी निद्राको और भी निविड़ करता-हुआ धीर-गतिसे टहलता-हुआ चला आ रहा हो।

महेन्द्रकी बहुत दिनोकी रुकी-हुई आकाक्षा अब अपनेको सम्हाल न सकी। आशाके काशीसे लौटनेके बादसे विनोदिनी उसके सामने नही आई। ज्योत्स्ना-मद-विह्वल निर्जन निशीथ-रात्रि महेन्द्रको मोहाविष्ट करके विनोदिनीकी ओर

ढकेलती-हुई ले चली। महेन्द्र जीनेसे उतरकर नीचे पहुँच गया। विनोदिनीके कमरेके सामनेवाले बरामदेमें जाकर उसने देखा, कमरेका दरवाजा अब तक बन्द नही हुआ है। कमरेके भीतर जाकर देखा, बिस्तर बिछे-हुए है, किन्तु उसपर कोई सोया नही है। कमरेमें किसीके आनेकी आहट सुनकर दक्षिणकी तरफके खुले-हुए बरण्डेसे विनोदिनी बोल उठी, "कौन!"

महेन्द्रने विह्वल आर्द्र कण्ठसे उत्तर दिया, "मै हूँ, विनोद!" और फिर वह एकदम सीधा बरण्डेमें पहुँच गया।

गरमियोंकी रात होनेसे राजलक्ष्मी भी वही विनोदिनीके साथ चटाईपर लेटी हुई थी, वे पूछ उठी, "महेन. इतनी रातमे तू यहाँ कैसे?"

विनोदिनीने अपनी घनी भौंहोके नीचेसे महेन्द्रपर वज्रबाण छोडा और चुप रह गई। महेन्द्र कुछ जवाब न देकर बडी तेजीसे वहाँसे चलता बना।

३२

दूसरे दिन सवेरेसे ही घनघटा छा गई। कुछ दिन असह्य गरम पडनेके बाद आज स्निग्ध-श्यामल मेघोसे तपा-हुआ आकाश शीतल हो गया। आज समय होनेके पहले ही महेन्द्र कालेज चला गया। उसके उतरे-हुए कपडे जमीनपर पडे थे, और आशा उन्हें गिन-गिनकर उनका हिसाब लिखकर धोबीको दे रही थी।

महेन्द्र स्वभावत भुलक्कड और असावधान-प्रकृतिका आदमी ठहरा, इसलिए आशासे उसने कह रखा था कि धोबीको कपडे डालनेके पहले उन-सबकी जेब वगैरह वह खूब अच्छी तरह देख लिया करे। देखते-देखते एक कुरतेकी जेबमे हाथ डालते ही आशाको एक चिट्ठी मिली।

यह चिट्ठी यदि विषधर सर्पकी मूर्ति धारण करके उसी क्षण आशाके पोटुए डस लेती तो बहुत अच्छा होता, कारण उग्र विष शरीरमें प्रवेश करनेसे मिनटोमे उसका चरम फल मिल जाता है, किन्तु यदि वह किसीके मनमे प्रवेश कर जाय तो केवल मृत्यु-यन्त्रणा ही देता है, मृत्यु नही लाता।

बिना लिफाफेकी खुली-हुई चिट्ठी निकालते ही उसने देखा, विनोदिनीके हस्ताक्षर है! क्षणमात्रमे उसका चेहरा पीला पड़ गया। चिट्ठी हाथमें लेकर वह बगलके कमरेमें चली गई, और पढने लगी।

उसमे लिखा था :—

"कल आधी रातको तुमने जो करतूत कर डाली, उससे भी क्या तुम्हारा पेट नही भरा? आज फिर क्यो तुमने मुझे खेमी-नौकरानीके हाथ गुप्त चिट्ठी भेजी? छी छी, वह अपने मनमें क्या सोचती होगी! मुझे क्या तुम ससारमे किसीके आगे मुँह दिखाने-लायक नही रहने दोगे?

· इस ससारमे मेरे लिए प्रेम करने और प्रेम पानेकी कही भी कोई जगह नही। इसीसे मै खेल खेलकर प्रेमका खेद मिटा लिया करती हूँ। जब तुम्हारे पास अवसर था तब उस झूठे खेलमे तुम भी शामिल हुए थे। किन्तु 'खेलकी छुट्टी' क्या खतम नही होती? अब तुम्हारे अपने घरमे तुम्हारी पुकार हुई है, अब फिर खेल-घरमें तुम क्यो ताक-झाँक रहे हो? अब धूल झाडकर अपने घर जाओ। मेरे तो घर नही है, मन-ही-मन अकेली बैठकर खेलती रहूँगी, तुम्हें नही बुलाऊँगी।

तुमने लिखा है कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। खेलके वक्त ऐसी बात सुनी जा सकती है, किन्तु अगर सच कहूँ तो कहना पड़ेगा कि मै ऐसी बातोपर विश्वास नही करती। एक समय था जब तुम समझते थे कि तुम आशासे प्रेम कर रहे हो,—वह भी झूठ था, और आज तुम समझ रहे हो कि तुम मुझसे प्रेम करते हो,—यह भी झूठ है। असलमे तुम सिर्फ अपनेको प्यार करते हो। प्रेमकी प्याससे मेरा तो हृदयसे लेकर छाती तक सब सूख उठा है, उस प्यासको बुझानेकी पूँजी तुम्हारे पास नही है, इस बातको मै बहुत अच्छी तरह देख चुकी हूँ। मै तुमसे बार-बार कह रही हूँ, तुम मुझे छोड दो, मेरे पीछे-पीछे न फिरो, खुद निर्लज्ज होकर मुझे लज्जित न करो। अब तो मेरा खेलका शौक भी मिट चुका है, अब पुकारनेपर भी मेरी तरफसे उत्तर नही मिलेगा।

अपनी चिट्ठीमे तुमने मुझे 'निष्ठुर' कहा है। बात सच हो सकती है, किन्तु मेरे अन्दर कुछ दया भी है, इसीसे आज मै तुम्हे दया करके छोड रही हूँ। इस चिट्ठीका अगर उत्तर दो, तो समझूँगी कि बिना यहाँसे भागे तुम्हारे हाथसे मेरा छुटकारा नही।"

चिट्ठी पढते ही आशाके समस्त अवलम्बन मानो अलग जा गिरे, और शरीरकी समस्त स्नायुपेशियाँ मानो शिथिल हो गई निश्वास लेनेके लिए मानो कही हवा

तक बाकी नही रही, और सूर्यने उसकी आँखोके आगेसे मानो सारा प्रकाश छका लिया। आशा पहले दीवारका, फिर अलमारीका, फिर चौकीका सहारा लेते-लेते अन्तमे जमीनपर गिर पडी। क्षण-भर बाद सचेतन होकर फिर उसने चिट्ठी पढनेकी कोशिश की, किन्तु उसका उद्भ्रान्त चित्त किसी भी तरह उसका अर्थ न समझ सका ; काले-काले अक्षर उसकी आँखोके आगे नाचने लगे। यह क्या ! आखिर हुआ क्या ? क्यो ऐसा हुआ ? यह क्या सम्पूर्ण सर्वनाश है ? अब वह क्या करे, किसे बुलाये, कहाँ जाये, कुछ भी उसकी समझमें नही आ रहा। पानीके बाहर मछली जैसे फडफडाने लगती है, उसकी छातीके भीतर उसी तरहकी बेचैनी फडफडाने लगी। डूबता-हुआ आदमी जैसे किसी चीजका सहारा पानेके लिए पानीपर हाथ फैला-फैलाकर आकाश ढूँढता रहता है उसी तरह आशा अपने मनके भीतर कोई-एक सहारा पानेके लिए भटकने लगी , और अन्तमे छाती पीटकर हाँफती-हुई पुकार उठी, "मौसी !"

इस स्नेह-सम्भाषणके उच्छ्वसित होते ही उसकी आँखोसे झरझर आँसू झरने लगे। जमीनपर बैठी-बैठी वह बहुत देर तक बार-बार रोती रही, और अन्तमें जब रोना कुछ थमा तो सोचने लगी, 'इस चिट्ठीका मै क्या करूँ ? वे अगर जान गये कि यह चिट्ठी मेरे हाथ पड गई है तो इसके लिए वे बहुत ज्यादा लज्जित होगे।' और इस कल्पनासे वह अत्यन्त सकुचित हो उठी। अन्तमे उसने तय किया कि चिट्ठीको वह उसी कुरतेकी जेबमे रखकर कुरता जहाँका तहाँ टाँग देगी, धोबीको नही देगी। तुरत वह चिट्ठी हाथमें लिये-हुए अपने कमरेमें लौट आई। इस बीचमें धोबी मैले कपडोकी गठरीपर सिर रखकर सो गया था। आशा कुरता उठाकर उसकी जेबमे चिट्ठी रख रही थी कि इतनेमे आवाज आई, "किरकिरी !"

इतना सुनते ही आशा जल्दीसे चिट्ठी और कुरता पलगपर डालकर चटसे उसके ऊपर बैठ गई। विनोदिनीने भीतर आकर कहा, "धोबी कपड़े बहुत बदलने लगा है। जिन कपडोमें निशान नही लगा उन्हें मै लिये जाती हूँ, सबपर निशान लगाना है।"

आशासे विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखा नही गया। वह इस डरसे कि कही मुँहके भावसे मनकी बात प्रकट न हो जाय, खिडकीकी तरफ मुँह फेरकर आकाशकी ओर देखती रही, और ओठसे ओठ दबाये रही, ताकि आँखोसे आँसू न निकल पड़ें।

विनोदिनी ठिठककर खडी हो गई, और आशाको एक बार उसने अच्छी तरह देख लिया। मन-ही-मन बोली, 'अच्छा, समझ गई! कल रातकी बातका इसे पता लग गया मालूम होता है। हुँ, सारा गुस्सा मेरे ही ऊपर! जैसे मेरा ही कसूर हो!'

विनोदिनीने आशासे बात करनेकी कोई कोशिश नही की। उसने कुछ कपडे छाँट लिये, और तेजीके साथ कमरेसे वह बाहर चली गई।

विनोदिनीके साथ आशा अब तक जो सरल चित्तसे मित्रता निभाती रही है उसकी लज्जा इस निदारुण दु खमें भी उसके हृदयमें पुञ्जीभूत हो उठी, उसके मनमे सखीका जो आदर्श अङ्कित था उस आदर्शके साथ इस निष्ठुर पत्रको और एक बार मिला देखनेकी उसकी इच्छा होने लगी।

आशा फिरसे चिट्ठी खोलकर देख रही थी कि इतनेमें बड़ी तेजीसे महेन्द्र आ पहुँचा कमरेमें।

अचानक किसी बातकी याद उठ आनेसे वह लेक्चरके बीचमेंसे ही उठकर कालेजसे सीधा घर दौडा आ रहा है।

आशाने चिट्ठी अपने आँचलमे छिपा ली। महेन्द्र भी कमरेमें आशाको देखकर जरा ठिठककर खडा रह गया। और फिर व्यग्र दृष्टिसे कमरेमें इध-उधर देखने लगा। आशा समझ गई थी कि महेन्द्र क्या ढूंढ रहा है, किन्तु उसकी कुछ समझमें न आया कि कैसे वह हाथकी चिट्ठीको यथास्थान रखकर वहाँसे भाग जाय।

महेन्द्र एक-एक करके मैले कपडे उठा-उठाकर देखने लगा। उसके इस निष्फल प्रयासको देखकर आशासे रहा नही गया; उसने चिट्ठी और कुरता जमीनपर फेंक दिया, और दाहने हाथसे मशहरीका खम्भा थामकर उसकी कोहनीमें अपना मुँह छिपा लिया।

महेन्द्रने बडी तेजीसे लपककर चिट्ठी उठा ली, फिर क्षण-भरके लिए स्तब्ध होकर आशाकी तरफ देखा। इसके बाद, आशाको उस सन्नाटेमें जीनेकी सीढियोसे महेन्द्रके उतरनेकी आवाज सुनाई दी।

ठीक इसी समय धोबी पुकार उठा, "बहूजी, कपड़े देनेमें अब और कितनी देर लगाओगी? बहुत अबेर हो गई है। बहुत दूर जाना है मुझे।"

३३

राजलक्ष्मीने आज सवेरेसे विनोदिनीको नही बुलाया। विनोदिनी नित्यके नियमानुसार भण्डार-घरमे गई, किन्तु राजलक्ष्मीने उसकी तरफ देखा तक नही। फिर भी उसने कहा, "बुआजी, तुम्हारी तबीयत ठीक नही मालूम होती। ठीक रहे भी कैसे! कल रातको लालाजी ऐसी करतूत कर बैठे कि जिसका ठीक नही! एकदम पागलकी तरह चले आये। मुझे तो फिर नीद ही नही आई।"

राजलक्ष्मी मुँह भारी किये बैठी रही, 'हाँ' या 'ना' कुछ जवाब ही नही दिया।

विनोदिनी बोली, "शायद किरकिरीके साथ कुछ खटपट हो गई होगी, बस, फिर खैर कहाँ! उसी वक्त नालिश और फैसलेके लिए भाभीपर धावा बोल दिया, सवेरे तक वहाँ सब्र किसको है! कुछ भी कहो, बुआजी, तुम नाराज न होना, तुम्हारे लडकेमे और चाहे हजार गुण हो, पर धीरज तो रत्ती-भर भी नही है। इसीलिए मुझसे उनकी नही बनती।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहू, तुम झूठ बक रही हो,—आज मुझे कुछ भी अच्छा नही लग रहा।"

विनोदिनी बोली, "मुझे भी कुछ अच्छा नही लग रहा, बुआजी! तुम्हारे मनको चोट पहुँचेगी, इस डरसे झूठी बातोसे तुम्हारे लडकेके दोष ढकनेकी कोशिश कर रही थी मै। पर, बात ऐसी है कि ढकी नही जा सकती।"

राजलक्ष्मीने कहा, "अपने लडकेके दोष-गुण मुझे सब मालूम है। पर, तुम ऐसी मायाविनी हो, यह मै नही जानती थी।"

विनोदिनी कुछ कहनेके लिए उद्यत हुई और उसी क्षण अपनेको सयत करके बोली, "सो तो बात ठीक है, बुआजी, कोई भी किसीको नही जानता। अपने मनको भी क्या सब जानते है? तुमने क्या कभी अपनी बहूसे द्वेष करके इस मायाविनीके जरिये अपने लडकेका मन बहलाना नही चाहा था? एक बार जरा सोचकर देखो!"

राजलक्ष्मी सहसा आगकी तरह उद्दीप्त हो उठी, बोली, "अभागिन कहीकी, लडकेके सम्बन्धमे माको तू इस तरह बदनाम करती है! तेरी जीभ क्यो नही गल जाती!"

विनोदिनीने अविचलित-भावसे कहा, "हम-औरतोकी जात ही मायाविनीकी जात है। मेरे अन्दर क्या माया थी सो मै नही जान सकी, पर तुम जान गईं, और तुम्हारे अन्दर क्या माया थी सो तुम नही जान सकी, मै जान गई। पर माया थी जरूर, नही-तो ऐसी घटना हरगिज नही हो सकती थी। जाल मैने भी कुछ जानकर और कुछ बिना-जाने बिछाया था,—और जाल तुमने भी कुछ जानकर और कुछ बिना-जाने बिछाया था। हमारी जातका धर्म ही ऐसा है, हम सब मायाविनी है।"

मारे क्रोधके राजलक्ष्मीका कण्ठ रुक आया, उनके मुँहसे कोई बात ही नही निकली। जल्दीसे वे वहाँसे उठकर चली गईं।

विनोदिनी उस निर्जन कोठरीमे बहुत देर तक स्थिर खडी रही, उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ-सी छूटने लगी।

सवेरेका घरका काम-धन्धा हो चुकनेके बाद राजलक्ष्मीने महेन्द्रको बुलवा भेजा। महेन्द्र समझ गया कि कल रातकी घटनाके विषयमें उससे पूछताछ की जायगी। इसके पहले विनोदिनीसे उसे अपने पत्रका उत्तर मिल चुका था, और उसमे उसका मन अत्यन्त विकल हो उठा था। उस आघातके प्रतिघात-स्वरूप उसका सम्पूर्ण तरङ्गित हृदय विनोदिनीकी ओर जोरसे दौडा चला जा रहा था। उसपर फिर माके साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करना उसके लिए असाध्य था। इसलिए, इस समय उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह घरसे कही दूर जाकर सब बातोपर ठीकसे विचार कर देखे। उसने नौकरसे कह दिया, "मासे जाकर कहना, आज कालेजमे मुझे एक जरूरी काम है, अभी जाना है, लौटूँगा तब मिल लूँगा उनसे।" इतना कहकर वह भगोडेकी तरह उसी वक्त कपडे पहनकर बिना खाये-पिये घरसे भाग खडा हुआ। विनोदिनीकी जिस निष्ठुर निदारुण चिट्ठीको आज सवेरेसे वह बार-बार पढता रहा है और जेबमे लिये-लिये फिर रहा है उस चिट्ठीको वह भागनेकी जल्दीमे कुरतेमे ही धरी छोड गया।

कुछ देर पहले एक बार जोरकी वर्षा हुई और बन्द हो गई थी। अब दिन बदलीका-सा हो रहा है। विनोदिनीका मन आज बहुत ही उदास है। मनमें किसी तरहकी अशान्ति या दु:ख होता है तो विनोदिनी कामकी मात्रा बढा देती है। इसीसे उसने आज दुनिया-भरके कपडे इकट्ठे करके उनमे निशान लगाना शुरू कर दिया है। आशाके पास जब कपडे लेने गई तो आशाका मुँह देखकर उसका और भी मिजाज

बिगड़ गया। ससारमें अगर अपराधी ही होना है, तो अपराधकी सिर्फ लाञ्छना ही क्यो भोगी जाय, उसका जो सुख है उसे क्यो नही भोगा जाय?

फिर झमझम वर्षा होने लगी। विनोदिनी अपने कमरेमे जमीनपर बैठी है। उसके सामने कपडोका ढेर पडा है। खेमी नौकरानी एक-एक कपडा आगे बढाती जाती है और विनोदिनी उसमे निशान डालनेकी स्याहीसे निशान डालती जाती है।

इतनेमें बिना कुछ कहे-सुने सहसा दरवाजा खोलकर महेन्द्र एकदम भीतर चला आया। खेमी दासी हाथका काम छोडकर सिर ढकती-हुई बाहर भाग गई।

विनोदिनी हाथका कपडा फेंककर बिजलीकी-सी तेजीसे उठ खड़ी हुई। बोली, "जाओ, मेरे इस कमरेसे तुरत चले जाओ तुम।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो, क्या किया है मैने?"

विनोदिनीने कहा, "क्या किया है! डरपोक, कायर! क्या करनेका सामर्थ है तुममे? न तो तुम प्रेम करना जानते हो और न कर्तव्य करना। फिर फजूलमे मुझे क्यो इस तरह बदनाम कराते हो?"

महेन्द्रने कहा, "मै तुमसे प्रेम नही करता, यह बात तुम कहती हो!"

विनोदिनीने कहा, "हाँ, हाँ, मै कहती हूँ। दुबकाचोरी, दबाना-ढकना, एक बार इधर तो एक बार उधर,—तुम्हारी इन चोरकी-सी प्रवृत्तियोको देखकर मुझे तुमसे घृणा हो गई है। अब यह-सब अच्छा नही लगता मुझे। तुम जाओ यहाँसे।"

महेन्द्र एकदम मुरझा-सा गया, बोला, "तुम मुझसे घृणा करती हो, विनोद?"

विनोदिनीने कहा, "हाँ, घृणा करती हूँ।"

महेन्द्रने कहा, "अब भी प्रायश्चित्त करनेका समय है, विनोद! मै अगर अब दुबिधा न करूँ, सब-कुछ छोड-छाडकर चलनेको तैयार हो जाऊँ, तो तुम मेरे साथ चलनेको तैयार हो?" इतना कहकर महेन्द्रने विनोदिनीके दोनो हाथ पकड लिये और जबरदस्ती उसे अपनी ओर खीच लिया।

विनोदिनीने कहा, "छोडो, मेरे लग रही है।"

महेन्द्रसे कहा, "लगने दो। बताओ, चलोगी तुम मेरे साथ?"

विनोदिनीने कहा, "नही, मैं नही जाऊँगी। हरगिज नही।"

महेन्द्रने कहा, "क्यो नहीं जाओगी? तुम ही मुझे सर्वनाशके मुँह तक खीच लाई हो, अब तुम मुझे छोड नही सकती। तुम्हें मेरे साथ जाना ही होगा।"

कहते-कहते उसने बल-पूर्वक विनोदिनीको अपनी छातीके पास खींच लिया ; और जबरदस्ती छातीसे लगाये रखनेकी कोशिश करता-हुआ बोला, "तुम्हारी घृणा भी अब मुझे पीछे नही हटा सकती, विनोद ! मैं तुम्हे ले ही जाऊँगा, और जैसे भी हो, तुम्हें मुझसे प्यार करना ही होगा।"

विनोदिनीने काफी जोर लगाकर अपनेको अलग कर लिया।

महेन्द्र बोला, "चारो तरफ तुमने आग जला रखी है,—अब न तो तुम उसे बुझा सकती हो और न निकलकर भाग ही सकती हो।" कहते-कहते महेन्द्रका कण्ठस्वर ऊँचा हो उठा, उसने जोरसे कहा, "ऐसा खेल खेला ही क्यो तुमने, विनोद ? अब तुम इसे खेल समझकर छुटकारा नही पा सकती। अब तो दोनोंकी एक ही गति है, दोनोको एकसाथ मरना होगा।"

इतनेमे राजलक्ष्मी चली आई। बोली, "यह क्या कर रहा है, महेन ?"

महेन्द्रकी उन्मत्त दृष्टि एक क्षणके लिए माकी तरफ फिरी, और फिर दूसरे ही क्षण विनोदिनीकी तरफ हो गई। उसने कहा, "मैं अपना सब-कुछ छोडकर चल दूंगा, बोलो, चलोगी तुम मेरे साथ ?"

विनोदिनीने क्रुद्धा राजलक्ष्मीके मुँहकी ओर एक बार देखा। फिर आगे बढकर अविचलित-भावसे महेन्द्रका हाथ पकडते-हुए उसने कहा, "हाँ, चलूंगी।"

महेन्द्रने कहा, "तो आज-भरके लिए तुम ठहर जाओ। मैं चल दिया। कलसे तुम्हारे सिवा मेरा और कोई भी न होगा।" इतना कहकर वह चला गया।

इतनेमे धोबी आकर विनोदिनीसे बोला, "बहूजी, अब तो नही ठहर सकूंगा। आज फुरसत न हो तो रहने दीदिये, कपडे मै कल आकर ले जाऊँगा।"

खेमीने आकर कहा, "बहूजी, सईस कहता है कि दाना नही है।"

विनोदिनी हर हफ्ते सात दिनका दाना तुलवाकर अस्तबल भिजवा दिया करती थी ; और रोज खुद खिड़कीके पास खडी होकर घोडेका दाना खाना देखा करती थी।

इतनेमे, गोपाल नौकर आ गया , और कहने लगा, "बहूजी, झण्डू आज साधु-दादाजीसे लड़ पडा। कहता है, उससे मिट्टीके तेलका हिसाब ले लिया जाय और उसे नौकरीसे छुट्टी दे दी जाय।"

घर-गृहस्थीका सब काम पहले-जैसा ही चलता रहा।

३४

बिहारी अब तक मेडिकल-कालेजमे पढ रहा था। ठीक परीक्षाके पहले ही उसने कालेज छोड दिया। इसपर कोई आश्चर्य प्रकट करता तो वह कहता, "दूसरोका स्वास्थ्य पीछे देखूंगा, फिलहाल अपना स्वास्थ्य तो ठीक कर लूं।"

असल बात यह है कि बिहारीके उद्यमोका शेष नही ; कुछ-न-कुछ किये बिना उससे रहा नही जाता, और मजा यह कि यशकी भूख, रुपयेका लोभ या जीविकाके लिए कुछ उपार्जन करना उसके लिए बिलकुल निष्प्रयोजन था। कालेजसे डिग्री पाकर पहले तो वह शिवपुर-इजोनियरिंग-कालेजमे भरती हुआ ; और फिर वहाँसे जितना ज्ञान प्राप्त करनेकी उसके इच्छा थी उतना ज्ञान और दक्षता प्राप्त करके वह मेडिकल कालेजमे भरती हो गया। और महेन्द्र उससे साल-भर पहले डिग्री लेकर मेडिकल-कालेजमे भरती हुआ था।

कालेजके विद्यार्थियोमें इन दोनोकी मित्रता प्रसिद्ध थी। वे हँसी-हँसीमें इन्हे 'श्याम-देशकी जुडवाँ-जोडी' कहा करते थे। पिछले साल महेन्द्र परीक्षामे फेल हो गया, और तबसे दोनो एक श्रेणीमे आकर मिल गये। इस बीचमे सहसा इन दोनोका जोड क्यो अलग हो गया, सो विद्यार्थियोकी कुछ समझमे न आया। रोज जहाँ महेन्द्रसे भेट होगी ही, किन्तु पहले-जैसी नही होगी, वहाँ बिहारीसे किसी भी तरह जाते नही बना। सभी जानते थे कि बिहारी अच्छी तरह पास करके अवश्य ही सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करेगा, किन्तु हुआ यह कि उसने परीक्षाके पहले ही कालेज छोड दिया।

बिहारीके घरके पास एक कच्चे झोपडेमे राजेन्द्र चक्रवर्ती नामका एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह छापेखानेमें बारह रुपये महीनेपर कम्पोजिटरीका काम करके अपना गुजर करता था। एक दिन बिहारीने उससे कहा, "तुम अपने लड़केको मेरे पास रखो, मैं उसे खुद पढा-लिखाकर आदमी बना दूँगा।"

ब्राह्मण मानो जी गया। बडी खुशीसे उसने अपने आठ सालके लडके बसन्तको बिहारीके हाथ सौप दिया।

बिहारी उसे अपनी पद्धतिसे शिक्षा देने लगा। अपने मनमें उसने तय किया कि 'दस सालकी उमर तक इसे कोई किताब नही पढाऊँगा, केवल मौखिक शिक्षा

देता रहूँगा।' बिहारी बसन्तको साथ लेकर कभी किलेके मैदानमें घूमन जाता, कभी उसके साथ खेलता रहता, कभी उसे अजायबघर दिखलाता, कभी अलीपुर-पशुशाला ले जाता और कभी शिवपुरका बगीचा दिखलाता। इस तरह उसके दिन कटने लगे। बसन्तको वह मुँह-जबानी अंग्रेजी सिखाता और कहानीके रूपमें इतिहास सुनाया करता। नानाप्रकारसे बालककी चित्तवृत्तिकी परीक्षा करना और उसकी परिणतिके लिए उपयुक्त साधन उपस्थित करना, यह उसका दिन-भरका काम था। अपनेको वह क्षण-भरके लिए भी छुट्टी नही देता।

उस दिन शामको बाहर निकलना मुश्किल हो गया। दोपहरको वर्षा जरा बन्द रही, फिर तीसरे पहर जोरसे पानी बरसने लगी। बिहारी अपने ऊपरवाल बड़े कमरेमे बत्ती जलाकर बसन्तके साथ अपनी नई पद्धतिसे खेल खेल रहा था।

अकस्मात् बिहारी बसन्तसे पूछ बैठा, "बसन्त, इस कमरेमें कितनी कड़ियाँ हैं, चटपट बताओ? नही, गिन नही पाओगे।"

बसन्तने कहा, "बीस।"

बिहारीने कहा, "तुम हार गये,—अठारह हैं।"

इसके बाद चटसे किवाडकी झिलमिली खोलकर बिहारीने पूछा, "अच्छा, बताओ, इस झिलमिलीमें कितनी पट्टियाँ है?" और तुरत झिलमिली बन्द कर दी।

बसन्तने कहा, "आठ।"

बिहारीने कहा, "अबकी जीत गये। और फिर पूछने लगा, "अच्छा, बताओ, इस बेन्चकी लम्बाई कितनी है?" "इस पुस्तकका वजन क्या है?" इस तरह बिहारी बसन्तके इन्द्रिय-ज्ञानका विकाश कर रहा था कि इतनेमे नौकरने आकर कहा, "बाबू सा'ब, एक औरत—"

नौकरकी बात खतम भी न हो पाई कि विनोदिनी कमरेके भीतर आ गई।

बिहारी दग रह गया, बोला, "यह क्या, भाभी! बात क्या है?"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हारे यहाँ घरकी स्त्रियोमेंसे कोई नही है?"

बिहारीने कहा, "न तो घरकी कोई है, न बाहरकी। एक बुआ है, सो देशमें रहती है।"

विनोदिनीने कहा, "तो तुम मुझे वही अपनी बुआके पास छोड़ आओ।"

बिहारीने कहा, "वहाँ मैं तुम्हें क्या कहके छोड़ आऊँ?"

विनोदिनीने कहा, "दासी कहके। मै वहाँ घरका सब काम-काज किया करूँगी।"

बिहारीने कहा, "बुआजीको लेकिन कुछ आश्चर्य होगा,—उन्होने आज तक कभी मुझसे दासीके अभावकी चर्चा नही की। पहले यह तो सुनूँ कि ऐसा विचार मनमे उठा क्यो?—बसन्त, जाओ तुम, सो जाओ।"

बसन्त चला गया। विनोदिनीने कहा, "बाहरकी घटना सुनकर तुम भीतरकी बात कुछ भी नही समझ सकोगे।"

बिहारीने कहा, "न समझ सका तो न सही,—और गलत भी समझा तो उससे नुकसान क्या?"

"अच्छा, न-हो-तो गलत ही समझ लेना। महेन्द्र मुझसे प्रेम करता है।"

"यह बात तो नई नही, और ऐसी भी नही कि दुबारा सुननेकी इच्छा हो।"

"बार-बार सुनानेकी इच्छा मेरी भी नही है,—इसीलिए तुम्हारे पास आई हूँ। तुम मुझे शरण दो।"

"तुम्हारी इच्छा नही तो आजका यह सङ्कट लाया कौन? महेन्द्र जिस रास्तेसे जा रहा था उस रास्तेसे उसे भ्रष्ट किसने किया?"

"मैने किया। तुमसे कोई बात मै छिपाऊँगी नही। यह सब-कुछ मेरी ही करतूत है। मै बुरी होऊँ या जैसी भी होऊँ, एक बार तुम मेरी स्थितिमें आकर मेरी तरह मेरे हृदयकी बात समझनेकी कोशिश करो। अपने हृदयकी ज्वालासे मैंने महेन्द्रका घर जलाया है। एक बार मैने समझ लिया था कि मै महेन्द्रसे प्यार करती हूँ, किन्तु गलत, भूल थी मेरी वह।"

"जो प्यार करता है, सो क्या इस तरह आग लगा सकता है?"

"लालाजी, यह तुम्हारे शास्त्रोकी बात है। अभी मेरी वह अवस्था नही आई जब शास्त्रादेश पालन करनेकी सुमति पैदा हो जाती है। लालाजी, तुम अपनी पोथी रखकर अन्तर्यामीकी तरह एक बार मेरे हृदयपर दृष्टि डालो। अपनी भलाई-बुराई सब आज मै तुम्हारे सामने खोलकर कह देना चाहती हूँ।"

"पोथी क्या मैं यो ही खोले रखता हूँ, भाभी! हृदयको हृदयके ही नियमानुसार समझनेका भार अन्तर्यामीपर ही रहने दो। हमलोग अगर पोथीके नियमानुसार न चलें तो अन्तमें ठोकर खाकर गड्ढेमें गिरनेसे रोकेगा कौन हमें?"

"सुनो, लालाजी, मैं निर्लज्ज होकर कह रही हूँ, तुम मुझे बचा सकते थे। महेन्द्र मुझे चाहता जरूर है, किन्तु वह ठोस अन्धा है, मुझे समझता नही। एक बार मुझे ऐसा लगा था कि तुम मुझे समझ गये हो,—और एक बार शायद तुमने मुझपर श्रद्धा भी की थी। सच कहना, उस बातको छिपानेकी कोशिश मत करना।"

"सच ही कहता हूँ, मैं तुम्हे श्रद्धा करने लगा था।"

"उसमे तुमने गलती नही की थी, लालाजी! किन्तु यदि समझ ही लिया था, यदि श्रद्धा ही करने लगे थे, तो वही रुक क्यो गये? मुझसे प्रेम करनेमे तुम्हारे लिए बाधा क्या थी? मै आज निर्लज्ज होकर तुम्हारे पास आई हूँ; और निर्लज्ज होकर ही आज तुमसे कहती हूँ,—तुमने मुझे क्यो नही चाहा, क्यों नही मुझसे प्रेम किया? मेरी फूटी तकदीर। तुम भी क्या आशाके प्रेममे डूबे-हुए थे? नही, तुम नाराज नही हो सकते। बैठो, लालाजी, मै कोई भी बात ढकके नही कहूँगी। तुम आशासे प्रेम करते हो, इस बातको जब तुम खुद भी नही जानते थे, तब भी मैं जानती थी। किन्तु आशाके भीतर तुमलोगोने ऐसी कौन-सी बात पाई है, उसमे क्या देखा है, मेरी कुछ समझमे नही आता। अच्छाई कहो या बुराई, उसमें है क्या? विधाताने क्या पुरुषोकी दृष्टिके साथ अन्तर्दृष्टि जरा भी नहीं दी? पता नही, तुमलोग क्या देखकर कितना-सा देखकर ऐसे मोहित हो जाते हो? निर्बोध हो तुमलोग, अन्धे, बिलकुल अन्धे!"

बिहारी उठके खडा हो गया, बोला, "आज तुम मुझे जितना भी सुनाना चाहो, सुनाओ, मै सब सुनूँगा। किन्तु जो बात कहनेकी नही उसे मत कहो, तुमसे इतनी ही मेरी प्रार्थना है।"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, कहाँ तुम्हारे चोट पहुँच रही है, मै जानती हूँ, किन्तु जिसकी श्रद्धा मिली थी मुझे और जिसका प्रेम पानेसे मेरा जीवन सार्थक हो जाता, उसके पास रातके समय मै जो अपना सब-कुछ विसर्जन देकर दौडी आई हूँ, सो कितनी बडी वेदनासे, उसका खयाल करके जरा धैर्यसे काम लो। मै सच कहती हूँ, तुम यदि आशासे प्यार न करते होते, तो मेरे द्वारा आशाका आज ऐसा सर्वनाश हरगिज न होता।"

बिहारीका चेहरा सफेद-फक पड गया। उसने कहा, "आशाका क्या हो गया? तुमने उसका क्या कर डाला?"

विनोदिनी बोली, "महेन्द्र अपना सर्वस्व त्यागकर कल ही मुझे लेकर घरसे निकल जानेकी तैयारी कर चुका है।"

बिहारी सहसा गरज उठा, बोला, "यह हरगिज नही हो सकता। नहीं-नहीं, हरगिज नही।"

विनोदिनीने कहा, "हुँ, नही-नही, हरगिज नही! किन्तु, महेन्द्रको आज रोक कौन सकता है?"

बिहारीने कहा, "तुम रोक सकती हो।"

विनोदिनी कुछ देर तक चुप रही, फिर बिहारीकी आँखोमे आँखें डालकर बोली, "किसके लिए रोकूँ मै? तुम्हारी आशाके लिए? मेरा अपना सुख-दुःख क्या कुछ भी नही? तुम्हारी आशाका भला हो, महेन्द्रके दाम्पत्य और घर-गृहस्थीका भला हो, बस इसीके लिए मै अपनी इहलोककी सारी आकाक्षाओको मिटा दूँ? इतनी अच्छी मै नही हूँ, धर्मशास्त्रकी पोथियाँ मैने इतनी ज्यादा नही पढी। मैं जो-कुछ छोडूँगी उसके बदलेमे मै क्या पाऊँगी?"

बिहारीके चेहरेका भाव क्रमशः अत्यन्त कठिन हो उठा, वह बोला, "तुमने बहुत-सी स्पष्ट बाते कहनेकी कोशिश की है, अब मै भी एक स्पष्ट बात कहता हूँ, सुनो। तुमने आज जो काण्ड कर डाला है और तुम जो बाते कह रही हो, उसका अधिकाश तुमने जो साहित्य पढा है उससे चुराया-हुआ है, उसका बारह-आना हिस्सा नाटक-उपन्यासका है, तुम्हारा अपना नही।"

विनोदिनीने कहा, "नाटक! उपन्यास!"

बिहारीने कहा, "हाँ, नाटक, उपन्यास। सो भी बहुत ऊँचे दरजेके नही। तुम समझती हो, यह-सब तुम्हारी अपनी बातें है,—यह गलत है। यह-सब छापेखानेकी प्रतिध्वनि है। तुम अगर नितान्त निर्बोध मूर्ख सरला बालिका होती, तो भी तुम ससारमे प्रेमसे वचित न रहती। किन्तु नाटककी नायिका स्टेजपर शोभा देती है, घरमे उससे काम नही चलता।"

कहाँ गया विनोदिनीका वह तीव्र तेज, कहाँ गया उसका वह दुःसह दर्प? मन्त्राहत फणिनीकी तरह वह स्तब्ध होकर झुक गई। फिर बहुत देर बाद बिहारीके मुँहकी तरफ बगैर देखे उसने शान्त-नम्र स्वरमे कहा, "तुम मुझे क्या करनेको कहते हो?"

बिहारीने कहा, "असाधारण कुछ करनेकी कोशिश मत करो। साधारण स्त्रीकी शुभबुद्धि जो कहे वही करो। तुम देश चली जाओ।"

विनोदिनी बोली, "कैसे जाऊँ?"

बिहारीने कहा, "मै तुम्हे जनाने-डब्बेमे बिठाकर तुम्हारे गाँवके स्टेशन तक पहुँचा आऊँगा।"

विनोदिनीने कहा, "तो आज रातको मै यही रह जाऊँ?"

बिहारीने कहा, "नही, अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नही है।"

सुनते ही उसी क्षण विनोदिनी चौकीसे उठकर बिहारीके पैरोके पास लोट गई, और उसके पाँवोको अपनी छातीसे चुपटाकर बोली, "कमसे कम इतनी कमजोरी बनाये रखना, लालाजी! एकदम पत्थरके देवताकी तरह पवित्र न बन जाना। किसी बुरेसे प्यार करके थोडे बुरे बने रहना।" इतना कहकर विनोदिनी बार-बार उसके पाँव चूमने लगी।

बिहारी विनोदिनीके इस आकस्मिक और अकल्पनीय व्यवहारसे क्षण-भरके लिए मानो अपनेको सम्हाल न सका। उसके शरीर-मनकी ग्रन्थियाँ मानो शिथिल हो आईं। विनोदिनी बिहारीके इस स्तब्ध-विह्वल भावका अनुभव करके उसके पाँव छोडकर घुटनोके बल उन्नत हो उठी और चौकीपर बैठे-हुए बिहारीके गलेमें अपनी बाहे डालकर बोली, "मेरे जीवनसर्वस्व, मैं जानती हूँ, तुम मेरे चिरकालके नही हो, किन्तु आज एक क्षणके लिए तुम मुझे प्यार करो। उसके बाद मैं अपने उसी वन-जगलमें चली जाऊँगी। किसीसे कुछ भी नही चाहूँगी। मरने तक याद रखने-लायक तुम मुझे कुछ तो दो आज!" कहते-हुए विनोदिनीने आँख मीचकर अपने ओष्ठाधर बिहारीके मुँहकी ओर बढा दिये।

क्षण-भरके लिए दोनो जने निश्चल और सारा कमरा निस्तब्ध हो रहा। इसके बाद एक गहरी साँस लेकर बिहारीने धीरे-धीरे विनोदिनीके हाथ अलग कर दिये, और उठकर वह दूसरी चौकीपर जा बैठा। और फिर उसने अपने रुद्ध कण्ठको साफ करते-हुए कहा, "रातको एक बजे एक पैसेन्जर-ट्रेन है।"

विनोदिनी कुछ देर स्तब्ध बैठी रही, फिर अस्फुट स्वरमे बोली, "मै उसी गाडीसे चली जाऊँगी।"

इतनेमें, नगे-पाँव उघडे-बदन बसन्त अपना पुरिपुष्ट गोरा सुन्दर शरीर

लिये विनोदिनीकी चौकीके पास आ खडा हुआ और विनोदिनीकी तरफ देखने लगा। बिहारीने पूछा, "सोने नही गया तू ?"

बसन्त कुछ जवाब न देकर अपना गम्भीर चेहरा लिये खडा रहा।

विनोदिनीने उसकी तरफ दोनो हाथ बढा दिये। बसन्त पहले तो कुछ दुबिधामे पड गया, और फिर वह धीरे-धीरे विनोदिनीके पास पहुँच गया। विनोदिनीने उसे अपनी छातीसे लगा लिया, उसकी आँखोसे झरझर आँसू बहने लगे।

३५

जो असम्भव है वह भी सम्भव हो जाता है, और जो असह्य है वह भी सह्य हो जाता है , नही-तो महेन्द्रके घर उस दिनकी रात ही नही कटती। विनोदिनीको तैयार रहनेका परामर्श देते-हुए महेन्द्रने उसी रातको एक पत्र लिखकर डाकमे डाल दिया था, जो दूसरे दिन सवेरे महेन्द्रके घर पहुँचा।

आशा उस समय पलगपर लेटी-हुई थी। नौकर चिट्ठी लेकर ऊपर पहुँचा, और बोला, "बहूजी चिट्ठी है।"

आशाके हृत्पिण्डके रक्तने धक-से उसके हृदयको धक्का मारा। पल-भरमे हजारों आश्वासन और आशङ्काएँ उसके मनमे एकसाथ जाग उठी। झटपट सिर उठाकर उसने चिट्ठी हाथमे ले ली। महेन्द्रके हाथकी लिखावट है, विनोदिनीका नाम लिखा है। उसी क्षण उसका सिर तकियेपर गिर पडा। कोई बात न कहकर उसने चिट्ठी नौकरको लौटा दी।

नौकरने पूछा, "चिट्ठी किनको देनी होगी, बहूजी ?"

आशाने कहा, "मुझे नही मालूम।"

रातके करीब आठ बजे होगे। महेन्द्र बड़ी तेजीसे आँधीकी तरह सीधा विनोदिनीके कमरेके सामने जा खडा हुआ। देखा, कमरेमें बत्ती नही जल रही, चारो तरफ अँधेरा है। जेबमेंसे दिआसलाई निकालकर जलाकर देखा, कमरा सूना है। विनोदिनी नही है ; और न घरमे उसका कोई सामान ही है। दक्षिणकी तरफके बरण्डेमे जाकर देखा, बरण्डा सूना है। फिर भी उसने पुकारा, "विनोद !" किन्तु कोई उत्तर नही मिला।

फिर वह अपने मनमे कहने लगा, 'निर्बोध हूँ मै, मूर्ख हूँ। उसे तो उसी समय मुझे अपने साथ ले जाना चाहिए था। जरूर माने उसे ऐसा डाटा-फटकारा होगा कि उसके लिए घरमे रहना असम्भव हो गया होगा।' और यह कल्पना मनमें आते ही उसपर उसे दृढ विश्वास भी हो गया।

उसी क्षण वह अधीर होकर माके पास पहुँचा। वहाँ भी बत्ती नही जल रही थी, किन्तु अँधेरेमे भी मालूम हुआ कि राजलक्ष्मी बिस्तरपर लेटी-हुई है। महेन्द्र तेजीसे उनके पास जाकर रुष्ट-कण्ठसे बोल उठा, "मा, तुमलोगोने विनोदिनीसे क्या कुछ कहा-सुना है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कुछ नही कहा।"

"तो फिर वो कहाँ गई?"

"मै क्या जानूं!"

महेन्द्र अविश्वासके स्वरमे बोल उठा, "तुम नही जानती! अच्छा, मैं उसकी खोजमे चल दिया। वह कही भी हो, मै उसका पता लगाकर ही रहूँगा।"

इतना कहकर महेन्द्र वहाँसे चल दिया।

राजलक्ष्मी झटपट बिस्तरसे उठकर उसके पीछे-पीछे दौड़ती-हुई कहने लगी, "महेन, मत जा, महेन! लौट आ, मेरी एक बात सुन जा।"

किन्तु महेन्द्र एक साँसमे दौडता-हुआ घरसे बाहर निकल गया।

क्षण-भर बाद ही फिर लौटकर उसने दरवानसे पूछा, "बडी-बहूजी कहाँ गई हैं, मालूम है?"

दरवानने कहा, "हमलोगोंसे तो वे कुछ कह नही गई, बाबू साहब, हमलोगोको कुछ नही मालूम।"

महेन्द्र जोरसे गरजकर बोला, "कुछ नही मालूम!"

दरवान हाथ जोडकर बोला, "नही, बाबू सा'ब, हमलोगोको कुछ नही मालूम।"

महेन्द्रने अपने मनमे सोचा, शायद सबको सिखा-पढा दिया है। उसने कहा, "अच्छा, कोई बात नही।"

महानगरीके राजपथमें उस समय गैसके प्रकाश-बाणसे विद्ध सन्ध्यान्धकारमें कुलफीवाले कुलफी-मलाई और मछलीवाले तपसी-मछलीकी फेरी लगा रहे थे। महेन्द्र घरसे निकलकर कलरव-क्षुब्ध जनतामें जा घुसा और अदृश्य हो गया।

३६

बिहारी कभी भी अँधेरी रातमें अकेला घरमें बैठा किसीका ध्यान नही करता। आज तक कभी भी उसने अपनेको अपना आलोच्य-विषय नही बनाया। वह हमेशा अपनी पढाई-लिखाई, काम-काज या बन्धु-बान्धवोमें व्यस्त रहता था। अपनी अपेक्षा अपने चारो तरफके ससारको प्राधान्य देनेमे ही उसे अधिक आनन्द आता है। किन्तु सहसा एक दिन प्रबल आघातसे उसके चारो तरफका सब-कुछ मानो विच्छिन्न-विक्षिप्त हो गया ; और तब, प्रलयके अन्धकारमे अभ्रभेदी वेदनाके गिरि-शृङ्गपर उसे अकेला ही खडा होना पड़ा। तभीसे वह अपने निर्जन सङ्गसे डरने लगा है। जबरदस्ती अपने सरपर काम लादकर उस सङ्गसे वह किसी भी तरह अवकाश नही लेना चाहता।

किन्तु आज बिहारी अपने उस अन्तरवासीको किसी भी तरहसे बाधा देकर अलग न रख सका। कल विनोदिनीको वह देश पहुँचा आया है, उसके बादसे वह जिस किसी काममे या जिस किसी आदमीके साथ रहा, बराबर उसका गुहा-शायी वेदनातुर हृदय उसे अपनी निगूढ निर्जनताकी ओर आकर्षित करता रहा।

श्रान्ति और अवसादने बिहारीको आज परास्त कर दिया। रातके करीब नौ बजे होगे। बिहारीके कमरेकी सामनेवाली दक्षिणकी छतपर दिनान्तमें रमनेवाली ग्रीष्मकी हवा अत्यन्त उतावली होकर घूम-फिर रही है। बिहारी चन्द्रोदय-हीन अन्धकारमे छतपर आराम-कुरसी डाले बैठा है।

आज शामको उसने बालक बसन्तको नही पढाया, उसे जल्दी छुट्टी दे दी। आज उसका हृदय मानो माके त्यागे-हुए बच्चेकी तरह सान्त्वनाके लिए, सङ्गके लिए, अपने चिराभ्यस्त प्रीति-सुधासे-स्निग्ध पूर्व-जीवनके लिए विश्व-जगत्के अन्धकारमे दोनो हाथ उठाकर न-जाने किसे ढूँढ रहा है! आज उसकी दृढता और कठोर सयमका बाँध टूटकर न-जाने कहाँ बह गया है! उसने जिनके विषयमे कुछ भी न सोचनेका प्रण किया था, आज उसका सम्पूर्ण हृदय उन्हीकी ओर दौड़ा जा रहा है, आज उसमें उसे रोकनेकी रत्ती-भर भी शक्ति नही।

महेन्द्रके साथ अपने बचपनके प्रेमसे लेकर उस प्रेमके अवसान तकके सम्पूर्ण चित्रको, जिसकी लम्बी कहानी नाना वर्णोंसे चित्रित और जल-स्थल पर्वत-नदियोसे विभक्त मानचित्रकी तरह उसके मनमें लिपटी-हुई थी, बिहारीने अपने सामने

खोलकर रख लिया और उसे गौरसे देखने लगा। देखने लगा, जिस क्षुद्र जगत्पर उसने अपने जीवनकी प्रतिष्ठा की थी वह किस जगह किस दुर्ग्रहके सघातसे विच्छिन्न हो गया! पहले उसमे बाहरसे कौन घुसा? सूर्यास्त-कालकी रक्तिम छटासे-आभासित आशाका लज्जा-मण्डित तरुण मुखडा उस अँधेरेमे उसके सामने अङ्कित हो उठा, और उसके साथ-साथ मङ्गल-उत्सवकी पुण्य-शङ्खध्वनि उसके कानोमें बजने लगी। यही शुभग्रह अदृष्टाकाशके अज्ञात प्रान्तसे आकर दोनो मित्रोके बीचमे खडा हो गया था, और थोडा-सा विच्छेद ले आया था। कहाँसे वह ऐसी गूढ वेदना ले आया जिसे मुँहसे कहा भी नही जा सकता? किन्तु फिर भी यह विच्छेद, यह वेदना अपूर्व स्नेहसे अनुरजित और माधुर्य-रश्मिसे आच्छन्न और परिपूर्ण होकर उसके हृदयमें बनी ही रही।

उसके बाद जिस शनि-ग्रहका उदय हुआ, उसने बन्धुओके प्रेमको, दम्पतिके प्रेमको, घरकी शान्ति और पवित्रताको एकदम नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। बिहारीने प्रबल घृणासे उस विनोदिनीको सम्पूर्ण अन्त करणसे बहुत दूर ढकेल-फेकनेकी चेष्टा की, किन्तु कैसा आश्चर्य है, आघात उसके लिए मानो अत्यन्त मृदु हो गया, उसे छू तक नही सका! वह परमा सुन्दरी प्रहेहिला अपनी दुर्भेद्य रहस्यपूर्ण घनकृष्ण अनिमेष दृष्टि लिये-हुए कृष्णपक्षके अन्धकारमें बिहारीके सामने स्थिर होकर खडी रही। ग्रीष्म-रात्रिकी उच्छ्वसित दखिनी हवा उसके घने निश्वासकी तरह उसके तन-मनमे घुस-घुसकर टकराने लगी। धीरे-धीरे उन पलक-हीन नेत्रोकी ज्वालामयी दीप्ति म्लान हो आई, देखते-देखते तृषासे शुष्क वह खर-दृष्टि आँसुओंसे सिक्त और स्निग्ध होकर गभीर भाव-रसमे परिलुप्त हो उठी, और पल-भरमें उस मूर्तिने बिहारीके पैरोके आगे पडकर उसके दोनो पैरोको प्राण-पण शक्तिसे अपनी छातीसे लगा लिया। और फिर उसने सुन्दर-सुहावनी माया-लताकी तरह बिहारीको वेष्टित करके प्रतिक्षण बढ-बढकर सद्य-विकसित सुगन्धमय पुष्पमजरीके समान अपना एक चुम्बनोन्मुख मुख बिहारीके ओठोके आगे बढा दिया। बिहारी आँख मीचकर उस कल्प-मूर्तिको अपने स्मृति-लोकसे निर्वासित कर देनेकी चेष्टा करने लगा, किन्तु किसी भी तरह उसपर आघात करनेके लिए मानो उसका हाथ ही नही उठा, एक असम्पूर्ण व्याकुल चुम्बन उसके मुँहके आगे आसन्न बना रहा, और अपने पुलकसे उसने उसे भावाविष्ट कर दिया।

बिहारीसे फिर छतके उस निर्जन-अन्धकारमे न रहा गया। और-किसी तरफ मन लगानेके लिए वह जल्दीसे अपने दीपालोकित कमरेमे लौट आया।

कोनेवाली तिपाईपर रेशमी वस्त्रके आवरणसे ढका एक मढा-हुआ फोटोग्राफ रखा था। बिहारी उस चित्रको उठाकर बीच कमरेमे बत्तीके पास जाकर बैठ गया, और फिर उसे अपनी गोदमे रखकर ध्यानसे देखने लगा।

ब्याहके बाद ली-हुई महेन्द्र और आशाकी युगल-मूर्तिका चित्र था वह। उसपर महेन्द्रके हाथसे 'महेन-भइया' और आशाके हाथसे 'आशा' लिखा-हुआ था। चित्रमे नव-परिणयका मधुर दिन ज्यो-का-त्यो बना-हुआ है। महेन्द्र कुरसीपर बैठा है, और उसके चेहरेपर नव-विवाहका सरस नवीन भावावेश स्पष्ट दिखाई दे रहा है। उसके पास ही आशा खडी है, फोटो उतारनेवालेने उसे घूंघट नही काढने दिया, किन्तु उसके चेहरेपरसे वह लज्जा नही हटा सका। आज महेन्द्र अपनी पार्श्वचरी आशाको रुलाकर कितना दूर चला जा रहा है ! किन्तु जड चित्रने महेन्द्रके चेहरेसे नवीन प्रेमकी एक रेखा तक नही बदलने दी, कुछ भी न समझते-हुए भी उसने मूढकी तरह मानो अदृष्टके परिहासको स्थायी कर रखा है।

उस चित्रको गोदमें लिये-हुए बिहारीने विनोदिनीको धिक्कार और तिरस्कारसे बहुत दूर निर्वासित करना चाहा ; किन्तु विनोदिनीके प्रेमसे-विह्वल और यौवनसे-कोमल दोनो हाथ बिहारीके पैर पकडे ही रहे। बिहारी मन-ही-मन बोला, 'ऐसा सुन्दर प्रेमका जीवन तूने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया !' किन्तु विनोदिनीका उस दिनका वह ऊर्ध्वोन्मुख व्याकुल चुम्बन-निवेदन मौन-भाषामे बार-बार उससे यही कहने लगा कि 'मै तुमसे प्रेम करती हूँ, सारे संसारमे एकमात्र तुम्हीको मैने वरण किया है।'

किन्तु, बिहारीकी बातका क्या यही जवाब है? बस इतनी-सी बात क्या एक बरबाद घरके निदारुण आर्त-नादको दबा देगी? बिहारीका अन्त करण बोल उठा, 'नही, पिशाची, नही।'

'पिशाची !'—बिहारीने यह क्या पूरे तिरस्कारके साथ कहा है, या इसके साथ कुछ प्रेमका स्वर भी आ मिला है? जिस समय बिहारी अपने सम्पूर्ण जीवनके सम्पूर्ण प्रेमके अधिकारसे वंचित होकर एकदम खाली-हाथ भिखारीकी तरह गली-गली भटक रहा हो उस समय क्या वह ऐसे अयाचित अपरिमित प्रेमके उपहारको सम्पूर्ण हृदयसे उपेक्षा करके ठुकरा सकता है? इसकी तुलनामें उसे मिला

क्या है ? इतने दिनोसे अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण करके प्रेम-भण्डारसे पर केवल किनकी-भुसीकी भिक्षा माँग रहा था। प्रेमकी अन्नपूर्णाने सोनेके थालमे रखकर आज एकमात्र उसीके लिए जो नैवेद्य-भोग भेजा है, अभागा बिहारी किस दुबिधामे पडकर उससे अपनेको वचित कर दे ?

तसवीरको गोदमे लिये-हुए ऐसी-ऐसी नाना बाते वह एकाग्र चित्तसे सोच रहा था, इतनेमे किसीके पैरोकी आहट सुनकर वह चौक पडा। आँख उठाकर देखता है तो, महेन्द्र खडा है। चौककर उठते ही उसकी गोदमेंसे तसवीर नीचे कारपेटपर गिर पडी, उसपर उसका ध्यान ही नही गया।

महेन्द्र एकदम पूछ उठा, "विनोदिनी कहाँ है ?"

बिहारीने आगे बढकर महेन्द्रका हाथ पकडते-हुए कहा, "जरा बैठो, भाई साहब ! मै सब बता दूंगा।"

महेन्द्रने कहा, "बैठकर बाते करनेका मेरे पास समय नही है। बताओ, विनोदिनी कहाँ है ?"

बिहारीने कहा, "तुम जो बात पूछ रहे हो उसका जवाब एक बातमें नही दिया जा सकता। तुम्हे जरा स्थिर होकर बैठना होगा।"

महेन्द्रने कहा, "उपदेश दोगे ? उपदेशकी बाते मैंने बचपनमे बहुत पढ ली है।"

बिहारीने कहा, "नही, उपदेश देनेका मुझे अधिकार भी नही और शक्ति भी नही।"

महेन्द्रने कहा, "तो क्या तिरस्कार करोगे ? मै जानता हूँ कि मै पाखण्डी हूँ, नराधम हूँ, और भी तुम जो-कुछ कहना चाहो, मै सब-कुछ हूँ। किन्तु तुम यह बताओ, तुम जानते हो या नही कि विनोदिनी कहाँ है ?"

"जानता हूँ।"

"मुझे नही बताओगे ?"

"नही।"

"तुम्हे बताना ही होगा। तुमने उसे चुराकर छिपा रक्खा है। वह मेरी है, उसे लौटा दो मुझे।"

बिहारी क्षण-भर स्तब्ध रहा, फिर दृढस्वरसे बोला, "वह तुम्हारी नही है। मै उसे चुराकर नही लाया, वह खुद मेरे पास आकर पकडाई दी है।"

महेन्द्र गरज उठा, "झूठी बात है।" और फिर बगलके बन्द कमरेके दरवाजेपर जोर-जोरसे मुक्का मारता-हुआ चिल्लान लगा, "विनोद! विनोद!"

भीतरसे रोनेकी आवाज सुनकर वह बोल उठा, "डरो मत, विनोद! मैं महेन्द्र हूँ, मै तुम्हे उद्धार करके ले जाऊँगा,—कोई तुम्हे बन्द करके नही रख सकता।"

इतना कहकर महेन्द्रने ज्योही जोरसे एक धक्का मारा, दरवाजा खुल गया। महेन्द्र बडी तेजीसे भीतर घुसा, देखा कि बिलकुल अँधेरा है। अस्फुट छायाकी तरह उसे ऐसा दिखाई दिया कि बिस्तरपर मानो कोई डरके मारे सिकुडकर सिसकता-हुआ तकियेसे चिपट गया है।

बिहारीने जल्दीसे उस कमरेमे जाकर बसन्तको गोदमे उठा लिया, और सान्त्वनाके स्वरमे कहने लगा, "कोई डर नही, बसन्त, कोई डर नही, तुम डरो मत।"

महेन्द्र बडी तेजीसे बाहर निकल आया, और फिर ऊपर-नीचे इधर-उधर चारो तरफ विनोदिनीको ढूँढते-ढूँढते परेशान हो गया। जब वह लौटकर बिहारीके पास आया तब भी बसन्त भयके आवेगसे रह-रहकर रो रहा था, और बिहारी उसके कमरेमें बत्ती जलाकर, उसे बिछौनेपर लिटाकर, देहपर हाथ फेरकर उसे सुलानेकी कोशिश कर रहा था।

महेन्द्रने कहा, "विनोदिनीको कहाँ छिपा रक्खा है?"

बिहारीने कहा, "भाई साहब, इस तरह शोर मत मचाओ तुम। तुमने बेमतलब इस बच्चेको इतना डरा दिया है कि यह बीमार पड सकता है। मै कहता हूँ, विनोदिनीकी खबरसे तुम्हें कोई मतलब नही।"

महेन्द्र बोल उठा, "साधु, महात्मा! अब तुम मेरे सामने धर्मका आदर्श मत खडा करो। मेरी स्त्रीकी इस तसवीरको गोदमें रखकर आधी रातको तुम किस देवताके ध्यानमे कौन-सा पुण्य-मन्त्र जप रहे थे? पाखण्डी!"

इतना कहकर उसने हाथकी तसवीर उठाकर जमीनसे दे मारी, और उसे जूते-शुदा पैरोंसे कुचलकर उसका काँच चूर-चूर कर दिया; और फ्रेममेंसे फोटो निकालकर, उसके टुकडे-टुकडे करके, बिहारीके मुँहपर फेक दिया।

महेन्द्रकी उन्मत्त दशा देखकर बसन्त फिर डरकर रोने लगा। बिहारीका कण्ठ रुक आया, उसने दरवाजेकी तरफ हाथका इशारा करके कहा, "जाओ!"

महेन्द्र आँधीकी तरह प्रबल वेगसे बाहर चला गया।

३७

विनोदिनी जब यात्री-शून्य जनाने-डब्बेमे बैठी-बैठी खिडकीमेसे जुते-हुए खेत और बीच-बीचमे छाया-वेष्टित एक-एक गाँव देखने लगी तब उसके मनमे स्निग्ध-निभृत ग्राम्य-जीवनका चित्र जाग उठा। सोचने लगी, अब वह गाँवके तरु-छाया-वेष्टित स्वरचित कल्पना-नीडमे, नगर-वासके सारे दु ख-दाह और क्षत-वेदनासे छुटकारा पाकर, अपनी प्रिय पुस्तकोके साथ शान्तिसे रहेगी। और फिर ग्रीष्मऋतुके शस्य-शून्य दिगन्त-प्रसारित धूसर खेतोके पीछे सूर्यास्तका दृश्य देखकर सोचने लगी, 'अब मुझे किसीकी भी जरूरत नही।' उसका मन मानो सूर्यास्त-कालकी सुवर्ण-रजित स्तब्ध-विस्तीर्ण शान्तिमे सब-कुछ भूलकर आँखें मीच लेना चाहता है और तरङ्गोसे विक्षुब्ध सुख-दु ख-सागरसे अपनी जीवन-तरीको किनारे लगाकर नि शब्द सन्ध्यामें किसी निष्कम्प वटवृक्षके नीचे बाँध रखना चाहता है। और-किसी चीजकी उसे जरूरत ही नही।

चलती गाडीमे किसी-किसी जगह आम्र-कुजसे आम्र-मंजरियोकी सुगन्ध आती और वह अपनी स्निग्ध शान्तिसे विनोदिनीका मन भर जाती, उसे विह्वल कर देती। मन-ही-मन वह कहने लगती, 'अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ, अपनेको लेकर अब मै खीचातानी नही कर सकती ; अब मै सब भूल जाऊँगी, और सोऊँगी निश्चिन्त होकर। गँवई-गाँवकी लडकी हूँ मै, घरका और गाँवका काम-काज करके सन्तोषके साथ आरामसे अपना जीवन बिता दूँगी।'

इस तरह अपने तृषित हृदयमे शान्तिकी आशा लिये-हुए विनोदिनीने गाँवमें जाकर अपनी कुटियामे प्रवेश किया। किन्तु हाय, शान्ति है कहाँ! यहाँ तो केवल शून्यता है, दरिद्रता है। चारो तरफ जो-कुछ भी है, सब जीर्ण है, मलिन है, अनादृत है, श्रीहीन है। बहुत दिनोसे बन्द सीड-शुदा घरकी भभकसे मानो उसका दम घुटने लगा। घरमे थोडी-बहुत जो चीज-बस्त थी वह भी कीटोके दशनसे, चूहोके उत्पातसे और धूल-मिट्टीके आक्रमणसे बरबाद हो गई थी।

विनोदिनी जब घर पहुँची तब शाम हो रही थी, घर निरानन्द और अन्धकारमय हो रहा था। किसी तरह उसने बत्ती बटकर और तेल डालकर मिट्टीका दिया जलाया तो उसके धुँए और क्षीण प्रकाशसे घरकी दीनता और भी ज्यादा परिस्फुट

हो उठी। पहले जो अवस्था उसे पीडा नही देती थी, आज वह उसे असह्य मालूम होने लगी ; और उसका सम्पूर्ण अन्त करण विद्रोही होकर जोरसे बोल उठा, 'यहाँ नो एक घडी भी नही कट सकती।' आलेमे पहलेकी दो-चार धूलसे-भरी पुस्तकें और मासिकपत्रिकाएँ पडी थी, किन्तु उन्हें छूने तककी उसकी इच्छा नही हुई। बाहर अन्धकारमय वायुहीन आमके बागमे झीगुरोकी झनकार और मच्छडोकी भनभनाहट सुनाई दे रही थी।

विनोदिनीकी जो वृद्धा अभिभाविका थी वे घरमे ताला बन्द करके अपनी लडकीको देखने उसकी ससुराल दूर-गाँव चली गई थी। विनोदिनी पडोसिनके घर गई। वे उसे देखकर मानो चौक पडी। परस्पर एक दूसरेसे कानाफूसी करने लगी, 'देखा, विनोदका रूप-रग कैसा निखर गया है! कपडे-लत्ते कैसे चुस्त-दुरुस्त रखने लगी है, जैसे मेम-साहब हो!' और न-जाने क्या-क्या इशारे करके कभी विनोदिनीकी तरफ और कभी आपसमे एक-दूसरेके मुँहकी तरफ देखने लगी। मानो जो बात इधर कुछ दिनोसे फैली-हुई थी, उन्हे उसके अब लक्षण मिल रहे हो।

विनोदिनी पद-पदपर अनुभव करने लगी कि वह सब तरहसे अपने गाँवसे बहुत दूर चली गई है। अपने ही घरमे अब वह निर्वासित-सी हो गई है। ससारमे कही भी उसके लिए कोई जगह नही रह गई है जहाँ वह क्षण-भर भी आरामसे रह सके।

डाकघरका एक बूढा डाकिया विनोदिनीका बचपनका परिचित था। दूसरे दिन विनोदिनी जब तालाबमे नहाने जा रही थी तब रास्तेमे चिट्ठियोका बैग लिये-हुए डाकिया मिल गया। उसे देखकर विनोदिनीसे रहा न गया, वह जल्दीसे उसके पास जाकर पूछने लगी, "पचू-दादा, मेरी कोई चिट्ठी है क्या ?"

बूढेने कहा, "नही तो।"

विनोदिनी व्यग्र होकर बोली, "हो भी सकती है। दिखाना जरा।"

कहते-हुए उसने जल्दी-जल्दी बहुत-सी चिट्ठियाँ उलट डाली, किन्तु उसकी कोई नही निकली। उदास मुँह लिये-हुए वह नहाने चली गई। तालाबके घाटपर पहुँचते ही उसकी एक सखीने सकौतुक कटाक्षके साथ कहा, "क्यो री बिन्नो, चिट्ठीके लिए तू इतनी फडफडा क्यो रही थी ?"

एक दूसरी प्रगल्भाने कहा, "वाह री वाह, तू भी खूब है! डाकसे चिट्ठी

आवे, ऐसे भाग्य भी तो होने चाहिए! हमारे तो पति, देवर, भाई सब परदेसमें काम करते हैं,—पर डाकियाकी कभी हमपर दया ही नही होती!"

इस तरह बात-बातमे परिहास स्पष्ट और कटाक्ष तीव्र होने लगा।

विनोदिनी बिहारीसे अनुनय कर आई थी कि वह रोज़ नही तो कमसे कम हफ्तेमे दो बार, ज्यादा नही-तो दो-चार लाइनकी चिट्ठी उसे जरूर डाल दिया करे। किन्तु आज ही चिट्ठी पानेकी सम्भावना अत्यन्त कम थी, फिर भी विनोदिनीकी आकाक्षा इतनी प्रबल हो उठी कि दूर-सम्भावनाकी आशा भी वह न छोड सकी। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि मानो कलकत्ता छोडे उसे बहुत दिन हो गये।

शत्रु और मित्रोकी कृपासे विनोदिनीसे यह छिपा न रहा कि महेन्द्रके साथ उसके अनुचित सम्बन्धकी निन्दा गाँवमे घर-घर फैल गई है। उसके लिए यहाँ शान्ति कहाँ है?

विनोदिनी गाँववालोसे अपनेको निर्लिप्त रखनेकी कोशिश करने लगी। इससे गाँववाले उसपर और भी ज्यादा नाराज हो गये। उनके लिए यह वाञ्छनीय नही कि पातकिनी उनसे अलग रहकर उन्हे घृणा और निन्दा करनेके विलास-सुखसे भी वञ्चित रखे।

छोटे-से गाँवमे अपनेको सबकी दृष्टिसे छिपा रखनेकी चेष्टा वृथा है। यहाँ आहत हृदयको लेकर किसी कोनेमे जाकर एकान्त-अन्धकारमे उसकी सेवा करनेका अवकाश नही,—इधर-उधरसे सबकी तीक्ष्ण कुतूहल-दृष्टि आकर क्षत-स्थानपर पडती ही है। विनोदिनीकी अन्त प्रकृति टोकनीके भीतरकी सजीव मछलीकी तरह जितनी ही छटपटाने लगी उतनी ही चारो तरफकी सङ्कीर्णतासे टकराकर अपनेको वह बार-बार आहत करने लगी। वह समझ गई कि यहाँ स्वतन्त्रतासे पूरी तरह वेदना सहनेका भी स्थान नही।

दूसरे दिन चिट्ठी पानेका समय उत्तीर्ण होते ही विनोदिनी घरका दरवाजा बन्द करके चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखा —

"लालाजी, डरनेकी कोई बात नही है, मै तुम्हें प्रेमकी चिट्ठी लिखने नही बैठी। तुम मेरे विचारक हो, मै तुम्हे प्रणाम करती हूँ। मैंने जो पाप किया है, तुमने उसका कठिन दण्ड दिया है। तुम्हारा आदेश पाते ही मैंने

उसे शिरोधार्य कर लिया है। दु ख सिर्फ इतना ही है कि दण्ड कितना कठोर है सो तुम देख न सके। अगर तुम देखते या जान पाते, तो तुम्हारे मनमें दया आ जाती। किन्तु मैं उससे भी वञ्चित रह गई। तुम्हारा स्मरण करके और मन-ही-मन तुम्हारे चरणोके पास सिर रखके मैं इसे भी सह लूँगी। किन्तु प्रभु, जेलखानेके कैदीको क्या खाने-पीनेको भी नही मिलता? शौककी खुराक नही, जीनेके लिए जितनेकी जरूरत होती है उतनी खुराक तो उसे मिलती ही है। तुम्हारी दो-चार पक्तिकी चिट्ठी मेरे इस निर्वासनकी खुराक है,—वह भी अगर न मिले, तब तो यह मेरा केवल निर्वासन-दण्ड ही नही, प्राणदण्ड है। मेरी इतनी ज्यादा परीक्षा मत करो, मेरे दण्डदाता! मेरे इस पापी मनके अहङ्कारकी सीमा नही थी,—मैंने कभी यह स्वप्नमें भी नही सोचा था कि किसीके भी आगे मुझे इस तरह सिर झुकाना पड़ेगा। तुम्हारी जय हुई है, प्रभु, मैं विद्रोह नही करूँगी। किन्तु तुम मुझपर दया करो, मुझे जीने दो। इस वनवासमे जीनेके लिए थोडी-बहुत पूँजी तो मुझे भेज दिया करो। फिर तुम्हारे शासनसे मुझे कोई भी किसी भी तरह टला नही सकता। बस, इतनी-सी दु खकी बात तुम्हे जता दी है। और जो-जो बाते मनमे जमा हो रही हैं उन्हे कहनेके लिए छाती फटी जा रही है,—किन्तु उन्हे न कहनेके लिए मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, और उस प्रतिज्ञाकी मैं रक्षा कर रही हूँ।

तुम्हारी—विनोदा-भाभी।"

विनोदिनी चिट्ठी डाकखानेमें छोड आई। गाँवके लोग 'छी छी' करने लगे। कहने लगे, 'अब तो घरका दरवाजा बन्द किये रहती है, चिट्ठी लिखा करती है, चिट्ठी पानेके लिए डाकियापर टूट पडती है! दो दिन कलकत्ते क्या रह आई, लज्जा-धर्म सब-कुछ खो आई!'

इसके दूसरे दिन भी कोई चिट्ठी नही आई। विनोदिनी दिन-भर चुपचाप बैठी रही, उसका चेहरा कठोर हो उठा। भीतर-बाहर चारो तरफके आघात और अपमानके मन्थनसे उसके हृदयके अन्धकार-समुद्रके नीचेसे निष्ठुर सहारक शक्ति कठोर मूर्ति धारण करके बाहर निकलनेको उद्यत हो गई। उस निदारुण निष्ठुरताके आविर्भावका अनुभव करके विनोदिनीने मारे डरके घरका दरवाजा ही बन्द कर लिया।

उसके पास बिहारीकी कोई भी निशानी नही थी,–न तसवीर थी और न चिट्ठी, कुछ भी नही था। फिर भी उस शून्यतामे मानो वह कुछ ढूँढने लगी। बिहारीके किसी-एक चिह्नको छातीसे लगाकर वह अपनी सूखी-आँखोमें पानी लाना चाहती है। और उस अश्रु-जलसे हृदयकी सम्पूर्ण कठिनताको गलाकर विद्रोह-वह्निको बुझाकर बिहारीके कठोर आदेशको वह अपने हृदयके कोमलतम सिहासनपर बिठाये रखना चाहती है। किन्तु अनावृष्टिके मध्याह्न-आकाशकी तरह उसका हृदय केवल जलने ही लगा, दिग-दिगन्तमे कही भी उसे एक बूँद आँसूके लक्षण नही दिखाई दिये।

विनोदिनीने सुना था कि एकाग्र मनसे ध्यान करते-हुए जिसे पुकारा जाता है वह बिना आये रह नही सकता। इसलिए वह हाथ जोडकर और आँखे मीचकर-बिहारीको पुकारने लगी, 'मेरा जीवन शून्य है, मेरा हृदय शून्य है, मेरे चारों तरफ सब-कुछ शून्य है,–इस शून्यतामे एक बार तुम आ जाओ, एक क्षणके लिए आओ, तुम्हें आना ही होगा. मै किसी भी तरह तुम्हे नही छोड सकती।'

यह बात प्राण-मनसे कहते-कहते विनोदिनीको मानो वास्तवमे बल मिल गया। उसे ऐसा लगा कि मानो यह प्रेमका बल, आह्वानका बल, व्यर्थ नही जायगा। केवल स्मरण करके दुराशाकी जडमे हृदयका रक्त सीचनेसे हृदय केवल अवसन्न हो जाता है। किन्तु इस तरह एकाग्र मनसे ध्यान करके सम्पूर्ण शक्तिसे कामना करते रहनेसे अपने विषयमे मानो समर्थताका अनुभव होने लगता है, और प्रबल इच्छासे जगत्के और सब-कुछको छोडकर केवल वाञ्छितको आकर्षित करते रहनेसे प्रतिक्षण क्रमश धीरे-धीरे वह निकटवर्ती ही होता रहता है।

बिहारीके ध्यानमे जब सन्ध्याके दीप-शून्य अन्धकारसे घर निविड-रूपसे परिपूर्ण हो उठा और जब समाज-ससार, गाॅव-शहर, समस्त त्रिभुवन प्रलयमे विलीन हो गया, तब विनोदिनी सहसा बाहरसे किसीके दरवाजा खटखटानेकी आवाज सुनकर बडी फुरतीमे उठ खडी हुई, और सशय-हीन विश्वासके साथ दौडकर दरवाजा खोलकर बोली, "आ गये, प्रभु!"

उसे दृढ विश्वास हो गया था कि इन क्षणोमे इस ससारका और कोई भी उसके द्वारपर नही आ सकता।

महेन्द्रने कहा, "आ गया, विनोद!"

विनोदिनी असीम विराग और प्रचण्ड धिक्कारके साथ बोल उठी, "जाओ, जाओ तुम यहाँसे। अभी तुरत चले जाओ!"

महेन्द्र अकस्मात् स्तम्भित-सा रह गया।

इतनेमे "क्यो रीं बिन्नो, तेरी ददिया-सास अमर कल—" कहती-हुई कोई प्रौढा पडोसिन दरवाजेके पास आ गई, और महेन्द्रको देखते ही "ओ मेरी मैया" कहकर लम्बा घूंघट खीचकर तुरत वहाँसे भाग गई।

३८

गाँव-भरमें बडा-भारी एक तहलका-सा मच गया। गाँवके बडे-बूढे लोग चौपालमें पचायत करने बैठ गये, 'यह हरगिज नही सहा जा सकता। कलकत्तेमे क्या हुआ, क्या नही हुआ, सो सुना अनसुना किया जा सकता था, किन्तु गाँवमें रहकर इतनी हिम्मत कि चिट्ठीपर चिट्ठी लिखकर महेन्द्रको गाँवमे बुलाकर इस तरह खुल्लम-खुल्ला बेहयाई! इस भ्रष्टाको अब गाँवमे हरगिज नही रक्खा जा सकता।'

विनोदिनीको निश्चित आशा थी कि आज बिहारीका पत्रोत्तर उसे जरूर मिल जायगा। किन्तु नही आया। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'मुझपर बिहारीका क्या अधिकार है? मैने क्यो उसका आदेश पालन किया? मैंने क्यो उसे यह जानने दिया कि वह मेरे लिए जैसा विधान देगा, मैं उसीको शिरोधार्य करूँगी? उसे तो अपनी प्यारी आशाको बचानेके लिए जितनेकी जरूरत है, मेरे साथ उसका सिर्फ उतना ही सम्बन्ध है। मेरी अपनी कोई माँग नही, मेरा अपना कुछ प्राप्य नही, मामूली-सी दो-चार पक्तिकी चिट्ठी भी नही! मैं इतनी तुच्छ हूँ, इतनी घृणाकी वस्तु हूँ!' और फिर ईर्षाके विषसे विनोदिनीका सम्पूर्ण हृदय भर उठा, और मन-ही-मन वह कहने लगी, 'और किसीके भी लिए इतना दु.ख सहा जा सकता है, किन्तु आशाके लिए हरगिज नही। यह दीनता, यह वनवास, यह लोक-निन्दा, ऐसी अवज्ञा, जीवनकी ऐसी सर्वप्रकारकी अपरितृप्ति केवल आशाके लिए मुझे वहन करनी होगी, इतना धोखा मैंने क्यो उठाया? क्यो मैं अपने सर्वनाशका व्रत वहाँकी वही सम्पूर्ण नही कर आई? मूर्ख हूँ मैं, निर्बोध हूँ मै। मैंने क्यों बिहारीसे प्रेम किया?'

विनोदिनी जब कठपुतलीकी तरह कठिन होकर अपने घरमे बैठी थी, ठीक उसी समय उसकी ददिया-सास अपने दामादके यहाँसे घर लौटी।

उन्होने घरमे कदम रखते ही विनोदिनीसे कहा, "कलमुँही, गाँव-भरमे यह सब क्या सुन रही हूँ?"

विनोदिनीने कहा, "सब ठीक ही सुन रही हो।"

ददिया-सास बोली, "तो इस कलङ्कको गाँवमे लानेकी क्या जरूरत थी? यहाँ तू क्यो आई?"

अवरुद्ध क्षोभसे विनोदिनी चुप बैठी रही।

ददिया-सासने कहा, "अब तेरा यहाँ रहना नही हो सकता, मै कहे देती हूँ! जले-भाग्यसे मेरे सब मर गये, उसका दु ख मैने सह लिया,—पर अब यह-सब मुझसे नही सहा जायगा। छी-छी-छी, तैने गाँवमे मुझे मुँह-दिखाने-लायक नही छोडा। तू इसी वक्त यहाँसे काला-मुँह कर जा।"

विनोदिनीने कहा, "मै इसी वक्त चली जाऊँगी।"

इतनेमे महेन्द्र बिना-नहाये बिना-खाये रूखे बाल और रूखा चेहरा लिये सहसा वहाँ आ पहुँचा। रात-भरकी अनिद्रासे उसकी आँखे लाल-सुर्ख हो रही थी, चेहरा सूखा-हुआ था। उसका सङ्कल्प था कि अँधेरा-रहते खूब भोरमे आकर वह विनोदिनीको ले चलनेके लिए दूसरी बार कोशिश करेगा। किन्तु विनोदिनीके कलके घृणा-पूर्ण प्रहारसे उसके मनमे तरह-तरहकी दुबिधा होने लगी। और, क्रमश' जब दिन चढ गया और रेलका समय होने लगा तब स्टेशनकी यात्री-शालासे निकलकर मनसे सब तरहकी दुबिधा जबरदस्ती दूर करके वह घोड़ा-गाडीमे बैठकर एकदम विनोदिनीके घरके दरवाजेपर आ खडा हुआ। लज्जा-शरम छोड़कर प्रकट-रूपसे दु साहसका काम करनेमे जो एक तरहकी स्पर्धा-पूर्ण शक्ति आ जाती है, उस शक्तिके आवेगमें उसे एक तरहके उद्‌भ्रान्त आनन्दका अनुभव होने लगा, और उसकी सम्पूर्ण श्रान्ति और दुबिधा चूर-चूर हो गई। गाँवके कुतूहली लोग महेन्द्रकी उन्मत्त दृष्टिमें धूल-मिट्टीके निर्जीव खिलौने-से मालूम होने लगे।

महेन्द्रने किसी तरफ देखा तक नही, वह एकदम सीधा विनोदिनीके पास जाकर बोला, "विनोद, तुम मुझे ऐसा कायर न समझ लेना कि मै तुम्हे यहाँ लोक-निन्दाके भाडमे छोडकर चला जाऊँगा। जैसे भी हो, तुम्हे यहाँसे ले जाना

ही होगा। उसके बाद तुम मुझे त्यागना चाहो तो त्याग देना, मैं तुम्हे जरा भी बाधा न दूँगा। मैं आज तुम्हें छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम जब जैसा चाहोगी, मैं वैसा ही करूँगा। तुम दया करोगी तो मैं जीवित रहूँगा, नही करोगी तो मैं तुम्हारे रास्तेसे दूर हट जाऊँगा। मैंने संसारमे अनेक अविश्वासके काम किये है, किन्तु आज तुम मुझपर अविश्वास मत करो, विनोद! हम दोनो आज प्रलयके सामने खडे है, यह छलना करनेका समय नही है।"

विनोदिनीने अत्यन्त स्वाभाविक भावसे अविचल स्वरमे कहा, "मुझे तुम अपने साथ ले चलो। तुम्हारे साथ गाडी है?"

महेन्द्रने कहा, "हॉ, है।"

इतनेमे विनोदिनीकी ददिया-सास बाहर निकल आई, और बोली, "महेन्द्र, तुम मुझे नही पहचानते, पर तुम हमारे गैर नही हो। तुम्हारी मा राजलक्ष्मी इसी गाँवकी लडकी है, गाँवके नातेसे मै उसकी मामी लगती हूँ। भला, मैं पूछती हूँ, ये-सब तुम्हारे क्या ढग है? घरमे तुम्हारे बहू है, मा है, और तुम ऐसे बेहया हो गये हो कि मतवालेकी तरह पराई बहू-बेटियोके पीछे-पीछे फिर रहे हो! अरे जरा सोचो तो सही, समाजके चार भले-आदमी सुनेंगे तो क्या कहेगे, कैसे तुम उनके आगे अपना मुँह दिखाओगे!"

महेन्द्र जिस भावोन्मादके राज्यमे था, इस ताडनासे वहॉ जोरका एक धक्का लगा। घरमे उसके मा है, स्त्री है, और फिर चार भले-आदमियोका समाज भी है। यह साधारण-सी बात मानो उसके मनमे नये रूपमे उदित हुई।

इस अज्ञात सुदूर गाँवमे एक अपरिचित घरके द्वारपर महेन्द्रको ऐसी बात सुननी पडेगी, इसकी उसने पहले कभी स्वप्नमे भी कल्पना नही की थी। महेन्द्रके जीवन-चरितमे ऐसा भी एक अद्भुत अध्याय लिखा गया कि जिसमे वह दिन-दहाड़े गॉवमे आकर किसी भद्र-घरकी विधवा बहूको घरसे निकाले लिये जा रहा है! फिर भी उसके मा है, स्त्री है, और चार भले-आदमियोका समाज भी है।

महेन्द्र जब निरुत्तर होकर खडा रहा तब वृद्धा फिर बोली, "जाना हो तो अभी जाओ, दूर हो यहाँसे। हमारे घरके दरवाजेपर मत खडे रहो,—बस चले जाओ यहाँसे, जल्दी जाओ!" इतना कहकर वृद्धा घरके भीतर चली गई; और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

विनोदिनी बिना-नहाये बिना-खाये मैले कपडे पहने रीते-हाथ गाडीमें बैठ गई। महेन्द्र जब गाडीमे चढने लगा तो उसने कहा, "नही, तुम पैदल आओ, स्टेशन दूर नही है।"

महेन्द्रने कहा, "गाँवके सब लोग देखेंगे जो मुझे!"

विनोदिनीने कहा, "अब भी तुम्हारे अन्दर लज्जा बाकी है?" कहते-हुए उसने गाडीका दरवाजा बन्द कर लिया। और कोचवानसे कहा, "स्टेशन चलो।"

कोचवानने पूछा, "बाबू नही चलेगे?"

महेन्द्र बगलें झाँकने लगा, उसकी हिम्मत ही नही हुई कुछ कहनेकी।

गाडी चली गई।

महेन्द्र सिर नीचा किये-हुए गाँवका रास्ता छोड़कर खेतोमें होकर घूमता-हुआ स्टेशनकी तरफ चल दिया।

उस समय ग्राम्य-वधुओका स्नानाहार हो चुका था। केवल घरकी कर्मनिष्ठा बडी-बूढी स्त्रियाँ, जिन्हे काम-काजसे देरसे छुट्टी मिली थी, अपने-अपने पहननेके कपडे लिये-हुए आम्र-मुकुलकी सुगन्धसे आमोदित और छायासे स्निग्ध पुष्करिणीके एकान्त और निर्जन घाटकी ओर जा रही थी।

३६

महेन्द्र कहाँ चला गया, इस आशङ्कामें राजलक्ष्मीका खाना-पीना-सोना सब-कुछ छूट गया। साधुचरण सम्भव-असम्भव सभी जगह उसे ढूँढते फिर रहे है, कही कुछ पता नही लग रहा है। इतनेमें महेन्द्र विनोदिनीको साथ लेकर कलकत्ता आ गया। और, पटलडाँगामें एक किरायेके मकानमें विनोदिनीको रखकर वह अपने घर पहुँचा।

माके कमरेमें जाकर उसने देखा, कमरेमें अँधेरा है, लैम्पकी बत्ती बिलकुल नीची करके उसके आगे गत्तेसे आड कर दी गई है। राजलक्ष्मी रोगीकी तरह बिस्तरपर पडी है, और आशा उनके तलवोपर धीरे-धीरे हाथ फेर रही है। इतने दिन बाद बहूको सासके चरणोपर अधिकार मिला है।

महेन्द्रके आते ही आशा चौंककर उठ खडी हुई, और तुरत बाहर चली गई।

महेन्द्रने जबरदस्ती अपनी सब दुबिधाओको दूर करते-हुए कहा, "मा, यहाँ

मेरी पढाई ठीकसे नही होती,—मैने कालेजके पास एक कमरा ले लिया है, अब मैं वही रहा करूँगा।"

राजलक्ष्मीने अपने बिस्तरके एक किनारेकी ओर उँगलीसे इशारा करते-हुए कहा, "तू बैठ तो सही जरा।" महेन्द्र सङ्कोचके साथ बिस्तरपर बैठ गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "बेटा, तेरी जहाँ तबीयत आये, तू वही रह, पर तू मेरी बहू-रानीको मत सता।" महेन्द्र चुप बैठा रहा।

राजलक्ष्मी कहती गईं, "मेरी तकदीर ही फूटी है,—इसीसे मैं ऐसी लक्ष्मी बहूको नही पहचान सकी।" कहते-कहते उनका गला रुक आया, बोली, "पर तैंने उसे इतने दिन जानकर, इतना लाड-प्यार करके, अन्तमे इतने दु:खमे कैसे डाल दिया?" कहते-कहते उनसे रहा नही गया, वे रोने लगी।

महेन्द्र वहाँसे भाग सके तो जी जाय, किन्तु भाग न सका। माके बिस्तरपर एक किनारे अँधेरेमे चुपचाप बैठा रहा।

बहुत देर बाद राजलक्ष्मीने कहा, "आज रातको तू यही रहेगा-न?"

महेन्द्रने कहा, "नही।"

राजलक्ष्मीने पूछा, "कब जायगा?"

महेन्द्रने कहा, "अभी।"

राजलक्ष्मी बडी मुश्किलसे उठके बैठ गईं। बोली, "अभी! एक बार बहूसे अच्छी तरह मिलके भी नही जायगा?"

महेन्द्रने कुछ जवाब नही दिया।

राजलक्ष्मीने कहा, "बहूके ये कई दिन कैसे कटे हैं, सो क्या तू जरा भी नहीं समझ सकता! अरे ओ निर्लज्ज, तेरी निठुराईसे मेरी छाती फटी जा रही है।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी कटी-हुई डालीकी तरह बिस्तरपर गिर पड़ी।

महेन्द्र माके बिस्तरसे उठकर बाहर चला गया। और फिर बहुत धीरे-धीरे दबे-पाँव जीनेसे चढता-हुआ ऊपर अपने कमरेमे पहुँचा। वह नही चाहता कि आशासे उसकी भेंट हो।

महेन्द्रने ऊपर जाते ही देखा, उसके कमरेके सामने जो पटी-हुई छत है, आशा वहीं जमीनपर पड़ी है। उसे महेन्द्रके आनेकी आहट नही मालूम हुई थी। अब सहसा पतिको अपने सामने खड़ा देख वह जल्दीसे अपने कपड़े सम्हालती-हुई उठके

बैठ गई। इस समय महेन्द्र यदि एक बार 'चुन्नी' कहकर पुकारता, तो उसी क्षण वह महेन्द्रके समस्त अपराध स्वय शिरोधार्य करके क्षमाप्राप्त अपराधिनीकी तरह महेन्द्रके पाँवोसे लिपटकर अपने जीवनका समस्त रोना रो लेती। किन्तु महेन्द्र उस प्रिय-नामसे न पुकार सका। उसने जितनी ही कोशिश की, इच्छा की, उतनी ही उसे वेदना होने लगी। इस बातको वह भूल न सका कि आज आशासे प्यारकी बातें करना सार-हीन परिहास-मात्र है। उसे मुँहसे सान्त्वना देकर क्या होगा, जब कि विनोदिनीको त्यागनेका रास्ता उसने अपने हाथसे एकदम बन्द कर दिया है ?

आशा मारे सङ्कोचके गडी-हुई बैठी रही। उठके खडे होने, चले जाने या और-किसी प्रकारकी गतिकी कोशिश तक करनेमें उसे लज्जा मालूम होने लगी।

महेन्द्र कोई बात न करके छतपर चहलकदमी करने लगा। कृष्णपक्षके आकाशमे अभी तक चॉद नही दिखाई दिया था। छतके एक कोनेमे छोटे-से गमलेमें रजनीगन्धाके दो फूल खिल रहे थे। छतके ऊपरके अन्धकारमय आकाशमें जो नक्षत्र चमक रहे हैं, सप्तर्षि और कालपुरुष, उनमेंसे बहुत-से अनेक रात्रियोके अनेक निभृत प्रेमाभिनयके नीरव साक्षी रहे है, और आज भी वे निस्तब्ध रहकर देखते रहे।

महेन्द्र सोचने लगा, 'काश, इधर बीचके कुछ दिनोकी उथल-पुथलको इस आकाश-भरे अँधेरेसे पोछकर अगर पहलेकी तरह फिर इस खुली छतपर चटाई बिछाकर आशाके पास उसी तरह सहज-स्वाभाविक-भावसे बैठ सकता! काश, कोई सवाल न होता, कोई जवाब न होता,—पहलेका-सा वही विश्वास, वही प्रेम और वही सहज आनन्द होता!' किन्तु हाय, इतने बडे ससारमें ठीक उसी जगह लौटनेका अब रास्ता ही नही रहा। इस छतपर आशाके पास चटाईके एक किनारे बैठनेका अधिकार भी वह खो चुका है।

अब तक विनोदिनीके साथ महेन्द्रका बहुत-कुछ स्वाधीन सम्बन्ध था। उसमें प्रेम करनेका उन्मत्त सुख तो था, किन्तु वह अविच्छेद्य बन्धन नही था। और अब महेन्द्र विनोदिनीको अपने हाथसे समाज-वृक्षसे तोड़ लाया है,—अब विनोदिनीको कही भी रखनेकी, कहीं भी लौटानेकी जगह नही,—अब तो महेन्द्र ही उसका एकमात्र सहारा है। अब तो इच्छा हो या न हो, विनोदिनीका सारा भार उसे ढोना ही पडेगा।

ये-सब बातें सोच-सोचकर महेन्द्रका हृदय भीतर-ही-भीतर पीडित होने लगा। छतके ऊपरका वह जीवन, वह शान्ति, बाधा-हीन दाम्पत्य-मिलनकी वे एकान्त-निभृत

रातें सहसा महेन्द्रको बड़े आरामदे मालूम होने लगी। किन्तु वह सहज-सुलभ सुख, जिसपर एकमात्र उसीका अधिकार है, आज महेन्द्रके लिए दुराशाका स्वप्न बन गया है। चिर-जीवनके लिए जिस बोझको उसने अपने सिरपर उठा लिया है उसे उतारकर एक क्षणके लिए भी अब वह आराम नही कर सकता।

महेन्द्रने एक गहरी साँस ली, और फिर वह आशाकी तरफ देखने लगा। आशा अपने निस्तब्ध रोदनसे छाती भरकर निश्चल बैठी थी। और रात्रिके अन्धकारने जननीके आँचलकी तरह उसकी लज्जा और वेदनाको ढक रखा था।

महेन्द्र चहलकदमी करते-करते सहसा रुककर खड़ा हो गया, और मालूम नही क्या कहनेके लिए एकदम आशाके पास जा खडा हुआ। आशाके सारे शरीरका खून उसके कानोमे शब्द करने लगा,—उसने अपनी आँखे मीच ली। महेन्द्र क्या कहने आया था, कुछ तय न कर सका,—आखिर वह कह ही क्या सकता था! किन्तु कुछ-न-कुछ कहे बिना वह लौट भी न सका। उसने कहा, "चाभीका गुच्छा कहाँ है?"

चाभियोका गुच्छा रखा था गद्दीके सिरहानेके नीचे। आशा उठकर कमरेके भीतर गई, महेन्द्र भी उसके पीछे-पीछे गया। गद्दीके नीचेसे गुच्छा निकालकर आशाने महेन्द्रके सामने रख दिया। महेन्द्र उसे उठाकर अपनी अलमारीके तालेमें एक-एक चाभी लगाकर देखने लगा। आशासे रहा नही गया, उसने धीरेसे कहा, "इस अलमारीकी चाभी तो मेरे पास नही थी।"

किसके पास चाभी थी, यह बात आशाके मुँहसे नही निकली। किन्तु महेन्द्र समझ गया। आशा जल्दीसे घरसे निकलकर बाहर चली गई। उसे डर लगने लगा कि कही उसका रोना महेन्द्रके आगे फूट न निकले। अँधेरी छतके एक कोनेमे जाकर दीवारकी तरफ मुँह करके वह अपने उमडते-हुए रोनेको जी-जानसे रोकती-हुई रोने लगी।

किन्तु ज्यादा देर रोनेका समय नही था। अचानक उसे याद उठ आई, महेन्द्रके खानेका समय हो गया है। वह जल्दीसे नीचे चली गई।

राजलक्ष्मीने आशासे पूछा, "महेन्द्र कहाँ है, बहू?"

आशाने कहा, "ऊपर है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "फिर तुम नीचे क्यो चली आई?"

आशाने सिर झुकाये-हुए कहा, "उनका खानेका—"

राजलक्ष्मीने कहा, "खानेका इन्तजाम मैं कर रही हूँ, बहू, तुम जाओ, जरा मुँह-हाथ साफ करके ठीकसे कपडे पहन लो। तुम्हारी वो ढाकेकी साडी कहाँ है, पहनकर जल्दी आओ मेरे पास, मैं तुम्हारे बाल बाँध दूँ।"

सासके लाडकी आशा उपेक्षा नही कर सकती, किन्तु इस साज-सज्जाके प्रस्तावसे वह मारे शरमके मर मिटी। मृत्युकी इच्छा करके भीष्मने जैसे स्तब्ध होकर वाणोकी वर्षा सही थी, आशाने भी ठीक वैसे ही राजलक्ष्मीके द्वारा किये गये साज-शृङ्गारको परम धैर्यके साथ अङ्गीकार कर लिया।

सजधजकर आशा अत्यन्त धीरे-धीरे दबे-पाँव जीनेसे चढती-हुई ऊपर पहुँची। जीनेके दरवाजेसे झाँककर देखा, महेन्द्र छतपर नही है। धीरे-धीरे कमरेके दरवाजेके पास जाकर देखा, कमरेमें भी महेन्द्र नही है। उसकी परोसी-हुई थाली ज्यो-की-त्यो पडी है।

चाभीके अभावमे अलमारीका ताला तोडकर वह कुछ जरूरी कपडे और कालेजकी किताबे लेकर चला गया है।

दूसरे दिन एकादशी थी। अस्वस्थ और क्लिष्ट शरीर लिये राजलक्ष्मी बिस्तरपर पडी थी। बाहर बादल हो रहे थे, और आँधीके-से आसार दिखाई दे रहे थे। आशाने धीरे-धीरे कमरेमे प्रवेश किया, और धीरेसे सासके पैरोके पास बैठकर उनके तलवोपर हाथ फेरती-हुई कहने लगी, "तुम्हारे लिए दूध और फल लाई हूँ, मा, उठके खा लो।"

करुण-मूर्ति पुत्रवधूकी इस अनभ्यस्त सेवाकी चेष्टाको देखकर राजलक्ष्मीकी सूखी आँखोमे आँसुओकी बाढ-सी आ गई। वे उठके बैठ गईं, और आशाको गोदके पास बिठाकर उन्होने उसके आँसुओसे भीगे-हुए कपोल चूम लिये, और पूछा, "महेन्द्र क्या कर रहा है, बहू?"

आशा अत्यन्त लज्जित हो उठी, धीरेसे बोली, "वे चले गये।"

राजलक्ष्मीने कहा, "कब चला गया, मुझे तो कुछ मालूम ही नही पडा!"

आशाने सिर झुकाये-हुए कहा, "वे तो कल रातको ही चले गये थे।"

सुनते ही राजलक्ष्मीका मानो सारी कोमलता ही जाती रही। बहूके प्रति उनके लाड-प्यारके स्पर्शमे रसका लेशमात्र न रहा। आशा उस नीरव लाँछनाका अनुभव करके सिर नीचा झुकाये-हुए चुपचाप वहाँसे चली गई।

४०

पहली रातको महेन्द्र जब विनोदिनीको पटलडाँगाके मकानमे छोडकर अपने कपडे वगैरह लेने घर गैया था, विनोदिनी तब कलकत्तेके विश्राम-हीन जन-तरङ्गके कोलाहलमे अकेली बैठी-हुई अपने विषयमे विचार कर रही थी। ससारमे उसका आश्रम-स्थल किसी भी समय काफी विस्तृत नही था, फिर भी, उसके लिए एक करवट गरम हो उठनेपर दूसरे करवट सोनेकी जरा-सी जगह थी। किन्तु आज उसका आश्रय-स्थान अत्यन्त सङ्कीर्ण हो गया है। आज वह जिस नावपर बैठी बहावमे बह रही है वह नाव इतनी हलकी और इतनी छोटी है कि जरा भी दाहने-बायें झुकते ही उसका डूबना निश्चित है, इसलिए, उसे इस नावकी पतवारको बडी स्थिरता और सावधानीसे पकडे रहना चाहिए। जरा-सी गलती होते ही, जरा-सा हिलते-डुलते ही उसी क्षण वह अथाह पानीमे जा पडेगी। इस अवस्थामें किस रमणीका हृदय नही काँपेगा? पराये मनको पूरी तरह वशमें रखनेके लिए जितने छल-बल और हाव-भावकी जरूरत है, इस सङ्कीर्णतामें उतनेके लिए अवकाश कहाँ है? एकदम महेन्द्रके मुकाबलेमें रहकर उसे सारा जीवन बितानेके लिए तैयार रहना होगा। दोनोमे भेद सिर्फ इतना ही है कि महेन्द्रके पास किनारे लगनेका उपाय है और विनोदिनीके पास कुछ भी नही है।

विनोदिनी अपनी इस असहाय अवस्थाको जितना ही स्पष्ट-रूपसे समझने लगी उतना ही वह अपने मनमे बल-सञ्चय करने लगी। कोई-न-कोई उपाय तो उसे करना ही पडेगा, इस तरह निरुपाय होकर वह कैसे रह सकती है?

जिस दिनसे विनोदिनीने बिहारीके आगे अपना प्रेम प्रकट किया है उसी दिनसे उसके धैर्यका बाँध टूट गया है। जिस उद्यत-चुम्बनको वह बिहारीके मुँहके आगेसे लौटा लाई है, उसे, ससारमें और कही भी उससे उतारकर रखते नही बन रहा है, उसे वह पूजाके अर्घ्यके समान देवताके लिए अहोरात्र वहन करती ही फिर रही है। अब विनोदिनीका मन किसी भी अवस्थामें एकदम पतवार छोडना नही चाहता। निराशाको वह स्वीकार ही नहीं करता। उसका मन प्राणोकी बाजी लगाकर बार-बार यही कह रहा है, 'मेरी यह पूजा बिहारीको स्वीकार करनी ही होगी।"

बिनोदिनीके इस दुर्दमनीय प्रेमके साथ उसकी आत्म-रक्षाकी एकान्त आकांक्षा

भी शामिल हो गई। बिहारीके सिवा उसके लिए और-कोई उपाय ही नही। महेन्द्रको उसने खूब अच्छी तरह पहचान लिया है। उसपर निर्भर करनेसे वह भार नही ढो सकता,—उसे छोड देनेसे वह मिल सकता है और पकड रखनेकी कोशिश करनेसे वह भाग जाता है। किन्तु नारीके लिए जिस निश्चिन्त विश्वस्त और निरापद आश्रयकी एकान्त आवश्यकता है, बिहारी उसे दे सकता है। अब बिहारीको छोड़ देनेसे विनोदिनीका बिलकुल ही काम नही चल सकता।

गाँवसे आते वक्त विनोदिनीने महेन्द्रसे कहकर स्टेशनसे लगे-हुए डाकघरमें सूचना दिलवा दी थी कि उसके नामकी चिट्ठी-पत्री आवे तो कलकत्तेके नये पतेपर भेज दी जाया करे। बिहारी उसके पत्रका बिलकुल उत्तर ही न देगा, ऐसा विनोदिनी नही समझती थी। उसने अपने मनमे कहा, 'मै सात दिन तक धीरज धरके चिट्ठीकी प्रतीक्षा करूँगी, उसके बाद जैसा होगा देखा जायगा।' और फिर वह अँधेरेमे खिड़की खोलकर गैस-बत्तीसे आलोकित कलकत्तेकी ओर अन्यमनस्क दृष्टिसे देखती रही।

आजके इस सन्ध्याकालमें बिहारी इसी शहरमे है,—यहाँसे दो-एक सड़क और दो-चार गलियाँ पार करके अभी तुरत उसके दरवाजेके आगे पहुँचा जा सकता है। उसके बाद वही पानीके नल-वाला छोटा-सा आँगन, वही जीना, वही सुसज्जित साफ-सुथरा प्रकाश-पूर्ण एकान्त कमरा,— वहाँकी निस्तब्ध शान्तिमे बिहारी अकेला आराम-कुरसीपर बैठा होगा,—और हो सकता है कि वह ब्राह्मण बालक भी पास बैठा हो। वह सुडौल सुन्दर गौरवर्ण आयतनेत्र सरलमूर्ति बालक तसवीरकी किताब हाथमें लिये तल्लीन होकर उसके पन्ने उलट रहा होगा। एक-एक करके सम्पूर्ण चित्र विनोदिनीकी दृष्टिके आगे नाचने लगा और स्नेहसे प्रेमसे उसका सर्वाङ्ग परिपूर्ण पुलकित हो उठा। 'अभी चाहूँ तो अभी जा सकती हूँ'—इस बातको सोचकर अपनी इच्छाको गोदमे लेकर छातीसे लगाकर उससे वह खूब खेलने लगी। कुछ दिन पहलेकी बात होती तो अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए वह आगे बढती, किन्तु आज बहुत-सी बातें सोचनी पडती हैं। अब केवल वासना चरितार्थ करना ही सब-कुछ नही, उद्देश्य सिद्ध करना होगा। विनोदिनी अपने मनमें कहने लगी, 'पहले देख लूं, बिहारीका कैसा उत्तर आता है, उसके बाद तय किया जायगा कि किस रास्ते चलना ठीक होगा।' बिना कुछ समझे-बूझे बिहारीको परेशान करने जाना उसने उचित नहीं समझा, और न उसे इतना साहस ही हुआ।

इस तरह सोचते-सोचते जब रातके नौ-दस बज गये तब धीरे-धीरे महेन्द्र आ पहुँचा। इधरके कई दिन उसने अनिद्रा और अनियमके कारण उत्तेजित अवस्थामे बिताये है, आज कृतकार्य होकर विनोदिनीको अपने अधीन घरमे रखनेके बाद अवसाद और श्रान्तिने उसे अभिभूत कर डाला है। आज ससार और अपनी अवस्थाके साथ लडनेका बल मानो उसमे रहा ही नही। उसके सम्पूर्ण भाराक्रान्त भावी जीवनकी क्लान्ति मानो आजसे ही उसपर हमला कर बैठी हो।

बन्द दरवाजेके पास खडे होकर द्वार खटखटानेमे महेन्द्रको अत्यन्त लज्जा मालूम होने लगी। जिस उन्मत्ततामे उसने सारी पृथ्वीको कुछ नही समझा वह मत्तता आज कहाँ गई ? आज रास्तेके अपरिचित लोगोकी दृष्टिके सामने भी उसका सर्वाङ्ग सकुचित क्यो हो जाता है ?

भीतर नया नौकर सो रहा था,—दरवाजा खुलवानेमे उसे बडी परेशानी उठानी पडी। अपरिचित नये मकानमे अँधेरेमे घुसते ही महेन्द्रका मन दहल गया। माका लाडला बेटा महेन्द्र हमेशासे विलास-उपकरणोमे पला था। आज इस नये मकानके नये आयोजनमे उन बहुमूल्य उपकरणोका अभाव उस सन्ध्याके अन्धकारमे अत्यन्त परिस्फुट हो उठा। इन सब कमियोकी उसे स्वय पूर्ति करनी होगी, क्योकि इसका भार एकमात्र उसीपर है। महेन्द्रने आज तक कभी भी अपने या पराये आरामके लिए चिन्ता नही की। किन्तु आजसे एक नव-गठित असम्पूर्ण गृहस्थीका सब-कुछ उसीको करना पडेगा।

जीनेके आलेमे एक मिट्टीके तेलकी ढिबरी उजालेकी जगह सिर्फ जोरसे धुआँ उगल रही थी। उसे देखते ही महेन्द्र सोचने लगा, 'कल ही लालटेन वगैरहका इन्तजाम करना है।' आँगन पार करके जीने तकका रास्ता नलके पानीसे गन्दा हो रहा था। महेन्द्रने मन-ही-मन कहा, 'कल ही राज बुलाकर आँगन ठीक कराना है।' नीचे सडककी तरफके दो कमरेमे जूतेके दूकानदार रह रहे थे, उन्होने अभी कमरे खाली नही किये,—इसके लिए मकान-मालिकसे लडना पडेगा। ये सब काम महेन्द्रको खुद ही करने पडेंगे। यह सोचते-हुए उसका मन श्रान्तिके बोझसे व्यथित हो उठा।

महेन्द्रने जीनेके पास कुछ देर खडे रहकर अपनेको सम्हाल लिया, और विनोदिनीसे उसका जो प्रेम था उसे उत्तेजित कर लिया। उसने अपनेको समझाया कि इतने दिन सारे संसारको भूलकर उसने जिसे चाहा था, आज वह उसे मिल गई

है, आज दोनोके बीच कोई बाधा नही रही,—आज उसके लिए आनन्दका दिन है। किन्तु 'कोई भी बाधा नही', यही तो सबसे बडी बाधा है, आज महेन्द्र आप ही अपनी बाधा बन गया है।

विनोदिनीने महेन्द्रको सडकसे आते-हुए ही देख लिया था। देखते ही अपने ध्यानासनसे उठकर उसने कमरेकी बत्ती जला दी, और एक कसीदा हाथमे लेकर सिर भुकाये उसे काढने लगी। यह कसीदा काढना विनोदिनीके लिए एक आवरण है, इसके अन्तरालमे मानो उसका कोई आश्रय हो।

महेन्द्रने कमरेमे घुसते-हुए कहा, "विनोद, यहाँ तुम्हे दिक्कत तो जरूर हो रही होगी?"

विनोदिनीने कसीदा काढते-हुए ही कहा, "नही तो, कोई दिक्कत नही।"

महेन्द्रने कहा, "दो-ही-चार दिनमे मैं पूरा असवाब और जरूरी चीज-वस्त ले जाऊँगा,—तब तकके लिए तुम्हे और भी जरा तकलीफ उठानी पडेगी।"

विनोदिनीने कहा, "नही, ऐसा तुम हरगिज नही कर सकते। अब तुम्हे यहाँ कुछ भी लानेकी जरूरत नही। जो है यहाँ, वही मेरे लिए जरूरतसे बहुत ज्यादा है।"

महेन्द्रने कहा, "अभागा मैं भी क्या उस 'जरूरतसे ज्यादा'मे शामिल हूँ?"

विनोदिनी बोली, "अपनेको 'इतना ज्यादा' नही समझना चाहिए। जरा विनय रखना अच्छा है।"

इस निर्जन दीपालोकमे कार्य-रत नत-मस्तक विनोदिनीकी आत्म-समाहित मूर्ति देखकर महेन्द्रके मनमें क्षणमे फिर पहले-जैसा मोहका सचार हो उठा।

अपना घर होता तो महेन्द्र विनोदिनीके पैरोके पास जा पडता; किन्तु यह तो उसका घर नही, इसलिए उससे ऐसा करते नही बना। विनोदिनी आज असहाय है, एकान्त-रूपसे वह महेन्द्रकी मुट्ठीमे है; आज अपनेको सयत न रखना महेन्द्रके लिए बडी लज्जा और कायरताकी बात होगी।

विनोदिनीने कहा, "यहाँ तुम अपने कपडे-लत्ते और कालेजकी किताबें क्यो ले आये?"

महेन्द्रने कहा, "इन्हे जो मैं अपनी जरूरी चीजोमे समझता हूँ। ये 'जरूरतसे ज्यादा'वाली चीजोमे नही है।"

विनोदिनीने कहा, "मुझे मालूम है। पर यहाँ ये-सब क्यो?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी बात तो ठीक है,—यहाँ कोई जरूरी चीज शोभा नही दे सकती। किन्तु, विनोद, किताबे भले ही तुम उठाकर फेक देना,—मै आपत्ति नही करूँगा,—पर उनके साथ मुझे भी मत फेक देना!" यह कहते-हुए उसने जरा आगे बढकर अपनी किताबोका बण्डल विनोदिनीके पैरोके पास रख दिया।

विनोदिनीने बिना मुँह उठाये ही गम्भीरताके साथ कसीदा काढते-हुए कहा, "लालाजी, यहाँ तुम्हारा रहना नही हो सकता।"

महेन्द्र अपने तुरत-जगे-हुए आग्रहके मुँहपर तमाचा-सा खाकर व्याकुल हो उठा, गद्‌गद कण्ठसे बोला, "क्यो, विनोद, क्यो तुम मुझे दूर रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सर्वस्व त्यागनेके बाद क्या मुझे यही मिलेगा?"

विनोदिनीने कहा, "मै अपने लिए तुम्हे सर्वस्व नही त्यागने दूँगी।"

महेन्द्र कह उठा, "अब यह तुम्हारे हाथमे नही रहा। सारा-ससार मेरे चारो तरफसे स्खलित हो चुका है, केवल तुम्ही अकेली बची-हुई हो, विनोद! विनोद! विनोद!"—कहते-कहते वह जमीनपर औधा लोट गया, और अत्यन्त विह्वलताके साथ विनोदिनीसे पैरोसे लिपटकर उसके पद-पल्लवोका बारम्बार चुम्बन करने लगा।

विनोदिनी अपने पाँव छुडाकर उठके खडी हो गई, बोली, "महेन्द्र, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी, याद है?"

अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करके महेन्द्रने अपनेको सम्हाल लिया और कहा, "याद है। प्रतिज्ञा की थी कि जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, मै वैसा ही करूँगा। मै कभी भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कोई काम न करूँगा। अपनी उस प्रतिज्ञाकी मै रक्षा करूँगा, विनोद! मुझे क्या करना होगा, बताओ?"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हे अपने घर जाकर रहना होगा।"

महेन्द्रने कहा, "तो क्या मै ही एकमात्र तुम्हारी अनिच्छाका शिकार हूँ, विनोद? अगर यही बात थी, तो तुम मुझे इस तरह क्यो खीच लाई? जो तुम्हारे भोगकी वस्तु नही, उसका शिकार करनेकी तुम्हे क्या जरूरत थी? सच-सच बताओ, विनोद, मै क्या अपनी इच्छासे तुम्हारे हाथ पकड़ाई दिया हूँ, या तुमने जान-बूझकर अपनी इच्छासे मुझे पकडा है। मुझे तुम अपनी खुशीका खिलौना बनाकर इस तरह खेल खेलती रहोगी, यह भी क्या मुझे सहना पड़ेगा?—फिर भी,

मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता रहूँगा। जिस घरमें मैंने अपने स्थानको पदाघातसे नष्ट कर दिया है उसी घरमें जाकर रहूँगा।"

विनोदिनी जमीनपर बैठकर फिर अपना कसीदा काढने लगी।

महेन्द्र कुछ देर तक स्थिर दृष्टिसे विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखता रहा। फिर कहने लगा, "निष्ठुर हो, विनोद, तुम निष्ठुर हो! मैं बडा ही अभागा हूँ जो तुमसे प्यार कर बैठा।"

विनोदिनी कसीदेकी इच्छाकृत गलती सुधारनेके लिए बत्तीके पास जाकर बड़े ध्यानसे डोरा ठीक करने लगी। और महेन्द्रका जी चाहने लगा कि वह विनोदिनीके पाषाण हृदयको अपने कठिन हाथोंसे जोरसे मसलकर पीस डाले, उसकी इस नीरव निर्दयता और अविचलित उपेक्षाको प्रचण्ड आघातसे बाहुबलसे सदाके लिए परास्त कर दे।

किन्तु, महेन्द्र उस समय कमरेके बाहर चला गया; और थोडी देर बाद फिर भीतर आकर बोला, "मैं नही रहूँगा तो यहाँ अकेलेमें तुम्हारी रक्षा कौन करेगा?"

विनोदिनीने कहा, "इसके लिए तुम जरा भी मत डरो। बुआजीने खेमीको निकाल दिया है, आजसे वह यही काम करने लगी है। भीतरसे दरवाजा बन्द करके हम दोनो स्त्रियाँ यहाँ बखटके रहा करेगी।"

महेन्द्रको भीतर-ही-भीतर जितना ही गुस्सा आने लगा उतना ही विनोदिनीके प्रति उसका आकर्षण बढता गया। उसकी इच्छा होने लगी, इस अटल मूर्तिको वह वज्र-बलसे छातीसे चिपटाकर क्लिष्ट-पिष्ट कर डाले। और फिर वह इस निदारुण इच्छासे बच निकलनेके लिए जल्दीसे दौडकर बाहर चला गया।

रास्तेमें घूमते-घूमते महेन्द्र प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीकी इस उपेक्षाके बदले वह भी उसके प्रति उपेक्षा ही दिखायेगा। जिस अवस्थामें इस विश्व-जगत्‌में विनोदिनीका एकमात्र भरोसा महेन्द्र है उस अवस्थामें भी महेन्द्रकी ऐसी नीरव और निर्भय, ऐसी सुदृढ और सुस्पष्ट उपेक्षा! ऐसा प्रत्याख्यान! इतना बड़ा अपमान क्या कभी किसी पुरुषके भाग्यमें बदा था? महेन्द्रका गर्व चूर-चूर हो गया, किन्तु किसी भी तरह मरा नही, वह बार-बार पीडित और दलित होन लगा। महेन्द्र अपने-आपसे कहने लगा, 'मैं क्या इतना अपदार्थ हूँ, इतना तुच्छ हूँ! मेरे साथ

ऐसी स्पर्धाका व्यवहार करनेका उसे साहस कैसे हुआ? मेरे सिवा अब उसका और है ही कौन?

सोचते-सोचते सहसा खयाल आया, बिहारी है। क्षण-भरके लिए सहसा उसके हृत्पिण्डका सारा रक्त-प्रवाह मानो स्तब्ध हो गया। 'बिहारीके बूतेपर ही विनोदिनी उसे अपने खेलका खिलौना बनाये-हुए है।' वह सोचने लगा, 'मै तो उसका सिर्फ उपलक्ष-मात्र हूँ, कदम रखकर चढनेका सोपान हूँ, कदम-कदमपर पदाघात करनेका स्थान हूँ, बस, और कुछ नही। बिहारीके बूतेपर ही आज वह इतनी इठला रही है, उसीके भरोसे आज वह मेरी इतनी अवज्ञा करनेकी हिम्मत कर रही है।' महेन्द्रको सन्देह होने लगा कि बिहारीके साथ विनोदिनीका जरूर पत्र-व्यवहार चल रहा है, और विनोदिनीको जरूर उसकी तरफसे कुछ-न-कुछ आश्वासन मिला है।'

तब फिर महेन्द्र धीरे-धीरे बिहारीके घरकी तरफ चल दिया। जब उसने बिहारीके घर जाकर दरवाजा खटखटाया तब ऐसी-कुछ ज्यादा रात नही हुई थी। कई बार कडा खटखटानेके बाद नौकरने भीतरसे दरवाजा खोल दिया, और कहा, "बाबू साहब तो यहाँ है नही।"

महेन्द्र चौक पडा। सोचने लगा, 'मै बेवकूफोकी तरह जब कि सडकोकी धूल फाँकता फिर रहा हूँ, बिहारी तब विनोदिनीके पास जाकर प्रेमालाप कर रहा होगा। इसीसे विनोदिनीने ऐसी रातमे इस तरह निर्दयताके साथ मेरा अपमान किया है। और, मै भी ऐसा कि खदेडे-हुए गधेकी तरह वहाँसे भाग खडा हुआ!'

महेन्द्रने बिहारीके पुराने और परिचित नौकरसे पूछा, "भज्जू, बाबू कब गये है बाहर?"

भज्जूने कहा, "उन्हें तो यहाँसे गये आज चार-पाँच दिन हो गये, बाबू सा'ब! पछाँहकी तरफ कही हवा बदलने गये है।"

सुनकर महेन्द्रके जीमे जी आ गया। उसने सोचा, 'अब यही पडकर सो रहूँ। रात-भर कहाँ घूमता फिरूँगा!' इसके बाद वह ऊपर जाकर बिहारीके कमरेमें कोचपर पड रहा, और पडते ही उसे नीद आ गई।

महेन्द्रने जिस रातको बिहारीके घर आकर उपद्रव मचाया था, उसके दूसरे ही दिन बिहारी यह तय किये बगैर ही कि कहाँ जाना है, पश्चिमकी तरफ रवाना

हो गया था। उसने सोचा कि यहाँ रहनेसे मित्रके साथ किसी दिन उसका संघर्ष ऐसा वीभत्स हो उठेगा कि फिर वह जीवन-भरके लिए अनुतापका कारण बन जायगा। इसलिए वह कलकत्ता छोडकर चला ही गया।

दूसरे दिन महेन्द्रकी जब आँख खुली तब दिनके ग्यारह बज चुके थे। उठते ही सामनेकी तिपाईपर उसकी नजर पडी। देखा कि विनोदिनीके हाथका लिखा बिहारीके नामका एक लिफाफा पत्थरके 'पेपर-वेट'के नीचे दबा रखा है। चटसे उसने लिफाफा उठा लिया। देखा कि अब तक वह खोला नहीं गया है,—प्रवासी बिहारीके लिए वह तिपाईपर पड़ा इन्तजार कर रहा था। काँपते-हुए हाथोसे महेन्द्र जल्दीसे उसे खोलकर पढने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनीने अपने गाँवसे बिहारीको लिखी थी, और अभी तक इसका उसे कोई जवाब नही मिला था।

चिट्ठीका प्रत्येक अक्षर महेन्द्रको बिच्छूकी तरह डक मारने लगा। बचपनसे बिहारी महेन्द्रके अन्तरालमें ही पडा था। ससारमे स्नेह-प्रेमके नामपर महेन्द्र देवताका सूखा निर्माल्य ही अब तक उसके भाग्यमें बदा था। आज महेन्द्र स्वयं प्रार्थी है और बिहारी है विमुख, फिर भी महेन्द्रको ढकेलकर विनोदिनीने इस अरसिक बिहारीको ही वरण कर लिया! महेन्द्रकी भी विनोदिनीकी दो-चार चिट्ठियाँ मिली हैं, किन्तु बिहारीकी इस चिट्ठीके आगे वे नितान्त कृत्रिम हैं, सिर्फ बेवकूफको बहलानेकी कोरी छलना है, और कुछ नही।

फिर उसे विनोदिनीकी उस व्यग्रताकी याद उठ आई जो उसने गाँवसे चलते वक्त डाकखानेको अपने नये पतेकी सूचना दिलानेके लिए प्रकट की थी। और तब उसके कारणका भी उसे पता लग गया। विनोदिनी आज अपने सम्पूर्ण प्राण-मनसे प्रतिक्षण बिहारीके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रही है।

पूर्व-प्रथाके अनुसार मालिककी अनुपस्थितिमें भी भज्जू नौकरने महेन्द्रके लिए चाय बनाई और बाजारसे जलपान ले आया। महेन्द्र नहाना-निबटना भूल गया। गरम बालूपर पथिक जैसे जल्दी-जल्दी कदम रखता-हुआ चलता है, महेन्द्र उसी तरह क्षण-क्षणमें विनोदिनीकी ज्वालामय चिट्ठीपर जल्दी-जल्दी आँखें फेरने लगा। मन-ही-मन वह प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीसे अब वह बिलकुल ही नही मिलेगा। किन्तु उसे ऐसा लगने लगा कि और दो-एक दिन विनोदिनीको बिहारीकी चिट्ठी नही मिली तो वह जरूर यहाँ आकर पता लगानेकी कोशिश करेगी, और

तब सब हाल जानकर सन्तोष कर लेगी। इस सम्भावनासे महेन्द्रका मन बेचैन हो उठा।

महेन्द्रने चिट्ठी जेबमें रख ली; और शामसे कुछ पहले वह पटलडांगाके मकानमें उपस्थित हुआ।

महेन्द्रकी मलिन दशा देखकर विनोदिनीको दया आ गई। वह समझ गई कि महेन्द्र कल रातको घर न जाकर रात-भर शायद इधर-उधर फिरता रहा है। उसने पूछा, "कल रातको घर नही गये थे क्या?"

महेन्द्रने कहा, "नही।"

विनोदिनीने व्यस्तताके साथ कहा, "अब तक कुछ खाया-पीया भी नही क्या?" इतना कहते-हुए सेवा-परायणा विनोदिनी उसी क्षण भोजनका प्रबन्ध करनेको तैयार हो गई।

महेन्द्रने कहा, "रहने दो, मैं खा आया हूँ।"

विनोदिनीने पूछा, "कहाँ खा आये?"

महेन्द्रने कहा, "बिहारीके घर।"

क्षण-भरके लिए विनोदिनीका चेहरा पीला पड गया। क्षण-भर निरुत्तर रहकर अपनेको सम्हालते-हुए उसने पूछा, "बिहारी-लालाजी अच्छे तो हैं?"

महेन्द्रने कहा, "हाँ, अच्छा ही है। पछाँहकी तरफ हवा बदलने चला गया है।"

महेन्द्रने यह बात ऐसे कही जैसे बिहारी आज ही रवाना हुआ हो।

विनोदिनीका चेहरा और एक बार पीला पड़ गया। और फिर उसने अपनेको सम्हालते-हुए कहा, "ऐसे चचल आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। हमारी सब बातें उन्हें मालूम हो गईं मालूम होता है। बहुत नाराज थे क्या?"

महेन्द्रने कहा, "नही-तो ऐसी असह्य गरमीमे क्या शौकसे कोई पश्चिम घूमने जाता है!"

विनोदिनीने कहा, "मेरे विषयमें कुछ कह रहे थे क्या?"

महेन्द्रने कहा, "कहनेको क्या था! यह लो, बिहारीकी चिट्ठी।"

इतना कहकर विनोदिनीके हाथमें चिट्ठी देकर महेन्द्र तीव्र दृष्टिसे उसके चेहरेका भाव देखने लगा।

विनोदिनीने जल्दीसे चिट्ठी ले ली। खुली-हुई चिट्ठी थी, और लिफाफेपर

उसीके हाथका बिहारीका पता लिखा-हुआ था। उसने लिफाफेमेंसे चिट्ठी निकाल कर देखी, उसीकी लिखी-हुई चिट्ठी है। उलट-पुलटकर देखने लगी, किन्तु कहीं भी बिहारीके हाथका लिखा-हुआ कोई जवाब उसे नहीं दिखाई दिया।

थोडी देर चुप रहकर विनोदिनीने महेन्द्रसे पूछा, "यह चिट्ठी तुमने पढ ली है?"

विनोदिनीके चेहरेका भाव देखकर महेन्द्रके मनमे भयका संचार हुआ। वह चटसे झूठ कह बैठा, "नही।"

विनोदिनीने चिट्ठीके टुकडे-टुकडे कर डाले, और फिर उन टुकड़ोको भी रत्ती-रत्ती फाडकर खिडकीसे नीचे फेंक दिया।

महेन्द्र बोला, "मै घर जा रहा हूँ।"

विनोदिनीने उसकी बातका कोई उत्तर नही दिया।

महेन्द्रने कहा, "तुम जैसा चाहती थी, मै वैसा ही करूँगा। सात दिन मै अपने घर ही मे रहूँगा। कालेज जाते वक्त रोज एक बार यहाँकी देखभाल करके खेमीको समझा जाया करूँगा। तुमसे मिलकर अब मै तुम्हें परेशान न करूँगा।"

विनोदिनीको महेन्द्रकी कोई बात सुनाई दी या नही, कौन जाने! किन्तु उसने कुछ जवाब नहीं दिया, वह खुली-हुई खिड़कीके बाहर अँधेरे आकाशकी ओर देखती रही।

महेन्द्र अपना सामान लेकर चलता बना।

विनोदिनी सूने कमरेमें बहुत देर तक जड-सी बैठी रही। और अन्तमें अपनेको मानो जी-जानसे सचेतन करनेके लिए छातीकी चोली फाडकर अपने-आपको निष्ठुरताके साथ पीटने लगी।

आवाज सुनकर खेमी दौडी आई, और बोली, "बहूजी, यह कर क्या रही हो!"

"तू जा यहाँसे!"—कहकर गरजते-हुए विनोदिनीने खेमीको कमरेसे बाहर निकाल दिया। उसके बाद, जोरसे किबाड़ बन्द करके, दोनो हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर, जमीनपर लोटकर वह वाणाहत जन्तुकी तरह आर्तस्वरमें रोने लगी। इस तरह विनोदिनी अपनेको क्षत-विक्षत करके मुक्त वातायतके नीचे सारी रात मूर्च्छित-सी पडी रही।

सवेरे कमरेमें सूर्यालोक प्रवेश करते ही सहसा उसे सन्देह हुआ, बिहारी अगर न गया हो? महेन्द्रने अगर उसे भरमानेके लिए झूठ कहा हो? उसी क्षण उसने

खेमीको बुलाकर कहा, "खेमी, तू अभी जा,—बिहारी-लालाजीके घर जाकर पता लगाकर आ कि वे कहाँ है?"

खेमीने घण्टे-भर बाद वापस आकर कहा, "बिहारी-बाबूके घरके तो सब दरवाजे-जंगले बन्द थे। दरवाजा खटखटानेपर नौकरने भीतरसे कहा, "बाबू घर नही है, पश्चिमकी तरफ घूमने गये है।"

विनोदिनीके मनका सन्देह दूर हो गया।

४१

महेन्द्र रातको ही उठकर चला गया, यह सुनकर राजलक्ष्मी बहूपर बहुत नाराज हुईं। उन्होने समझा, आशाकी बेवकूफीसे ही महेन्द्र चला गया है।

राजलक्ष्मीने आशासे पूछा, "महेन्द्र कल रातको चला क्यो गया?"

आशाने कहा, "मुझे कुछ नही मालूम, मा!"

राजलक्ष्मीने सोचा, यह भी अभिमानकी बात है। उन्होने नाराजीके साथ कहा, "तुम्हें क्यो मालूम होने लगा! उससे कुछ कहा था तुमने?"

आशा सिर्फ "नही" कहकर चुप रह गई।

राजलक्ष्मीको विश्वास नही हुआ। 'भला, यह भी कभी सम्भव हो सकता है?' उन्होने पूछा, "कल वो कब गया था?"

आशाने सकुचित होकर कहा, "मालूम नही।"

राजलक्ष्मी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी, बोली, "तुम्हें कुच्छ भी नहीं मालूम! नन्ही-सी बच्ची हो-न! सब तुम्हारी ही करामात है।"

राजलक्ष्मीने तीव्र स्वरमें यह भी जाहिर कर दिया कि आशाके ही आचरण और स्वभावके दोषसे महेन्द्र घर छोड़कर चला गया है। आशाने सिर झुकाये सासकी डाट-फटकार सह ली, और फिर वह अपने कमरेमे जाकर रोने लगी। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'मालूम नही, क्यो-तो एक दिन उन्होने मुझसे इतना प्रेम किया था, और आज क्यों वे मुझसे ऐसे विमुख हो गये! अब कैसे उनका प्यार मुझे वापस मिलेगा, सो भी मैं नही जानती।' जो आदमी प्रेम करता है उसे कैसे खुश किया जाता है, यह बात हृदय अपने-आप ही बता देता है, किन्तु जो प्यार नही करता उसके मनको कैसे जीता जाता है, आशा इस रहस्यका क्या

बाने ! जो आदमी और-किसीसे प्यार करता हो उससे लाड-प्यार वसूल करनेकी चेष्टा करना विडम्बना-मात्र है, इससे बढ़कर लज्जाकी बात और-कुछ हो ही नही सकती। आशासे भला यह कैसे हो सकता है ?

शामका वक्त है। ज्योतिषीजी और उनकी बहन घरपर आई-हुई है। राजलक्ष्मीने लडकेके ग्रहोकी शान्तिके लिए इन्हें बुलवा भेजा था।

उन्होने बहूकी जन्मपत्री और हाथ देखनेके लिए ज्योतिषीसे अनुरोध किया। इसके लिए उन्होने आशाको भी बुला लिया था। दूसरोके समक्ष अपने दुर्भाग्यकी आलोचनाके सकोचसे अत्यन्त कुण्ठित होकर आशा किसी तरह अपना हाथ निकालकर बैठी ही थी कि इतनेमें राजलक्ष्मीको अपने कमरेके सामनेवाले दीप-हीन बरामदेमें किसीके जूतेकी दबी-हुई आवाज सुनाई दी ; मानो कोई दबे-पाँव भीतर चला जा रहा हो। राजलक्ष्मीने पुकारा, "कौन है ?"

कुछ जवाब नही मिला तो उन्होने फिर पुकारा, "कौन जा रहा है ?"

इतनेमें चुपकेसे महेन्द्र आ पहुँचा।

आशा खुश क्या होती,—महेन्द्रकी लज्जा देखकर लज्जासे उसका हृदय भर आया। महेन्द्रको अब अपने घरमे भी चोरकी तरह आना पडता है ! खासकर ज्योतिषीजीकी बहनकी उपस्थितिसे उसकी लज्जा और भी बढ गई। सारे ससारके आगे अपने पतिके लिए जो लज्जा थी उसका दु.ख आशाके अपने दु खसे भी ज्यादा बढ गया।

राजलक्ष्मीने जब धीरेसे कहा, "बहू, पार्वतीसे कह दो, महेनकी थाली ले आवे।"—तब आशासे रहा न गया, उसने कहा, "मै लिये आती हूँ।" घरके दास-दासियोकी दृष्टिसे भी वह अपने पतिको बचाये रखना चाहती है।

इधर ज्योतिषी और उनकी बहनको देखकर महेन्द्र भीतर-ही-भीतर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसकी मा और स्त्री दैवकी सहायतासे उसे वश करनेके लिए इन अशिक्षित मूढोके साथ बैठी निर्लज्ज-भावसे षड्यन्त्र कर रही है, यह महेन्द्रके लिए असह्य हो उठा। इसपर जब ज्योतिषीकी बहनने अत्यन्त मुलायम स्वरमें महेन्द्रसे पूछा, "अच्छे तो हो, बेटा ?"—तब फिर महेन्द्रके लिए वहाँ ठहरना ही मुश्किल हो गया। कुशल-प्रश्नका कुछ उत्तर न देकर उसने मासे कहा, "मा, मैं जरा ऊपर जा रहा हूँ।"

माने सोचा, महेन्द्र शायद अपने कमरेमे जाकर एकान्तमे बहूसे बातचीत करना चाहता है। उन्होने अत्यन्त प्रसन्न होकर जल्दीसे रसोईमें जाकर बहूसे कहा, "जाओ, जाओ, तुम जल्दीसे जरा ऊपर चली जाओ, महेन्द्र ऊपर गया है, शायद उसे कोई जरूरी काम है।"

आशा काँपते-हुए हृदयसे अत्यन्त सङ्कोचसे पैर रखती-हुई ऊपर चली गई। सासकी बातसे उसने यही समझा था कि शायद महेन्द्रने उसे बुलाया है। किन्तु कमरेके भीतर सहसा उससे घुसा नही गया। घुसनेके पहले वह अँधेरेमें दरवाजेकी ओटमें खडी-खडी महेन्द्रको देखने लगी।

महेन्द्र तब अत्यन्त शून्य-हृदयसे नीचेके गद्देपर तकियेके सहारे लेटा-हुआ छतकी कड़ियोका निरीक्षण कर रहा था। वही महेन्द्र है, वही सब-कुछ, किन्तु कैसा परिवर्तन है! इस छोटेसे शयनागारको एक दिन महेन्द्रने स्वर्ग बना दिया था। फिर आज क्यो वह इस आनन्द-स्मृतिसे-पवित्र स्थानको इस तरह अपमानित कर रहा है? 'आज यहाँ यदि तुम्हें इतना कष्ट हो रहा है, इतना क्रोध आ रहा है, इतना चित्त चंचल हो रहा है, तो इस बिस्तरपर अब तुम्हें नही बैठना चाहिए, महेन्द्र! यहाँ आकर भी यदि तुम्हें पहलेकी वे परिपूर्ण गभीर रातें, वे सुनिविड़ मध्याह्न, वे आत्म-विस्मृत कर्म-विस्मृत घनवर्षाके दिन, दक्षिण-वायुसे कम्पित वसन्तकी वे विह्वल सन्ध्याएँ, वे अनन्त असीम असख्य अनिर्वचनीय बातें याद न आयें, तो इस घरमें और-भी अनेक कमरे है, वहाँ चले जाओ। अब इस छोटेसे शयनागारमें एक क्षणके लिए भी तुम्हारा रहना व्यर्थ है।'—इस तरहके नाना विचार उसके मनमें उठने लगे।

आशा अँधेरेमे खड़ी-खड़ी जितना ही महेन्द्रको गौरसे देखने लगी, उतना ही उसे ऐसा लगने लगा कि महेन्द्र अभी तुरत विनोदिनीके पाससे आ रहा है, उसके शरीरमें उसी विनोदिनीका स्पर्श है, उसकी आँखोमें उसी विनोदिनीका मूर्ति है, उसके कानोंमें उसी विनोदिनीका कण्ठस्वर है, और उसके मनमें उसी विनोदिनीकी वासना लिपटी-हुई है। इस महेन्द्रको आशा कैसे अपनी पवित्र भक्ति दे, और कैसे एकाग्र मनसे कहे कि 'आओ मेरे अनन्यपरायण, मेरे हृदयमें आ विराजो, मेरे अटल-निष्ठ सती-प्रेमके शुभ्र शतदलपर अपने दोनो चरण रखकर मुझे धन्य कर दो।'

आशा अपनी मौसीका उपदेश, पुराणोकी बातें, शास्त्रोंकी शिक्षा, कुछ भी

न मान सकी। इस दाम्पत्य-स्वर्गसे च्युत महेन्द्रको वह अपने मनमें देवता न समझ सकी। उसने आज विनोदिनीके कलङ्क-पारावारमें अपने हृदय-देवताको विसर्जित कर दिया, और उस प्रेमपूर्ण रात्रिके अन्धकारमे उसके कानोमें, उसकी छातीमें, उसके मस्तिष्कमे, उसके सर्वाङ्गके रक्तस्रोतमें, उसके चारो तरफके ससारमें, उसके आकाशके नक्षत्रोमे, उसकी प्राचीर-वेष्टित निभृत-निर्जन छतमें और उसके शयनगृहकी परित्यक्त विरह-शय्यामें एक प्रकारकी भयानक गम्भीर व्याकुलताके साथ विसर्जनके बाजे बजने लगे।

विनोदिनीका महेन्द्र आशाके लिए मानो पर-पुरुष है, मानो पर-पुरुषसे भी बढ़कर है, और ऐसा लज्जाका विषय मानो अत्यन्त अपरिचित भी नहीं हो सकता। आशासे किसी भी तरह कमरेके भीतर नहीं जाया गया।

इतनेमें महेन्द्रकी अन्यमनस्क दृष्टि कड़ियोंसे सामनेकी दीवारपर उतर आई। उसकी दृष्टिका अनुसरण करके आशाने देखा कि सामनेकी दीवारपर महेन्द्रकी तसवीरके पास ही आशाकी तसवीर लटक रही है। उसका जी चाहने लगा कि उसे वह आँचलसे ढक दे या उतारकर फेंक दे। अभ्यासवश क्यों उसपर अब तक उसकी दृष्टि नहीं पडी और क्यो अब तक उसे उसने उतारा नही, इस बातका खयाल कर-करके वह अपनेको धिक्कारने लगी। उसे ऐसा लगा, मानो महेन्द्र मन-ही-मन हँस रहा है, और उसके हृदय-आसनमें विनोदिनीकी जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह भी मानो अपनी जुड़ी-हुई भौंहोके भीतरसे उस तसवीरकी तरफ देख-देखकर कटाक्षसे हँस रही है।

अन्तमें रोषसे पीडित महेन्द्रकी दृष्टि दीवारसे भी उतर आई। आशा अपनी मूर्खता मिटानेके लिए आजकल सन्ध्याके बाद काम-काज और सासकी सेवासे छुट्टी पाते ही बहुत रात तक अकेली बैठी पढा करती है। उसकी पढनेकी किताबें और कापी वगैरह एक तरफ रखी-हुई थीं। सहसा महेन्द्रकी उनपर दृष्टि पड़ गई, और वह अलस-भावसे उनमेंसे एक कापी खीचकर उसे देखने लगा। आशाका ऐसा जी करने लगा कि वह चीखकर चिल्लाकर झपटकर महेन्द्रके हाथसे उसे छीन लाये। अपनी कच्ची और भद्दी लिखावटपर महेन्द्रकी हृदयहीन व्यंग-दृष्टिकी कल्पना करके उससे फिर वहाँ एक क्षण भी खडा नही रहा गया। वह बडी तेजीसे नीचे भाग गई। उसने अपने पैरोकी आहट छिपानेकी भी कोशिश नहीं की।

महेन्द्रके लिए खाना बिलकुल तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थीं कि महेन्द्र ऊपर बहूके साथ प्रेमालाप कर रहा होगा, और इसलिए उन्होने भोजनकी थाली ले जाकर बीचमें रस-भङ्ग करना उचित नही समझा। अब आशाको नीचे आते देख उन्होने महेन्द्रको खानेके लिए नीचे बुलवा भेजा।

महेन्द्रके नीचे जाते ही आशा दौडी-दौडी ऊपर पहुँची। उसने अपनी तसवीर उतारकर उसे तोड-फाडकर छतकी दीवारके ऊपरसे बाहर फेंक दिया, और अपनी किताब-कापियाँ उठाकर जल्दीसे नीचे ले आई।

भोजन करनेके बाद महेन्द्र अपने सूने कमरेमें जाकर बैठ गया। राजलक्ष्मी इधर-उधर बहूको ढूँढने लगी, पर आसपास कही भी उसका पता नही चला। अन्तमें रसोईघरमे जाकर देखा कि वह उनके लिए दूध गरम कर रही है। इसकी कोई जरूरत नही थी। कारण, जो दासी राजलक्ष्मीका दूध गरम किया करती है वह उसके पास ही बैठी थी, और आशाके इस अकारण उत्साहपर वह आपत्ति प्रकट कर रही थी। अवश्य ही, विशुद्ध जलसे पूर्ति करके दूधका जितना अश वह रोज हरण किया करती थी उतना अश आज मारा जानेसे वह भीतर-ही-भीतर व्याकुल हो रही थी।

राजलक्ष्मीने कहा, "यह क्या, बहू, तुम यहाँ क्यो? जाओ, ऊपर जाओ।"

आशा ऊपर तो गई, पर बीचकी मजिलमें सासके कमरेमें ही रह गई।

राजलक्ष्मी बहूके इस व्यवहारसे बहुत नाराज हो उठी। सोचने लगी, 'किसी तरह महेन्द्र मायाविनीके मायाजालसे निकलकर क्षण-भरके लिए घर आया भी, तो बहू इस तरह मान-अभिमान करके उसे घरसे विदा करनेके ढग कर रही है। विनोदिनीके जालमें महेन्द्र जो फँसा है, उसमें दोष तो आशाका ही है। पुरुषोका क्या है, वे तो खोटे रास्ते चलनेके लिए तैयार ही बैठे रहते है,—स्त्रियोका कर्तव्य है कि उन्हें छल-बल और कौशलसे जैसे भी हो सीधे रास्ते चलायें।'

राजलक्ष्मीने तीव्र भर्त्सनाके स्वरमें कहा, "तुम्हारा यह क्या ढंग है, बहू! भाग्यसे पति घर आया तो अब तुम हँड़िया-सा मुँह बनाके ठनगन दिखाने लगी!"

आशा अपनेको अपराधिनी समझकर अकुशाहत-चित्तसे ऊपर चली गई और मनको दुबिधा करनेका मौका न देकर एक साँसमें सीधी अपने कमरेमें जा पहुँची।

दस बज चुके हैं। महेन्द्र चिन्तित-मुखसे पलगके सामने खडा-हुआ अनावश्यक लम्ब समय तक मशहरी झाड रहा था। विनोदिनीके प्रति उसके मनमे तीव्र अभिमानका उदय हो रहा था। वह मन-ही-मन कह रहा था, 'विनोदिनीने क्या मुझे अपना खरीदा-हुआ गुलाम समझ रखा है जो आशाके पास भेजनेमे उसे जरा भी दुबिधा-आशङ्का नही? आजसे यदि मै आशाके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करने लगूँ, तो विनोदिनी किसके सहारे इस दुनियामे खडी रहेगी? मैं क्या इतना ही अपदार्थ हूँ कि कर्तव्य-पालनकी इच्छा करना मेरे लिए बिलकुल ही असम्भव है? विनोदिनीके आगे अन्तमें क्या मेरा यही परिचय रह जायगा? मैंने श्रद्धा भी खो दी और प्रेम भी नही पाया। मुझे अपमानित करनेमें उसे जरा भी दुबिधा नहीं?' महेन्द्र पलगके पास खडा-खडा प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीके इस स्पर्धाका वह प्रतिवाद करेगा, और जैसे भी हो आशाके प्रति अपने हृदयको अनुकूल करके वह विनोदिनीके द्वारा किये-गये इस अपमानका बदला लेकर ही रहेगा।

आशाके कमरेमें प्रवेश करते ही महेन्द्रका अन्यमनस्क-भावसे मशहरी झाड़ना बन्द हो गया। 'क्या कहकर आशासे वह बात शुरू करे', इस समस्याका हल करना उसके लिए अत्यन्त दुरूह हो उठा।

महेन्द्रने सूखी हँसी हँसते-हुए, सहसा जो बात उसकी जबानपर आई, कह डाली। उसने कहा, "तुम भी आजकल, मालूम होता है, मेरी ही तरह पढ़नेमें मशगूल हो रही हो। तुम्हारी किताबें-कापियाँ अभी जो यहाँ देखी थी वे कहाँ गईं?"

उसकी बात सिर्फ बेतुकी ही सुनाई दी हो सो बात नही ; उसने मानो आशाको थप्पड-सा मार दिया। मूढ आशा जो शिक्षिता होनेकी कोशिश कर रही है, यह उसकी अपनी गुप्त बात है। आशाकी धारणा थी कि यह उसके लिए बडी हँसीकी बात है। उसके लिए अपने इस शिक्षा प्राप्त करनेके सङ्कल्पको अगर किसीके भी हास्य-विद्रूपके लेशमात्र आभाससे छिपानेकी जरूरत है, तो वह विशेष-रूपसे महेन्द्रसे ही। उसी महेन्द्रने जब इतने दिन बाद अपने प्रथम सम्भाषणमें हँसते-हुए उसी बातकी अवतारणा की तो निष्ठुर-वेत्राहत शिशुकी कोमल देहकी तरह आशाका सम्पूर्ण मन सकुचित और व्यथित हो उठा। वह कुछ जवाब न देकर मुंह फेरकर तिपाईसे लगके खड़ी हो गई।

महेन्द्र भी मुँहसे बात निकलते ही समझ गया था कि उसकी बात ठीक सङ्गत और समयोपयोगी नही हुई ; किन्तु वर्तमान अवस्थामे उपयोगी बात क्या हो सकती है, यह भी उससे तय करते नही बना। बीचमें इतनी बडी क्रान्ति हो चुकनेके बाद पहलेकी तरह कोई भी सहज-स्वभाविक बात ठीक नही सुनाई दे सकती थी , और फिर अभी हृदय भी बिलकुल गूंगा बना-हुआ है, कोई बात कहनेके लिए तैयार ही नही। महेन्द्र सोचने लगा, 'मशहरीके भीतर घुस जानेसे पलगके निभृत वेष्टनमें शायद उसके लिए बात करना सहज हो जायगा।' यह सोचकर महेन्द्र फिर अपनी धोतीकी लाँगसे मशहरीका नीचेका हिस्सा झाडने लगा। नया अभिनेता जैसे रङ्गमञ्चपर प्रवेश करनेके पहले उत्कण्ठाके साथ नेपथ्य-द्वारपर खडा-खडा अपने अभिनेतव्य विषयको बार-बार मन-ही-मन दुहराता रहता है, महेन्द्र भी वैसे ही मशहरीके सामने खडा-खडा मन-ही-मन अपने वक्तव्य और कर्तव्यकी आलोचना करने लगा।

इतनेमें, एक बहुत हलका-सा शब्द सुनकर महेन्द्रने मुँह फेरकर देखा, आशा कमरेमें नही है।

४२

दूसरे दिन सवेरे महेन्द्रने मासे कहा, "मा, पढने-लिखनेके लिए मुझे एक अलग कमरा चाहिए। चाची जिस कमरेमें रहती थी, मैं उसीमें रहूँगा।"

मा प्रसन्न हो उठीं,—'तो महेन्द्र घरमे ही रहेगा। मालूम होता है बहूसे अब मेल-मिलाप हो गया। मेरी ऐसी सोनेकी गुडिया बहूकी भला महेन्द्र क्या हमेशा निरादर कर सकता है? घरकी ऐसी लछमीको छोडकर भला कोई उस मायाविनी डाइनके फेरमें कब तक फँसा रह सकता है!'

राजलक्ष्मी तुरत कह उठी, "हाँ-हाँ, ठीक है, बेटा, तुम उसीमें रहा करना।" कहते-हुए उसी वक्त उन्होने चाभियोंका गुच्छा निकालकर बन्द कमरेको खुलवा कर उसे झड़वाने-पुंछवानेकी धूम मचा दी।

"बहू! बहू! कहाँ गई बहू?"

बहुत खोज करनेके बाद सकुचिता बहूका घरके किसी कोनेसे आविष्कार किया गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "जाओ तो, बहू, एक साफ जाजिम निकाल लाओ। इस कमरेमें टेबिल नही है, एक टेबिल भी चाहिए। इस बत्तीसे तो काम नही चलेगा, ऊपरसे लैम्प भी भेज देना।"

इस तरह दोनोने मिलकर घरके राजाधिराजके लिए अन्नपूर्णाके कमरेमें विस्तृत राजासन प्रस्तुत कर दिया। महेन्द्रने सेवा-कारिणियोकी तरफ आँख उठाकर देखा तक नही, वह गम्भीरताके साथ अपनी किताबें और नोटबुक आदि लेकर कमरेमें जा बैठा, और समयका लेशमात्र अपव्यय न करके उसी क्षण उसने पढना-लिखना शुरू कर दिया।

शामको ब्यालू करनेके बाद महेन्द्र फिर पढने बैठ गया। वह ऊपर अपने सोनेके कमरेमें सोयेगा या नीचे पढनेके कमरेमें, किसीके कुछ समझमें न आया। राजलक्ष्मीने बड़े जतनसे आशाको स्पन्दन-हीन जड़ तितली-सी सजाकर कहा, "जाओ तो, बेटी, महेन्द्रसे जाकर पूछ आओ, उसके बिछौने क्या ऊपर होगे?"

इस प्रस्तावने आशाके पैरोको मानो कील दिया, वह चुपचाप सिर झुकाये खडी रही। रुष्ट राजलक्ष्मी उसे बहुत डाटने-फटकारने लगी। आशा मानो हथेलीपर जान रखकर बडी मुश्किलसे धीरे-धीरे महेन्द्रके दरवाजे तक गई, किन्तु उससे आगे नही बढा गया। राजलक्ष्मी दूरसे बहूका आचरण देखकर बरण्डेके कोनेमें खडी-खड़ी क्रोधपूर्ण इशारा करने लगी। आशा एक साँसमें ऐसे भीतर घुस पड़ी जैसे उसने अपनेको भट्टीमें झोक दिया हो।

महेन्द्र अपने पीछे पैरोकी आहट सुनकर किताबसे दृष्टि बगैर उठाये ही कह उठा, "मुझे अभी देर है,—फिर कल भोरमें ही उठकर पढना है, मैं यही सोऊँगा।"

कैसी लज्जाकी बात है! आशा क्या उसे ऊपरके कमरेमे चलकर सोनेके लिए निहोरे करने आई थी?

आशाके कमरेसे बाहर निकलते ही राजलक्ष्मीने नाराजीके स्वरमें पूछा, "क्या, हुआ क्या?"

आशाने कहा, "अभी पढ़ रहे हैं,—नीचे ही सोयेंगे।"

इतना कहकर वह सीधी अपने अपमानित सोनेके कमरेमें चली गई। कही भी उसे सुख नहीं,—उसके लिए सारी पृथ्वी मानो मध्याह्नकी मरुभूमिकी तरह गरम हो उठी है।

और थोड़ी रात बीतनेके बाद अचानक किसीने आशाके कमरेका दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया। बाहरसे आवाज आई, "बहू, बहू, जरा दरवाजा खोलना।"

आशाने जल्दीसे उठकर दरवाजा खोल दिया। राजलक्ष्मीको दमाकी शिकायत तो थी ही, सीढी चढनेके बाद उन्हे साँस लेनेमे तकलीफ होने लगी। घरमें घुसते ही वे गद्देपर बैठ गईं; और बोलनेकी शक्ति आते ही भर्राये-हुए गलेसे बोली, "बहू, ये क्या ढग है तुम्हारे! ऊपर आकर किवाड़ बन्द करके सो रही हो जो? यह क्या इस तरह गुस्सा-गुस्सी करनेका समय है? इतना दु ख उठानेपर भी तुम्हे जरा अकल नही आई? जाओ, नोचे जाओ।"

आशाने धीरेसे कहा, "उन्हीने तो कहा है, वे अकेले रहेंगे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उन्हीने कहा है! उसने कह दिया, और तुमने सुन लिया? गुस्सेमे उसने क्या कहा और क्या नही कहा, इन सब बातोको लेकर इतनी अकड दिखाना ठीक नही, बहू! इतना मान-गुमान करनेसे काम नही चलता। जाओ, जल्दी जाओ।"

दु खके दिनोमें सासने बहूके आगे किसी तरहकी लज्जा नहीं रहने दी। उनके हाथमें जितने भी उपाय हैं उन-सबसे लडकेको उन्हें बाँधकर रखना ही है।

आवेगके साथ बात करते-करते राजलक्ष्मीकी फिर साँस फूल आई। किसी तरह अपनेको सम्हालती-हुई वे उठी; और आशा भी कुछ न कहकर सहारा देकर उन्हें नीचे ले गई। नीचे ले जाकर आशाने राजलक्ष्मीको उनके बिस्तरपर बिठा दिया और पीठके पीछे कई तकिये लगा दिये।

राजलक्ष्मीने कहा, "रहने दो। सुधियाको भेज दो। तुम जाओ, अब देर मत करो।'

आशाने इस बार जरा भी दुबिधा नहीं की। सासके कमरेमेंसे निकलकर वह सीधी महेन्द्रके कमरेमें चली गई। महेन्द्रके सामने टेबिलपर किताब खुली पड़ी थी और वह टेबिलपर दोनो पैर फैलाकर कुरसीकी पीठपर सिर रखे एकाग्र मनसे कुछ सोच रहा था। पीछेसे किसीके आनेकी आहट सुनकर महेन्द्र चौंककर पीछे देखने लगा। मानो वह किसीके ध्यानमें निमग्न था, और अब सहसा उसे ऐसा भ्रम हुआ कि मानो वह जिसके ध्यानमें बैठा था वही आ पहुँची है। आशाको

देखकर महेन्द्र संयत होकर पैर नीचे उतारकर बैठ गया और किताब उठाकर उसने अपनी गोदमें रख ली।

महेन्द्र आज मन-ही-मन आश्चर्य करने लगा। आजकल तो आशा उसके सामने ऐसे असङ्कोचसे नही आती! दैवसे दोनोमे कभी भैंट हो भी जाती थी तो वह उसी क्षण भाग जाती थी। आज वह इतनी रातमें इतने सहज-स्वभावसे उसके कमरेमें चली आई, यह बडे आश्चर्यकी बात है। महेन्द्र किताबसे दृष्टि बिना उठाये ही समझ गया कि आशाके आज जानेके लक्षण नही है। आशा महेन्द्रके सामने आकर स्थिर-भावसे खडी हो गई। तब फिर महेन्द्रसे पढनेका बहाना करते नहीं बना, उसने आँख उठाकर उसकी तरफ देखा। आशाने सुस्पष्ट स्वरमें कहा, "माकी साँस फूल रही है, तुम चलकर एक बार उन्हें देख लो तो अच्छा हो।"

महेन्द्रने कहा, "मा कहाँ हैं?"

आशाने कहा, "अपने सोनेके कमरेमें हैं। उन्हें नीद नहीं आ रही है, तकलीफ ज्यादा मालूम होती है।"

महेन्द्रने कहा, "तो चलो, देख आऊँ।"

बहुत दिन बाद आशासे इतनी बात करके महेन्द्र मानो कुछ हलका-सा हो गया। नीरवता मानो दुर्भेद्य दुर्ग-प्रचीरकी काली छाया बनकर खडी थी, महेन्द्रकी तरफसे उसे तोडनेका कोई अस्त्र नही था,—इतनेमें आशाने अपने हाथसे किलेका छोटा-सा द्वार खोल दिया।

आशा राजलक्ष्मीके दरवाजेके पास आकर खडी हो गई। महेन्द्र भीतर चला गया। महेन्द्रको असमयमे अपने पास आते देख राजलक्ष्मी डर गईं, सोचने लगी, 'मालूम होता है फिर आशासे खटपट हो गई है, और अब यह जानेके लिए मुझसे विदा लेने आया है।' उन्होने कहा, "क्यो महेन, अभी तक तू सोया नहीं?"

महेन्द्रने कहा, "क्यो मा, तुम्हारी साँस फिर उखड आई,—तकलीफ ज्यादा है क्या?"

इतने दिन बाद पुत्रके मुँहसे ऐसा प्रश्न सुनकर माको मन-ही-मन बड़ा अभिमान हुआ। वे समझ गईं कि बहूने जाकर कहा है तब महेन्द्र माकी खबर लेने आया है। इस अभिमानके आवेगसे उनका हृदय और भी ज्यादा आन्दोलित हो उठा। बड़े कष्टसे शब्द उच्चारण करते-हुए बोली, "जा तू, सोने जा। मुझे कुछ नही हुआ।"

महेन्द्रने कहा, "नहीं, मा, एक बार अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी है। यह रोग उपेक्षा करनेका नहीं है।"

महेन्द्र जानता था कि उसकी माका हृदय बहुत कमजोर है, इसलिए, और उनके चेहरेका लक्षण देखकर वह अत्यन्त चिन्तित हो उठा।

माने कहा, "तुझे परीक्षा करनेकी जरूरत नहीं,—अब मेरा यह रोग अच्छा होनेका नही है।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा तो, आज रात-भरके लिए नीदकी एक दवा मँगाये देता हूँ,—किन्तु कल अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी होगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहुत दवा खा चुकी मै, अब दवा-दारूकी कुछ जरूरत नही। जा तू, बहुत रात हो चुकी है, अब सो जाकर।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी तबीयत जरा ठीक हो ले, तब मै जाऊँगा।"

तब अभिमानिनी राजलक्ष्मीने द्वारके अन्तरालमें खडी बहूको सम्बोधित करते-हुए कहा, "बहू, क्यो तुम इतनी रातमें महेन्द्रको फजूल हैरान करनेके लिए यहाँ ले आई?" कहते-कहते फिर उनका श्वासकष्ट बढ गया, और वे बेचैन हो उठी।

तब फिर, आशाने भीतर आकर मृदु किन्तु दृढ स्वरमें महेन्द्रसे कहा, "जाओ, तुम सोने जाओ, मै हूँ माके पास।"

महेन्द्रने आशाको एक तरफ बुलाकर कहा, "मै एक दवा मँगाये देता हूँ। शीशीमे दो खुराक दवा होगी, एक खुराक पिलानेके बाद भी अगर नीद न आये, तो घण्टे-भर बाद दूसरी खुराक भी पिला देना। रातको तकलीफ बढ़े तो मुझे जगा लेना, भूलना नही।"

इतना कहकर महेन्द्र अपने नये कमरेमें सोने चला गया। आशा आज महेन्द्रके सामने जिस मूर्तिमें दिखाई दी, उसके लिए मानो यह बिलकुल नई बात थी। इस आशामें किसी तरहका सङ्कोच नही, दीनता नही; यह आशा अपने अधिकारमें आप ही अधिष्ठित है, किसी भी बातके लिए आज वह पतिके आगे भिक्षा-प्रार्थिनी नहीं। 'अपनी स्त्री'की महेन्द्रने उपेक्षा की है, किन्तु 'घरकी बहू'के प्रति उसके मनमें एक विशिष्ट सम्मान उत्पन्न हो गया।

राजलक्ष्मी यह सोचकर कि बहूको उनका इतना खयाल है कि वह चटसे जाकर

महेन्द्रको बुला लाई, मन-ही-मन बहूपर बहुत खुशी चोट पहुँचती है। और आशा
मैंने तुम्हे सोनेके लिए भेजा था,—और तुम जाकर महे करना भी उसके लिए कठिन
आशा उनकी बातका कुछ जवाब न देकर पखा हाथमना है। इस तरह भला
बैठी हवा करने लगी। कि कमसे-कम सात
राजलक्ष्मीने कहा, "जाओ, बहू, सोने जाओ।" और बाकी है।
आशाने धीरेसे कहा, "मुझे यही बैठनेको कह गये है।" आशा
कि इस बातको सुनकर कि महेन्द्र उसे माकी सेवाके लिए छोड़ गया है, राज्जई है।
खुश होगी।

४३

राजलक्ष्मीने स्पष्ट-रूपसे देख लिया कि आशासे महेन्द्रके मनको बाँधते नहीं बनता, और तब उन्हें ऐसा लगा कि 'कमसे कम मेरी बीमारीके कारण ही महेन्द्रका अगर घरमे रहना हो, तो वह भी अच्छा।' उन्हें डर लगने लगा कि कही उनका रोग बिलकुल ही अच्छा न हो जाय, और इसलिए वे आशासे छिपाकर दवा फेंक देने लगी।

अन्यमनस्क महेन्द्र इधर विशेष कुछ लक्ष्य नही दे सकता था। किन्तु आशा अनुभव करने लगी कि राजलक्ष्मीकी बीमारी अच्छी नही हो रही, बल्कि बढ रही है। वह सोचने लगी, उसके पति काफी ध्यान देकर ठीकसे माका इलाज नही कर रहे है, उनका मन इतना उद्भ्रान्त रहता है कि माकी ऐसी बीमारी भी उन्हें चेता नही सकती। महेन्द्रकी इतनी बडी दुर्गतिको देखकर आशा मन-ही-मन उसे धिक्कारे बगैर न रह सकी। एक तरफसे नष्ट होनेसे आदमी क्या सभी तरफसे ऐसा नष्ट हो जाता है?

एक दिन शामके वक्त राजलक्ष्मीकी तकलीफ जब कि काफी बढ़ गई, तब उन्हे बिहारीकी याद उठ आई, कितने दिनोसे बिहारी नही आया जिसका कोई ठीक नही। उन्होंने आशासे पूछा, "बहू, आजकल बिहारी कहाँ है?"

आशा समझ गई और सोचने लगी, 'हमेशासे रोग-धोग और दु ख-कष्टमें बिहारी-लालाजी ही माकी सेवा करते आये हैं। इसीसे माको आज कष्टके समय उनकी याद आ रही है। हाय हाय, इस घरके अटल सेवक-सहायक हमेशाके वे

महेन्द्रने कहा, "नहीं, मा, ए... ले गये है। वे होते तो इस दु समयमें माकी बहुत
रोग उपेक्षा करनेका नहीं है ... हृदयहीन नही हैं।' सोचते-सोचते आशाके हृदयसे
महेन्द्र जानता था ... आई।
उनके चेहरेका लक्षण ...हा, "बिहारीके साथ महेन्द्रने शायद झगडा कर लिया है?
माने कहा ... बात है, बहू! उस जैसा हितू मित्र महेन्द्रका और-कोई मिलेगा
होनेका नही ...हते-कहते उनकी आँखोमें आँसू भर आये।

...कके बाद एक आशाको बहुत-सी बातें याद आने लगी। अन्धी मूढ आशाको दे...समय सावधान करनेके लिए बिहारीने कितनी तरहसे कोशिश की थी, और उन कोशिशोकी वजहसे वह आशाका कितना अप्रिय हो उठा था, उन सब बातोकी याद कर-करके आशा आज मन-ही-मन तीव्र-रूपसे अपनेको अपमानित करने लगी। एकमात्र सुहृत्को लाञ्छित करके एकमात्र शत्रुको जो छातीसे लगा लेता है, विधाता उस कृतघ्न मूर्खको क्यो नही सजा देंगे? भग्नहृदय बिहारी जैसी आह खींचकर इस घरसे विदा हुआ है, वह आह क्या इस घरको नही लगेगी?

बहुत देर तक चिन्तित और स्थिर रहकर राजलक्ष्मी फिर सहसा कह उठीं, "बहू, आज बिहारी अगर होता तो इस बुरे समयमें वह जरूर हमारी रक्षा कर सकता था,—मामला इतना आगे नही बढ पाता।"

आशा निस्तब्ध होकर सोचने लगी।

राजलक्ष्मीने एक गहरी साँस लेते-हुए कहा, "उसे अगर मालूम हो जाय कि मैं बीमार हूँ, तो वह बगैर आये नही रह सकता।"

आशा समझ गई कि राजलक्ष्मीकी इच्छा है, बिहारीको खबर पहुँचा दी जाय। बिहारीके अभावमे वे आज बिलकुल ही असहाय हो गई हैं।

कमरेकी बत्ती बुझाकर महेन्द्र चाँदनीमें खिडकीके पास चुपचाप खडा था। पढनेमें अब उसका जी नही लगता। घरमें उसे कोई सुख नही। जो अपने परम-आत्मीय है उनके साथ सहज-स्वाभाविक सम्बन्ध दूर हो जानेपर भी उन्हें गैरोंकी तरह आसानीसे छोडा नही जा सकता, और न प्रिय-जनोकी तरह आसानीसे अपनाया ही जा सकता है,—नतीजा यह होता है कि वह अत्याज्य आत्मीयता दिन-रात असह्य भारकी तरह छातीपर जमी ही रहती है। माके सामने जानेकी महेन्द्रकी इच्छा नहीं होती,—महेन्द्र उनके पास जाता है तब वे ऐसे शङ्कित उद्वेगके साथ उसके

मुँहकी तरफ देखने लगती है कि महेन्द्रको उससे बडी चोट पहुँचती है। और आशा किसी कामसे उसके पास आती है तो उसके साथ बात करना भी उसके लिए कठिन हो जाता है, और चुप रहना तो और भी कष्टकर हो उठता है। इस तरह भला कैसे किसीके दिन कट सकते है! महेन्द्रने दृढ प्रतिज्ञा की थी कि कमसे-कम सात दिन तक तो वह विनोदिनीसे बिलकुल ही न मिलेगा। अभी दो दिन और बाकी है। ये दो दिन अब कैसे कटे?

महेन्द्रने पीछेसे किसीके पैरोकी आहट सुनी। समझ गया कि आशा आई है। किन्तु वह ऐसा भाव दिखाकर कि उसे कुछ मालूम ही नही, चुपचाप खडा रहा। आशा उसके इस भावको ताड गई, किन्तु फिर भी वह वापस नही गई। महेन्द्रके पीछे खडी होकर बोली, "एक बात है, उसे सुन लो,—फिर मै चली जाऊँगी।"

महेन्द्रने उसकी तरफ मुँह फेरकर कहा, "क्यो, चली क्यो जाओगी,—बैठ ही जाओ जरा।"

आशा उसके इस सौजन्यपर विशेष ध्यान न देकर स्थिर खडी रही। बोली, "बिहारी-लालाजीको माकी बीमारीकी खबर दे देनी चाहिए।"

बिहारीका नाम सुनते ही महेन्द्रके गहरे हृदय-क्षतपर एकाएक ऐसी चोट पहुँची कि वह तिलमिला उठा। फिर भी उसने अपनेको सम्हालते-हुए कहा, "क्यो, क्यो दे देनी चाहिए जी? मेरे इलाजपर विश्वास नही हो रहा होगा शायद?"

आशाका हृदय इस ग्लानिसे भर उठा था कि उसके पति मन लगाकर माका ठीक-ठीक इलाज नही कर रहे हैं, इसलिए अनायास ही उसके मुँहसे निकल गया, "तो फिर उनकी तबीयत ठीक क्यो नही हो रही,—दिन-दिन बीमारी बढती ही क्यो जा रही है?"

इस साधारण-सी बातकी भीतरी गरमीको महेन्द्र समझ गया। महेन्द्रकी ऐसी गूढ भर्त्सना आशाने पहले कभी भी नही की। महेन्द्र अपने अहङ्कारमे आहत होकर विस्मित विद्रूपके साथ बोल उठा, "तो अब मुझे तुमसे डाक्टरी सीखनी पडेगी मालूम होता है!"

महेन्द्रके इस विद्रूप-वाक्यसे आशाकी पुञ्जीभूत वेदनापर अकस्मात् ऐसी चोट पहुँची कि जिसकी उसे आशा नही थी,—उसपर घरमे अँधेरा था, इसलिए आज वह चिरकालकी निरुत्तर आशा बिना किसी सङ्कोचके उद्दीप्त तेजके साथ

कह उठी, "डाक्टरी मुझसे भले ही न सीखो, पर माकी सेवा करना तो सीख सकते हो!"

आशाके मुँहसे ऐसा जवाब सुनकर महेन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। ऐसे अनभ्यस्त तीव्र वाक्यसे महेन्द्र एकाएक निष्ठुर हो उठा, बोला, "तुम्हारे 'बिहारी-लालाजी'को क्यो इस घरमे आनेकी मनाही की गई है सो क्या तुम्हे मालूम नही! मुझे क्या फिरसे याद दिलाना पडेगा?"

आशा बडी तेजीसे घरसे बाहर निकल गई। लज्जाकी आँधी मानो उसे ढकेल ले गई हो। लज्जा उसे अपने लिए नही थी। जो व्यक्ति अपराधमें डूबा-हुआ है वह ऐसा अन्यायपूर्ण मिथ्या अपवाद मुँहसे उच्चारण कैसे करता है! इतनी बडी निर्लज्जताको पर्वत-प्रमाण लज्जासे भी नही ढका जा सकता जो।

आशाके चले जाते ही महेन्द्र अपने सम्पूर्ण पराजयका अनुभव करने लगा। आशा किसी भी समय किसी भी हालतमे उसे इस तरह धिक्कार दे सकती है, इसकी महेन्द्रने कभी स्वप्नमे भी कल्पना नही की थी। महेन्द्रने देखा, जहाँ उसका सिहासन था वहाँ वह आज धूलमे लोट रहा है। इतने दिन बाद उसे आशङ्का होने लगी, शायद आशाकी वेदना घृणामें परिणत हो रही है।

और फिर तुरत बिहारीका खयाल आते ही विनोदिनीकी चिन्ताने उसे अधीर कर दिया। बिहारी पश्चिमसे लौटा है या नही, कौन जाने! इस बीचमे विनोदिनीको उसका पता भी मालूम हो सकता है, और बिहारीसे उसकी भेट होना भी असम्भव नही। महेन्द्रके लिए अब अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करना कठिन हो उठा।

रातको राजलक्ष्मीके तकलीफ ज्यादा बढ़ गई। उनसे रहा नही गया, उन्होने खुद ही महेन्द्रको बुलाकर कहा, "महेन, बिहारीको देखनेकी मेरी बडी इच्छा है। बहुत दिनोंसे वह आया नही है।"

आशा सिरहानेके पास बैठी सासको पखेसे हवा कर रही थी। वह मुँह नीचा किये रही।

महेन्द्रने कहा, "वह यहाँ नही है, पछाँहकी तरफ कही घूमने गया है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरा मन कह रहा है कि वह यही कही है। तुझसे रूठा-हुआ है, इसलिए नही आ रहा है। तुझे अपनी माकी सौगन्द है, कल तू एक बार उसके घर जाकर देख आ।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा, जाऊँगा।"

आज सब-कोई बिहारीको बुला रहे है ! महेन्द्रको ऐसा लग रहा है मानो उसे सारे ससारने त्याग दिया हो।

४४

दूसरे दिन बडे तड़के ही महेन्द्र बिहारीके घर पहुँचा। देखा, दरवाजेके आगे बहुत-सी बैलगाडियाँ खडी है और उनपर असवाब लादा जा रहा है। महेन्द्रने भज्जूसे पूछा, "क्या बात है, भज्जू ?"

भज्जूने कहा, "बाबू सा'बने बाली-उत्तरपाडामे गङ्गा-किनारे एक बगीचा लिया है, वही सब सामान जा रहा है।"

महेन्द्रने पूछा, "बाबू घरमें है क्या ?"

भज्जूने कहा, "वे सिर्फ दो-तीन दिन कलकत्ते रहकर कल बालीके बगीचे चले गये है।"

सुनकर महेन्द्रका मन आशङ्कासे भर गया। वह अनुपस्थित था, और इस बीचमें जरूर विनोदिनी और बिहारी आपसमे मिल चुके होगे, इसमे उसे जरा भी सन्देह न रहा। वह अपनी कल्पनाकी ऑखोसे देखने लगा, विनोदिनीके मकानके सामने भी इस समय बैल-गाडियोपर सामान लादा जा रहा होगा। और फिर अपने मनमे कहने लगा, 'इसीलिए मुझ-बेवकूफको विनोदिनीने अपने पाससे दूर हटा रखा है।'

एक क्षण भी देर न करके महेन्द्र अपनी गाड़ीमें बैठ गया ; और कोचवानसे बोला, "चलो।"

उसके खयालसे घोड़े काफी जोरसे नही चल रहे थे, और इसके लिए बीच-बीचमे वह कोचवानको फटकारने लगा। गाडी जब पटलडॉगाकी उस गलीमे पहुँची तो महेन्द्रने दूरसे ही देखा कि वहाँ मकान छोडकर जानेका कोई आयोजन ही नही ! उसे भय हुआ कि शायद उसके आनेके पहले ही विनोदिनी अपना काम पूरा कर चुकी है।

महेन्द्र गाडीसे उतरकर जोर-जोरसे दरवाजा खटखटाने लगा। भीतरसे एक बूढ़ेने दरवाजा खोल दिया। महेन्द्रने उससे पूछा, "सब ठीक है तो ?"

नौकरने कहा, "जी हाँ, सब ठीक है।"

महेन्द्रने ऊपर जाकर देखा, विनोदिनी नहाने गई है। उसके निर्जन सोनेके कमरेमे जाकर महेन्द्र उस बिस्तरपर लोट गया जिसपर वह कल रातको सोई थी। और फिर उसने दोनो बाहुओसे उस कोमल बिछौनेको समेटकर अपनी छातीके नीचे दबा लिया, और उसे सूँघकर उसपर मुँह फेरकर कहने लगा, "निष्ठुर! निष्ठुर!"

इस तरह वह अपने हृदयोच्छ्वासको उन्मुक्त करके बिछौनेसे उठकर अत्यन्त अधीर होकर विनोदिनीकी प्रतीक्षा करने लगा। फिर कमरेमे इधरसे उधर टहलते-टहलते उसने देखा कि फर्शके गद्देपर एक अखबार खुला-हुआ पडा है। वक्त काटनेके लिए उसने कुछ अन्यमनस्क-भावसे उसे उठा लिया, और उठाते ही जहाँ उसकी नजर पडी वहाँ बिहारीका नाम देखकर वह चौक पड़ा। क्षण-भरमे उसका सम्पूर्ण मन अखबारके उसी स्थानपर केन्द्रित होकर झुक पडा। कोई-एक पत्र-प्रेरक लिख रहा है, "कम वेतन पानेवाले क्लर्कोके इलाज और तीमारदारीके लिए बाली-उत्तरपाडामे गङ्गाके किनारे बिहारी-बाबूने एक बगीचा लिया है, वहाँ एकसाथ पाँच रोगियोके लिए व्यवस्था की गई है।" इत्यादि।

महेन्द्र सोचने लगा, 'विनोदिनी इस समाचारको पढ चुकी है। पढकर उसका कैसा भाव हुआ होगा? अवश्य ही उसका मन भागनेको फडफडा रहा होगा।' सिर्फ इसीलिए महेन्द्र विचलित हुआ हो सो बात नही, वह सोचने लगा, 'बिहारीके इस सङ्कल्पसे विनोदिनीका मन उसके प्रति जरूर पहलेसे ज्यादा आकृष्ट हुआ होगा, और भक्ति भी बढ गई होगी।' बिहारीको उसने मन-ही-मन 'हम्बग' कहा, और उसके कामको 'पाखण्ड' बताकर मन-ही-मन कहने लगा, 'लोगोके आगे अपनेको परोपकारी सिद्ध करनेका व्यसन बिहारीके बचपनसे ही है। कोई नई बात नही।' और फिर महेन्द्रने बिहारीकी अपेक्षा अपनेको निष्कपट और अकृत्रिम समझकर अपने-आप वाहवाही लेनेकी कोशिश करते-हुए कहा, 'उदारता और आत्म-त्यागका ढोग करके मैं मूढोको धोखा देनेकी कोशिश नही करता, मुझे इससे घृणा है।' किन्तु हाय, इस परमनिश्चेष्ट अकृत्रिमताके माहात्म्यको लोग, अर्थात् एक विशेष व्यक्ति, नही समझेगे। महेन्द्रको ऐसा लगा कि बिहारीने उसपर यह भी एक चाल चली है।

विनोदिनीके आनेकी आहट सुनते ही महेन्द्रने जल्दीसे अखबार मोडकर अपने नीचे रख लिया। सद्य स्नाता विनोदिनीके कमरेमे घुसते ही महेन्द्र उसके चेहरेकी

ओर देखकर विस्मित हो उठा। उसका यह कैसा अपूर्व-सुन्दर परिवर्तन हुआ है! वह मानो इधर कई दिनोसे अग्नि-तपस्या कर रही हो। उसका शरीर कृश हो गया है, और उस कृशताको भेदकर उसके पाण्डुवर्ण मुखपर मानो एक प्रकारकी दीप्ति दमक रही है।

विनोदिनीने बिहारीके पत्रकी आशा छोड दी है। अपने प्रति बिहारीकी अवज्ञाकी कल्पना करके अहोरात्र वह चुपचाप दग्ध हो रही थी। उस दाहसे छुटकारा पानेका उसके पास कोई रास्ता नही था। बिहारी मानो उसीका तिरस्कार करनेके लिए पश्चिम चला गया है, और उस तक पहुँचनेका कोई उपाय उसके हाथमे नही है। कार्य-परायणा और निरलस विनोदिनीका कार्यके अभावमे इस छोटे-से घरमे मानो दम घुट रहा था, उसका सम्पूर्ण उद्यम मानो स्वय उसीको आघात कर-करके क्षत-विक्षत कर रहा था। अपने सम्पूर्ण भावी जीवनको इस प्रेम-हीन कर्म-हीन आनन्द-हीन घरमे, इस छोटी-सी बन्द गलीमे हमेशाके लिए अवरुद्ध समझकर उसकी विद्रोही प्रकृति आयत्तातीय अदृष्टके विरुद्ध मानो आकाशमे सिर फोडनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। जिस मूढ महेन्द्रने विनोदिनीके समस्त मुक्तिके मार्गोको चारो तरफसे बन्द करके उसके जीवनको आज ऐसा सङ्कीण बना दिया है उसके प्रति विनोदिनीके घृणा और विद्वेषकी सीमा न रही। विनोदिनी समझ गई थी कि उस महेन्द्रको अब वह किसी भी तरह अपनेसे दूर नही रख सकती। इस छोटे-से घरमे महेन्द्र प्रतिदिन उसके पास आयेगा और उसके सामने सटकर बैठा करेगा, प्रतिदिन अलक्ष्य आकर्षणसे थोड़ा-थोडा करके बराबर उसकी तरफ अग्रसर होता रहेगा, इस अन्ध-कूपमे, इस समाज-भ्रष्ट जीवनकी पङ्क-शय्यापर, घृणा और आसक्तिमे परस्पर जो रोजकी लडाई होती रहेगी वह अत्यन्त वीभत्स होगी। विनोदिनीने अपने हाथसे अपनी चेष्टासे जमीन खोदकर महेन्द्रके हृदयके अन्तस्तलसे जिस लोल-जिह्वा लोलुपताके क्लेदाक्त सर्पको बाहर निकाला है उसके पुच्छ-पाशसे वह कैसे अपनी रक्षा करेगी? एक तो वैसे ही विनोदिनीका हृदय व्यथित है, उसपर यह छोटा-सा सङ्कीर्ण घर और महेन्द्रकी वासना-तरङ्गका प्रतिक्षण आघात, इसकी कल्पना-मात्रसे विनोदिनीका सम्पूर्ण मन पीडित हो उठता है। जीवनमे इसकी समाप्ति कहाँ है? कब वह इन-सब धर्मसङ्कटोसे छुटकारा पा सकेगी?

विनोदिनीके थके-हुए पीले चेहरेको देखकर महेन्द्रके मनमे ईर्षानल जल उठा। उसमे क्या ऐसी कोई शक्ति नही है जिससे वह बिहारीकी चिन्तासे इस तपस्विनीको बल-पूर्वक उत्पाटित कर सके? ईगल-पक्षी जैसे भेडके बच्चेको क्षणमे झपट्टा मारकर अपने दुर्गम अभ्रभेदी पर्वत-नीडमे ले जाता है, वैसे ही क्या ऐसा कोई मेघ-परिवृत निखिल-विस्मृत स्थान नही है जहाँ अकेला महेन्द्र अपने इस कोमल सुन्दर शिकारको अपनी छातीके नीचे छिपाकर रख सके? ईर्षाके उत्तापसे उसकी इस इच्छाका आग्रह चौगुना बढ गया। अब क्या वह एक क्षणके लिए भी विनोदिनीको आँखोंके ओझल रख सकेगा? बिहारीकी विभीषिकाको अहोरात्र उसे दूर-ही-दूर रखना होगा, उसे सूच्याग्र-प्रमाण अवकाश देनेका साहस अब वह नही कर सकता।

'विरहका ताप रमणीके सौन्दर्यको सुकुमार कर देता है', यह बात महेन्द्रने सस्कृत-साहित्यमे पढी थी। आज विनोदिनीको देखकर वह इस बातका जितना ही अनुभव करने लगा उतना ही सुख-मिश्रित दु खके सुतीव्र आलोड़नसे उसका हृदय मथित होने लगा।

विनोदिनीने क्षण-भर स्थिर रहकर महेन्द्रसे पूछा, "तुम क्या घरसे चाय पीके आये हो?"

महेन्द्र बोला, "मान लो, पी ही आया हूँ, इसके मानी यह नही कि तुम अपने हाथसे और-एक प्याला देनेमे कजूसी करो,—'प्याला मोहि भर दे रे'।"

विनोदिनीने शायद जान-बूझकर ही अत्यन्त निष्ठुर-भावसे महेन्द्रके इस उच्छ्वासपर सहसा चोट की, बोली, "अच्छा, बिहारी-लालाजी आजकल कहाँ है, मालूम है?"

सुनते ही क्षण-मात्रमें महेन्द्रका रग उतर गया। वह बोला, "वो तो अभी कलकत्तासे बाहर है कही।"

"उनका पता क्या है?"

"वो तो किसीको बताना ही नही चाहता।"

"किसी तरह पता नही लगाया जा सकता?"

"मुझे तो इसकी कोई खास जरूरत नहीं मालूम होती।"

"जरूरत ही क्या दुनियामे सब-कुछ है? बचपनकी मित्रता क्या कुछ भी नही?"

"बिहारी मेरा बचपनका मित्र जरूर है, किन्तु तुम्हारे साथ उसकी मित्रता दो-दिनकी है,—फिर भी तकाजा तुम्हारा ही बहुत ज्यादा मालूम होता है।"

"इसीसे तुम्हे लज्जित होना चाहिए। मित्रता कैसे की जाती है सो तुम ऐसे मित्रसे भी न सीख सके!"

"इसके लिए मै इतना दु खित नही हूँ, दु ख तो मुझे इस बातका है कि 'धोखा देकर स्त्रियोका कैसे मन हरण किया जाता है'—यह विद्या मै उससे न सीख सका। सीख लेता तो आज वह मेरे काम आती।"

"वह विद्या सिर्फ इच्छा रहनेसे ही नही सीखी जा सकती, उसके लिए शक्ति चाहिए।"

"ऐसे गुरुदेवका ठिकाना अगर तुम्हें मालूम हो तो बता दो, इस उमरमे एक बार उनके पास जाकर दीक्षा ले आऊँ,—उसके बाद शक्तिकी परीक्षा हो जायगी।"

"अपने मित्रका पता अगर न लगा सको, तो प्रेमकी बाते तुम मेरे आगे न किया करो। बिहारी-लालाजीके साथ तुमने जैसा बरताव किया है उसे देखकर कौन तुमपर विश्वास कर सकता है?"

"मुझपर अगर पूरा विश्वास न करती होती, तो मेरा तुम इतना अपमान नही कर सकती थी। मेरे प्रेमके विषयमे अगर तुम इतनी नि संशय नही होतीं, तो मुझे शायद इतना असह्य दु ख न उठाना पडता। बिहारी किसीके वशमे न आनेकी विद्या जानता है,—वह विद्या अगर वह इस अभागेको सिखा देता, तो उसकी मित्रताका वह सबसे बड़ा काम होता।"

"बिहारी जो मनुष्य ठहरा, इसीसे वह किसीके वशमे नही आता।"—इतना कहकर विनोदिनी अपने खुले-हुए बालोको पीठपर फैलाकर खिडकीके पास जैसे खडी थी वैसे ही खडी रही।

महेन्द्र सहसा उठके खड़ा हो गया और जोरसे दोनो मुट्ठियाँ बाँधकर रोष-गर्जित स्वरमें बोल उठा, "क्यो तुम बार-बार इस तरह मेरा अपमान करनेका साहस करती हो? इतने अपमानका तुम्हे कोई प्रतिफल नही मिलता, सो क्या तुम्हारी शक्तिसे, या मेरे गुणसे? मुझे अगर तुमने पशु ही समझ रखा हो, तो खूँखार पशु ही समझना! मैं आघात करना बिलकुल जानता ही नही, इतना बडा कायर मुझे मत समझ लेना!"

इतना कहकर और क्षण-भर स्तब्ध रहकर वह विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखता रहा, उसके बाद कहने लगा, "विनोद, अब यहाँसे और-कही चलो। हमलोग बाहर चले तो अच्छा। पश्चिमकी तरफ, पहाडपर, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, चलो। यहाँ जीनेकी जगह नही। मै मरा जा रहा हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "चलो, अभी चलो,—पश्चिमकी तरफ घूमा जाय।"

महेन्द्रने कहा, "पश्चिममे कहाँ चलोगी?"

विनोदिनीने कहा, "कही भी नही। एक जगह दो-चार दिन नही ठहरना, बराबर घूमते-फिरते रहना है।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छी बात है, चलो, आज रातको ही चल दे।"

विनोदिनी राजी हो गई, और फिर महेन्द्रके लिए रसोई बनानेकी तैयारी करने चली गई। महेन्द्रने समझा कि बिहारीकी खबरपर विनोदिनीकी दृष्टि नही पडी, अखबार पढनेमे मन लगाने योग्य अवधान-शक्ति विनोदिनीमे अभी नही है। फिर भी दैव-सयोगसे विनोदिनीकी उसपर दृष्टि न पड जाय, इसके लिए महेन्द्र दिन-भर सावधान बना रहा।

४५

बिहारीकी खबर लेकर महेन्द्र वापस आ रहा होगा, इस धारणासे घरमे उसके लिए रसोई बनी थी। बहुत देर होते देख रोग-पीडित राजलक्ष्मी उद्विग्न होने लगी। रात-भर नीद न आनेसे वे वैसे ही बहुत क्लान्त-श्रान्त थी, उसपर महेन्द्रकी उत्कण्ठाने उन्हे और भी क्लिष्ट कर दिया। इससे आशा विचलित हो उठी। उसने पता लगानेके लिए नौकरको भेजा तो मालूम हुआ कि गाडी लौट आई है। कोचवानसे पता चला कि 'बाबू बिहारी-बाबूके घर होते-हुए पटलडाँगा किसीके यहाँ गये है।' सुनते ही राजलक्ष्मी दीवारकी तरफ करवट लेकर स्तब्ध होकर सो रही। आशा उनके सिरहानेके पास चित्रार्पितकी तरह स्थिर बैठी पखासे हवा करती रही। और-और दिन राजलक्ष्मी आशासे यथासमय खा आनेके लिए कहती थी, आज उन्होने कुछ भी नही कहा।

कल रातको माकी कठिन पीडा देखकर भी महेन्द्र जब आज सवेरे ही विनोदिनीके मोहमे दौडा चला गया, तब फिर राजलक्ष्मीके लिए इस ससारमे

किसीसे कुछ पूछनेको. चेष्टा करनेको, इच्छा करनेको रह ही क्या गया ? वे समझ गई कि महेन्द्रने उनकी बीमारीको मामूली बात समझी है। वह यह समझकर निश्चिन्त है कि माको तो कई बार ऐसा हुआ है और फिर वे अच्छी हो गई है, अबकी बार भी वैसा ही हुआ है और वे अच्छी हो जायेगी। किन्तु महेन्द्रका इस तरह आशङ्का-शून्य उद्वेग-शून्य रहना ही राजलक्ष्मीको अत्यन्त कष्टकर मालूम होने लगा। 'वे सोचने लगी, 'महेन्द्र अपनी इस प्रेमोन्मत्ततामे किसी आशङ्काको, किसी कर्तव्यको, अपने मनमे स्थान ही नही देना चाहता,—वह माके कष्टको, माके रोगको इतनी हलकी बात समझता है! कही उसे माकी रोग-शय्याके आस-पास घिर न जाना पडे, इस डरसे वह ऐसा निर्लज्ज होकर जरा-सा अवकाश पाते ही विनोदिनीके पास भाग गया!' अपनी आरोग्यताके प्रति राजलक्ष्मीका जरा भी उत्साह न रहा। वे मारे अभिमानके यही चाहने लगी कि उनका रोग कभी भी अच्छा न हो और महेन्द्र जान जाय कि उसकी धारणा कितनी गलत है।

करीब दो बजे आशाने कहा, "मा, दवा पीनेका समय हो गया।"

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर चुप रही। आशा जब दवा लानेके लिए उठने लगी तब उन्होने कहा, "दवाकी अब कोई जरूरत नही, बहू, तुम जाओ।"

आशा सासका अभिमान समझ गई। और उस अभिमानने सक्रामक होकर उसके हृदयके आन्दोलनको दूना कर दिया। आशासे रहा नही गया, उसने अपने रोनेको काफी दबाया, किन्तु फिर भी वह घुमड-घुमडकर रोने लगी। राजलक्ष्मीने धीरेसे आशाकी तरफ करवट लेकर उसके हाथपर अपना सकरुण स्नेहपूर्ण हाथ फेरते-हुए कहा, "बहू, रानी-बिटिया मेरी, तुम्हारी उमर अभी कम है,—सुखका मुँह देखनेके लिए तुम्हारे हाथमे अब भी काफी समय है। मेरे लिए अब तुम कोशिश-जतन करना छोड दो, बेटी, मै बहुत दिन जी चुकी हूँ, अब जीकर क्या होगा!"

सुनते ही आशाका रोना एकाएक ऐसा उमड पडा कि उसे आँचलसे अपना मुँह बन्द कर लेना पडा।

इस तरह रोगीके घरका वह दिन मन्द-गतिसे निरानन्द बीत गया। हालाँ कि अभिमानके बावजूद दोनो नारियोको भीतर-ही-भीतर यह आशा थी कि अब भी महेन्द्र आ सकता है। जरा-सा शब्द होते ही दोनो-की-दोनो चौक उठती थी, और इस बातको दोनो ही समझ रही थी।

क्रमश. दिवसान्तका आलोक अस्पष्ट हो आया। कलकत्तेके अन्त.पुरोमे जो गोधूलिकी आभा है, उसमे न तो आलोककी प्रफुल्लता है और न अन्धकारका आवरण ही। वह तो केवल विषादको भारी और निराशाको अश्रुहीन कर डालती है, कार्य और आश्वासनका बल हरण कर लेती है, किन्तु विश्राम और वैराग्यकी शान्ति नही लाती। रोगीके घरकी उस शुष्क और श्रीहीन सन्ध्यामे आशा चुपचाप उठकर एक बत्ती जलाकर ले आई।

राजलक्ष्मीने कहा, "बहू, रोशनी मुझे अच्छी नही लगती, बत्ती तुम बाहर ही रख दो।"

आशा बत्ती उठाकर बाहर रख आई। अन्धकार जब घना बनकर उस छोटे-से कमरेमे बाहरकी अनन्त रात्रिको ले आया तब आशाने साससे मृदु स्वरमे पूछा, "मा, आदमी भेजकर उन्हे खबर पहुँचा दूँ ?"

राजलक्ष्मीने दृढ स्वरमे कहा, "नही, बहू, तुझे मेरी सौगन्द है, तू महेन्द्रको खबर मत देना।"

सुनकर आशा स्तब्ध रह गई,—उसमे रोनेकी भी शक्ति नही थी।

बाहरसे नौकरने कहा, "बाबू साहबने एक चिट्ठी भेजी है।"

सुनकर क्षणमे राजलक्ष्मीको ऐसा लगा कि महेन्द्रकी अकस्मात् शायद तबीयत खराब हो गई है, इसीसे खुद नही आ सका है, चिट्ठी भेज दी है। वे अनुतप्त और व्यस्त होकर बोली, "देखो तो, बहू, महेन्द्रने क्या लिखा है।"

आशाने बाहर बत्तीके पास जाकर काँपते-हुए हाथसे चिट्ठी पढी। महेन्द्रने लिखा है कुछ दिनसे यहाँ उसे अच्छा नही लग रहा है, इसलिए वह पश्चिमकी तरफ घूमने जा रहा है। माकी बीमारीके बारेमे ज्यादा कुछ चिन्ता करनेकी जरूरत नही। उन्हे नियमित-रूपसे देखते रहनेके लिए उसने डाक्टर नवीनसे कह दिया है। रातको नीद न आवे या सिरमे दर्द हो, तो, कब क्या करना चाहिए, सो भी चिट्ठीमें लिख दिया है। और साथ ही हलके और पुष्टिकर पथ्यके दो डब्बे भी भेज दिये है। चिट्ठीके अन्तमे फिलहाल गिरिडीहके पतेसे बराबर माकी सेहतका समाचार भेजते रहनेका भी अनुरोध किया है।

चिट्ठी पढकर आशा स्तम्भित रह गई। प्रबल धिक्कार उसके दुखको भी अतिक्रम कर गया। यह निष्ठुर सवाद वह माको कैसे सुनावे ?

आशाके इस विलम्बसे राजलक्ष्मी और भी ज्यादा उद्विग्न हो उठी। वे बोली, "बहू, महेन्द्रने क्या लिखा है, जल्दी बताओ मुझे।" कहते-कहते वे आग्रहके मारे बिस्तरपर उठके बैठ गई।

आशाने तब भीतर आकर धीरे-धीरे पूरी चिट्ठी पढकर सुना दी। राजलक्ष्मीने कहा, "अपनी तबीयतके बारेमे उसने क्या लिखा है, जरा उस जगह फिरसे पढ़कर सुनाना।"

आशा फिरसे पढकर सुनाने लगी, "कुछ दिनसे मुझे यहाँ अच्छा नही लग रहा है, इसलिए मै—"

राजलक्ष्मी कहने लगी, "रहने दो, रहने दो, आगे पढनेकी जरूरत नही। यहाँ अच्छा लगेगा कैसे? बूढी मा मरती भी तो नही, बीमार पड़ी-पडी सिर्फ उसे जलाया ही करती है। क्यो तुमने उसे बीमारीकी खबर दी? घरमे था, एक कोनेमे बैठा पढता-लिखता था, अच्छा था, किसीसे कुछ लेन-देन नही था। बीचमें माकी बीमारीकी बात छेडकर उसका घर छुडानेसे तुम्हे क्या सुख मिला गया? मै यहाँ मरी पडी रहूँ तो उससे किसीका क्या नुकसान है? इतने दुखमे भी तुम्हारे दिमागमे जरा बुद्धि नही आई, बहू!" इतना कहकर वे खाटपर पड रही।

इतनेमे बाहर जूतोकी आवाज सुनाई दी। नौकरने आकर खबर दी, "डाक्टर साहब आये है।" और साथ-ही-साथ डाक्टरने खाँसते-हुए कमरेमे प्रवेश किया। आशा झटपट घूँघट काढकर खाटके पीछेकी तरफ खडी हो गई। डाक्टरने राजलक्ष्मीसे पूछा, "आपको क्या तकलीफ है बताइये तो?"

राजलक्ष्मी क्रोधके स्वरमे बोल उठी, "तकलीफ क्या होगी! किसीको मरने भी न दोगे? तुम्हारी दवा लेनेसे ही क्या मै अमर हो जाऊँगी?"

डाक्टरने सान्त्वनाके स्वरमे कहा, "अमर तो कोई भी किसीको नही कर सकता,—पर कष्ट दूर करनेकी कोशिश तो—"

राजलक्ष्मी बोल उठी, "कष्ट दूर करनेका सबसे अच्छा इलाज था तब जब विधवाएँ चितामे जल मरती थी,—अब तो सिर्फ बाँधके मारना रह गया है। जाओ डाक्टर-बाबू, तुम जाओ,—मुझे अब और ज्यादा परेशान न करो। मै जरा अकेली रहना चाहती हूँ।"

डाक्टरने डरते-हुए कहा, "एक बार आपकी नाडी—"

राजलक्ष्मी अत्यन्त विरक्तिके स्वरमे कह उठी, "मै कहती हूँ, तुम जाओ। मेरी नाडी बहुत अच्छी है,—यह नाडी जल्दी छूटनेकी नही।"

डाक्टर लाचार होकर बाहर चला गया, और फिर आशाको बुला भेजा। आशासे उसने सारा हाल जान लिया और फिर कमरेमे आकर राजलक्ष्मीसे बोला, "देखिये, महेन्द्र-बाबू मुझपर विशेष-रूपसे भार दे गये है। मुझे अगर आप इलाज नही करने देगी, तो उन्हे बडा कष्ट होगा।"

महेन्द्रको कष्ट होगा! राजलक्ष्मीको यह बात महज उपहास-सी प्रतीत हुई। उन्होने कहा, "महेन्द्रके लिए तुम चिन्ता मत करो। कष्ट तो ससारमे सभीको भोगना पडता है। इतने-से कष्टसे महेन्द्रको बहुत ज्यादा सदमा नही पहुँचेगा। तुम अब जाओ, डाक्टर! मुझे जरा सोने दो।"

डाक्टर समझ गया कि रोगीको इस समय ज्यादा परेशान करना ठीक नही। वह धीरे-धीरे बाहर निकल गया, और आशाको बुलवाकर, 'रोगीके लिए उसे क्या-क्या करना चाहिए' सब समझाकर घर चला गया।

आशाके भीतर जाते ही राजलक्ष्मीने उससे कहा, "जाओ, बेटी, तुम अपने कमरेमे जाकर थोडा आराम करो। दिन-भरसे रोगीके पास बैठी हो। जाके तुम हरियाकी माको भेज दो, वह बगलके कमरेमे बैठी रहेगी।"

आशा राजलक्ष्मीको जानती थी। यह उनका स्नेहका अनुरोध नही, आदेश है,—पालन करनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नही। हरियाकी माको भेजकर वह अपने अँधेरे कमरेमे जाकर शीतल भूमि-शय्यापर पड रही।

दिन-भरके उपवास और कष्टसे उसका शरीर-मन श्रान्त और अवसन्न हो गया था। मुहल्लेके एक घरमे उस दिन रह-रहकर ब्याहके बाजे बज रहे थे। इस समय फिर शहनाईने रागिनी छेड दी। उस रागिनीके आघातसे रात्रिका सम्पूर्ण अन्धकार मानो स्पन्दित होकर बार-बार आशाको आघातपर आघात करने लगा। उसकी विवाह-रात्रिकी प्रत्येक छोटी-से-छोटी घटनाने सजीव होकर रात्रिके आकाशको स्वप्नच्छविसे भर दिया। उस दिनकी रोशनी कोलाहल और भीड-भम्भडने, उस दिनके माला-चन्दन नवीन वस्त्र और होम-धूपकी सुगन्धने, उस दिनकी नववधूके शङ्कित लज्जित आनन्दित हृदयके निगूढ कम्पनने, उस दिनकी सारी-की-सारी स्मृतिने जितना उसे चारो तरफसे घेरकर पकडना चाहा, उतनी

ही उसके हृदयकी व्यथा प्राण पाकर उसपर शक्ति-प्रयोग करने लगी। दारुण दुर्भिक्षमे भूखा बालक जैसे कुछ खानेको देनेके लिए माको बार-बार दोनो हाथोसे पीटता रहता है उसी तरह जाग्रत सुखकी स्मृति अपने भूखे पेटके लिए आशाकी छातीपर बार-बार रो-रोकर कराघात करने लगी। अवसन्न आशाको फिर उसने पडा नही रहने दिया। वह उठके बैठ गई, और दोनो हाथ जोडकर देवताके आगे प्रार्थना करने लगी तो इस ससारमे उसकी एकमात्र प्रत्यक्ष देवी मौसीकी पवित्र स्निग्ध मूर्ति उसके अश्रु-वाष्पाच्छन्न हृदयमे आविर्भूत हो उठी। अब तक आशा यही प्रण किये बैठी थी कि अब वह अपनी घर-गृहस्थीके दु ख-सङ्कटमे उस तपस्विनीको कभी नही बुलायेगी, किन्तु उसे अपनी मौसीके सिवा ससारमे और-कही भी कोई उपाय नही सुझाई दिया। आज उसके चारो तरफ जमे-हुए निविड दु खमे जरा भी कही कोई रन्ध्र-मात्र नही था। इसलिए आज वह कमरेमे बत्ती जलाकर अपनी पालथीपर कापी-कागज रखकर बार-बार आँसू पोछती-हुई मौसीको चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखा —

"श्रीचरणकमलेषु,

मौसी, आज तुम्हारे सिवा मेरा और-कही कोई नही है। एक बार आकर इस दुखियाको अपनी गोदमे उठा लो। नही-तो मै कैसे जीऊँगी? ज्यादा और क्या लिखूँ, मै नही जानती। तुम्हारे चरणोमे मेरा सैकडो हजारो प्रणाम पहुँचे। तुम्हारी स्नेहकी—चुन्नी।"

४६

अन्नपूर्णा काशीसे कलकत्ते आ गई, और धीरे-धीरे राजलक्ष्मीके कमरेमें प्रवेश करके उन्होने राजलक्ष्मीको प्रणाम करके चरणोकी रज माथेसे लगाई। बीचका विरोध-विच्छेद भूलकर राजलक्ष्मी उनसे ऐसे मिली जैसे खोया-हुआ धन उन्हे फिरसे मिल गया हो। भीतर-ही-भीतर अपने अगोचरमे वे अन्नपूर्णाको चाह रही थी, अन्नपूर्णासे मिलते ही इस बातको वे समझ गई। बहुत दिन बाद आज राजलक्ष्मीने इस बातका अनुभव किया कि इतने दिनोसे उनके अन्दर जो अवसाद और क्षोभ इकट्ठा हो रहा था उसका कारण केवल अन्नपूर्णाका अभाव ही था। क्षण-भरमे उनका व्यथित हृदय अपनी पहली जगहपर आ गया। महेन्द्रके जन्मसे

भी पहले इन दोनो देवरानी-जिठानीने जब वधूके रूपमे इस परिवारके समस्त सुख-दु खको एक होकर वरण किया था, पूजाके उत्सवमे, दु ख और शोकमे, दोनो जब एकसाथ इस गृहस्थीके रथमे यात्रा कर रही थी, तबके उस घनिष्ठ सखीत्वने राजलक्ष्मीके हृदयको आज क्षण-मात्रमे आच्छन्न कर दिया। जिनके साथ सुदूर अतीतकालमे एकसाथ जीवन-यात्रा आरम्भ की थी, नाना व्याघातोके बाद तबकी वह बाल्य-सहचरी ही आज परम दु खके दिनोमे उनकी पार्श्ववर्तिनी हुई। उन दिनोके समस्त सुख-दु ख और प्रिय घटनाओकी कोई स्मृति रह गई है तो वह अन्नपूर्णा ही है। जिसके लिए राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णाको चोट पहुँचाई थी वह आज कहाँ है ?

अन्नपूर्णाने रुग्न जिठानीके पास बैठकर उनका दाहना हाथ अपने हाथमे लेते-हुए कहा, "जीजी !"

राजलक्ष्मीने कहा, "मझली-बहू !" इसके आगे वे और कुछ भी न कह सकी। उनकी दोनो आँखोसे आँसू बहने लगे। यह दृश्य देखकर आशासे रहा नही गया, वह बगलके कमरेमे जाकर रोने लगी।

अन्नपूर्णाको राजलक्ष्मी या आशासे महेन्द्रके सम्बन्धमे कुछ पूछनेका साहस नही हुआ। अन्तमे साधुचरणको बुलाकर उन्होने पूछा, "मामा, महेन्द्रकी क्या खबर है ?"

साधुचरणने महेन्द्र और विनोदिनीका सारा किस्सा कह सुनाया।

अन्नपूर्णाने पूछा, "बिहारीकी क्या खबर है ?"

साधुचरणने कहा, "बहुत दिनोसे वे यहाँ नही आये,—उनके विषयमे तो मुझे विशेष-कुछ मालूम नही।"

अन्नपूर्णाने कहा, "एक बार बिहारीके घर जाकर पता तो लगाओ।"

साधुचरणने जाकर पता लगाया ; और वापस आकर कहा, "वे घरमे नही है। बाली-उत्तरपाडामें गङ्गा-किनारे एक बगीचा लिया है, वहाँ गये हैं।"

अन्नपूर्णाने फिर नवीन-डाक्टरको बुलवाकर उनसे रोगीकी सब हालत पूछी। डाक्टरने कहा, "हृदयकी कमजोरीके साथ जलोदर भी हो गया है। अचानक कब क्या हो जाय, कुछ कहा नही जा सकता।"

सन्ध्याके बाद राजलक्ष्मीके तकलीफ जब बहुत बढ़ने लगी, तब अन्नपूर्णाने उनसे कहा, "जीजी, एक बार डाक्टरको बुला लिया जाय तो अच्छा रहे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "नही, मझली-बहू, डाक्टरसे मेरा कुछ नही होनेका।"

अन्नपूर्णाने कहा, "तो तुम किसे बुलाना चाहती हो, बताओ ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "बिहारीको एक बार खबर पहुँचा दो तो अच्छा हो।"

अन्नपूर्णाके हृदयको बडी गहरी चोट पहुँची। उस दिन दूर-प्रवासमे बिहारीको उन्होने रातके अन्धकारमे घरके दरवाजेसे ही अपमान करके विदा कर दिया था, उस वेदनाको वे आज तक भूल नही सकी है। बिहारी अब कभी भी उनके दरवाजेपर नही आयेगा। इस जीवनमे बिहारीके उस अनादरका अब वे कभी भी प्रतिकार कर सकेगी, इसकी उन्हे कोई आशा ही नही थी।

अन्नपूर्णा एक बार ऊपर गईं महेन्द्रके कमरेमे। घर-भरमे यह कमरा ही एक दिन आनन्द-निकेतन था। आज उस कमरेमे कोई सौन्दर्य नही। सारा सामान विश्रृङ्खल पडा-हुआ है, साज-सज्जा अनादृत हो रही है। छतके गमलोमे कोई पानी तक नही देता, पौधे सब सूख गये है।

मौसी छतपर गई है, यह मालूम होते ही आशा भी धीरे-धीरे ऊपर पहुँच गई। अन्नपूर्णाने उसे छातीसे लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। आशा दोनो हाथोसे उनके पाँव पकडकर बार-बार उनपर अपना सिर छुआने लगी। कहने लगी, "मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, मुझे शक्ति दो। आदमी इतना कष्ट सह सकता है, इसकी मैने कभी कल्पना भी नही की थी। मैया री, इस तरह अब और कितने दिन सहती रहूँगी!"

अन्नपूर्णा वही जमीनपर बैठ गई, आशा उनके पैरोके पास सिर रखकर लोट गई। अन्नपूर्णाने उसका सिर अपनी गोदमे उठा लिया, और मुँहसे कोई बात न कहकर वे निस्तब्ध-भावसे हाथ जोडकर भगवानका स्मरण करने लगी।

अन्नपूर्णाके स्नेह-चिह्नित नि शब्द आशीर्वादने आशाके गभीर हृदयमें प्रवेश करके बहुत दिन बाद उसमे शान्ति ला दी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसका अभीष्ट अब सिद्ध होनेवाला ही है। देवता उस-जैसी मूढकी अवहेलना कर सकते है, किन्तु मौसीकी प्रार्थनाको नही ठुकरा सकते।

इस तरह आशा अपने हृदयमे आश्वास और बल पाकर बहुत देर बाद एक दीर्घ निश्वास छोडकर उठके बैठ गई, और बोली, "मौसी, बिहारी-लालाजीको एक चिट्ठी लिखकर बुला लो तो अच्छा हो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "नही, चिट्ठी लिखनेसे काम नही चलेगा।"

आशाने कहा, "तो फिर उन्हे खबर कैसे दोगी?"

अन्नपूर्णाने कहा, "कल मै ही खुद बिहारीसे मिलनेके लिए जाऊँगी।"

४७

बिहारी जब पश्चिममे घूम रहा था, तब वह अनुभव करने लगा था कि किसी-एक काममे बिना लगे उसे शान्ति नही मिल सकती। यही सोचकर उसने कलकत्तेके गरीब क्लर्कोकी चिकित्सा और शुश्रूषाका भार अपने ऊपर लिया है। ग्रीष्मऋतुमे छोटे गड्ढेकी मछली जैसे कीचड-शुदा कम पानीमे फडफडाकर दम तोडती है, कलकत्तेके गली-निवासी अल्प-उपार्जन-क्षम परिवार-भारग्रस्त क्लर्कोका वञ्चित जीवन भी ठीक वैसा ही है। उनकी दयनीय दशापर बिहारीका हृदय बहुत दिनोसे व्यथित रहता था। उनके लिए विहारीने अब वनकी छाया और गङ्गा-तटकी खुली हवा दान करनेका सङ्कल्प किया है।

कलकत्तेके उस पार बाली-उत्तरपाडामे गङ्गाके किनारे उसने एक बगीचा लेकर चीनी बढइयोसे उसमे छोटे-छोटे सुन्दर झोपडे बनवाना शुरू कर दिया। किन्तु उसका मन शान्त नही हुआ। काममे प्रवृत्त होनेके दिन ज्यो-ज्यो निकट आने लगे त्यो-त्यो उसका चित्त अपने सङ्कल्पसे विमुख हो उठा। उसका मन बार-बार यही कहने लगा कि 'इस काममे कोई सुख नही, कोई रस नही, कोई सौन्दर्य नही, यह केवल शुष्क भार-मात्र है।' कामकी कल्पनाने बिहारीको इसके पहले कभी भी इस तरह क्लेश नही दिया। एक दिन था जब बिहारीको विशेष किसी चीजकी जरूरत नही थी, उसके सामने जो भी कुछ आता था उसमे वह अनायास ही अपनेको लगा सकता था। अब उसके मनमे कैसी-तो एक भूख-सी पैदा हो गई है, पहले उसे मिटाये बिना उसका और किसी बातमे मन ही नही लग रहा है। पहलेके अभ्यासवश वह काम छेडता जरूर है, पर दूसरे ही क्षण सब छोड-छाडकर छुटकारा पाना चाहता है।

बिहारीके भीतर जो यौवन निश्चल-भावसे सोया-हुआ था, जिसके विषयमे उसने कभी कुछ सोचा तक नही, विनोदिनीकी 'जादूकी लकडी'के स्पर्शसे आज वह जाग उठा है, और तुरत-पैदा-हुए गरुडकी तरह वह अपनी खुराकके लिए सारी

दुनिया छाने डाल रहा है। इस क्षुधित प्राणीके साथ बिहारीका पहले कोई परिचय नही था, किन्तु अब उसके मारे वह हैरान-परेशान है। अब वह कलकत्तेके क्षीण-जीर्ण अल्पायु क्लर्कोंको लेकर क्या करेगा ?

आषाढकी गङ्गा सामनेसे बही चली जा रही है। गङ्गाके उस पार नील मेघोकी घन-घटा घने वृक्षोके ऊपर भारसे झुकी आ रही है। सम्पूर्ण नदी-तल फौलादकी तरवारकी तरह कही उज्ज्वल-कृष्णवर्ण धारण किये-हुए है तो कही आगकी तरह चमक-चमक उठता है। नवीन वर्षाके इस समारोहपर ज्यो ही बिहारीकी दृष्टि पडती है त्यो ही उसके हृदयका द्वार उद्घाटन करके आकाशके इस नील-स्निग्ध प्रकाशमें न-जाने कौन-तो अकेली निकल आती है! न-जाने कौन अपने स्नान-सिक्त घन-तरङ्गायित कृष्ण केश उन्मुक्त करके सामने आ खडी होती है, और वर्षा-आकाशसे विदीर्ण-मेघोमेंसे विच्छुरित समस्त विच्छिन्न सूर्य-किरणोको बटोरकर न-जाने कौन एकमात्र उसीके मुँहपर अनिमेष-दृष्टिकी दीप्ति कातर प्रार्थना-सी प्रसारित कर जाती है!

पहले जो जीवन उसका सुख-सन्तोषसे बीता है, आज उसे वह परम क्षति समझ रहा है। ऐसी कितनी ही मेघाच्छन्न सन्ध्याएँ और कितनी ही पूर्णिमाकी राते बिहारीके जीवनमे आई है, और वे उसके शून्य हृदयके द्वारके पास आकर सुधापात्र हाथमे लिये-हुए चुपचाप लौट गई हैं। उस दुर्लभ शुभ-लग्नमे कितने सङ्गीत अनारब्ध और कितने उत्सव असम्पन्न रह गये है, उनका कोई ठीक है! बिहारीके मनमें जो पूर्व-स्मृतियाँ थी, विनोदिनी उस दिनके उद्यत-चुम्बनकी रक्तिम आभासे उन्हें आज ऐसी फीकी और ऐसी अकिंचित्कर कर गई! महेन्द्रकी छायाके रूपमे उसके जीवनके अधिकाश दिन कैसे कट गये थे, उनमें क्या चरितार्थता थी ? प्रेमकी वेदनामे सम्पूर्ण जल-स्थल-आकाशके केन्द्र-कुहरसे ऐसी रागिनी ऐसी वंशी बजती है, इसका तो अचेतन बिहारी पहले कभी अनुमान भी न कर सका था। जिस विनोदिनीने दोनो बाहुओसे वेष्टित करके क्षण-भरमे अकस्मात् उसे ऐसे अनुपम सौन्दर्य-लोकमे पहुँचा दिया है उसे वह अब कैसे भूलेगा? विनोदिनीकी वह दृष्टि और उसकी वह आकाक्षा आज जो उसके सर्वत्र व्याप्त हो पडी है। विनोदिनीकी उन व्याकुल घनी साँसोने बिहारीके रक्त-स्रोतको आज जो तरङ्गित कर रखा है और उसके स्पर्शके कोमल उत्तापने बिहारीके पुलकाविष्ट हृदयको

आज जो फूलकी तरह प्रफुल्लित कर रखा है! उसे अब वह कैसे भूलेगा? किन्तु फिर भी उस विनोदिनीसे बिहारी आज इतना दूर क्यो है? इसका कारण यह है कि विनोदिनीने जिस सौन्दर्य-रससे बिहारीको अभिषिक्त कर दिया है, ससारमें विनोदिनीके साथ उस सौन्दर्यके योग्य किसी सम्बन्धकी वह कल्पना नही कर सकता। पङ्कजको उसके जन्म-जलाशयसे विच्छिन्न करनेमे उसके साथ थोडा पङ्क भी निकल आता है। किस तरह उसे वह ऐसी जगह स्थापित कर सकता है जहाँ सुन्दर वीभत्स न हो उठे? इसके सिवा, महेन्द्रसे कही अगर छीनाझपटी हो गई, तो सारा व्यापार ऐसा कुत्सित आकार धारण कर लेगा कि उसकी सम्भावनाको भी बिहारी अपने मनमे स्थान नही दे सकता। इसीलिए बिहारी एकान्त निभृत गङ्गा-तटपर विश्व-सङ्गीतके बीचमे अपनी मानस-प्रतिमाको प्रतिष्ठित करके अपने हृदयको धूपकी तरह दग्ध कर रहा है। इसीलिए वह चिट्ठी लिखकर विनोदिनीकी कोई खबर-सुध नही ले रहा है कि कही ऐसा न हो कि कोई ऐसा सवाद मिले जिससे उसका सुख-स्वप्नका जाल छिन्न-विच्छिन्न हो जाय।

मेघाच्छन्न प्रभातमे बिहारी अपने बगीचेके दक्षिणकी तरफ फलसे-भरे जामुनके पेडके नीचे पडा-पडा अलस-भावसे गङ्गाकी नावोका जाना-आना देख रहा था। क्रमश. दिन चढने लगा। नौकरने आकर रसोईके बारेमे पूछा तो बिहारीने कह दिया, "अभी रहने दो।" मिस्तिरियोके सरदारने आकर कुछ विशेष परामर्शके लिए उसे काम देखनेके लिए ले जाना चाहा तो उसने कह दिया, "अभी नही, थोडी देर बाद।"

इतनेमें, बिहारी सहसा चौक उठा, देखा कि सामने अन्नपूर्णा खड़ी है। वह भडभडाकर उठ बैठा, और दोनो हाथोसे अन्नपूर्णाके पाँव पकड़कर जमीनसे मस्तक लगाकर बहुत देर तक उन्हें प्रणाम करता रहा। अन्नपूर्णा परम स्नेहके साथ उसके माथे और पीठपर अपना दाहना हाथ फेरती रही; और फिर अश्रु-विजडित स्वरमे बोली, "बेटा बिहारी, तू इतना दुबला कैसे हो गया?"

बिहारीने कहा, "फिरसे अपनी चाचीका स्नेह पानेके लिए, चाची!"

सुनकर अन्नपूर्णाकी आँखोसे झरझर आँसू झरने लगे।

बिहारीने चंचल होकर कहा, "चाची, तुमने अभी खाया-पीया नही होगा?"

अन्नपूर्णाने कहा, "नही, अभी मेरा समय नही हुआ।"

बिहारीने कहा, "चलो, मै चलकर रसोईकी तैयारी कर दूँ। आज बहुत दिन बाद मै तुम्हारे हाथकी रसोई और तुम्हारी थालीका प्रसाद पाऊँगा।"

महेन्द्र और आशाके सम्बन्धमे बिहारीने कोई बात ही नही छेडी। अन्नपूर्णाने एक दिन अपने हाथसे बिहारीके लिए उधरका दरवाजा बन्द कर दिया था। अभिमानके साथ बिहारीने उस निष्ठुर-निषेधका पालन किया है।

भोजन करनेके बाद अन्नपूर्णाने कहा, "नाव घाटमे लगी-हुई है,—तुझे एक बार कलकत्ता चलना पडेगा।"

बिहारीने कहा, "कलकत्तेमे मेरा क्या प्रयोजन है, चाची?"

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी बहुत बीमार है, तुझे देखना चाहती है।"

सुनकर बिहारी चकित हो उठा। बोला, "महेन-भइया कहाँ है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "वह कलकत्तेमे नही है, पश्चिमकी तरफ घूमने गया है।"

सुनते ही बिहारीका चेहरा फक पड गया, वह चुप रहा, कुछ बोला नही।

अन्नपूर्णाने पूछा, "तुझे क्या सब बाते मालूम नही?"

बिहारीने कहा, "कुछ-कुछ तो मालूम है,—पर अन्तमें क्या हुआ सो मुझे नही मालूम।"

तब अन्नपूर्णाने विनोदिनीको लेकर महेन्द्रके पश्चिम भाग जानेकी बात बता दी। बिहारीकी दृष्टिमे उसी क्षण जल-स्थल-आकाशका सारा रग ही बदल गया। उसके कल्पना-भण्डारमे सचित सम्पूर्ण रस क्षण-मात्रमे तिक्त हो उठा। 'तो क्या मायाविनी विनोदिनी उस दिनकी सन्ध्या-वेलामे मेरे साथ महज एक खेल खेल गई? उसका वह प्रेमका आत्म-समर्पण महज एक छल था! वह अपना गाँव छोडकर निर्लज्ज-भावसे महेन्द्रके साथ अकेली पश्चिम भाग गई। धिक्कार है उसे, और धिक्कार है मुझे। मै मूढ हूँ जो एक क्षणके लिए भी मैंने उसका विश्वास किया।'

हाय री मेघाच्छन्न आषाढकी सन्ध्या, हाय री वर्षान्तकी पूर्णिमा-रात्रि, तुम्हारा इन्द्रजाल इतनी जल्दी कहाँ बिला गया?

४८

बिहारी सोच रहा था, दु खिनी आशाके मुँहकी तरफ वह देखेगा कैसे? ड्योढीके भीतर जब वह घुसा तो नाथ-हीन घरके घनीभूत विषादने उसे उसी क्षण घेर लिया। घरके दरवान और नौकर-चाकरोके मुँहकी तरफ देखकर अपने लापता उन्मत्त मित्रके लिए लज्जासे उसका मस्तक झुक गया, परिचित भृत्योंसे वह पहलेकी तरह स्निग्ध-भावसे कुशल तक न पूछ सका। और अन्त पुरमे घुसते समय उससे पाँव उठाये नही उठने लगे। सारे ससारके सामने असहाय आशाको महेन्द्र प्रकाश्य-रूपसे जिस दारुण अपमानमे झोककर चला गया है, जो अपमान नारीके चरमतम आवरणको हरण करके उसे सम्पूर्ण ससारके कुतूहल-पूर्ण कृपा-दृष्टि-वर्षणके बीच खडा कर देता है, उस अपमानकी अनावृत प्रकाश्यतामें बिहारी कुण्ठित-व्यथित आशाको देखेगा कैसे?

किन्तु इन-सब बातोके सोचने-विचारने और सङ्कोच करनेका अब अवसर नही रहा। बिहारीके अन्त पुरमे प्रवेश करते ही आशाने बडी तेजीसे आकर उससे कहा, "लालाजी, जल्दी आओ, जल्दीसे चलकर माको देखो, उन्हें बडी तकलीफ हो रही है।"

बिहारीके साथ आशाका प्रकाश्य-रूपसे यही पहला आलाप है। दु खके दिनोमे आँधीका सिर्फ एक ही मामूली-सा झोका सम्पूर्ण व्यवधानको उडा ले जाता है, दूर-दूर रहनेवालोको सहसा आनेवाली बाढ एक सङ्कीर्ण नावमे एकत्र कर देती है।

आशाकी इस सङ्कोच-हीन व्याकुलतासे बिहारीको बड़ी गहरी चोट पहुँची। महेन्द्र अपने घरको क्यासे क्या कर गया है, इस जरा-सी घटनासे ही मानो वह बहुत ज्यादा समझ गया। दुर्दिनकी ताडनासे घरका सौन्दर्य जैसे उपेक्षित हो रहा है, घरकी लक्ष्मीकी लज्जा भी उसी तरह अपनी 'श्री'की रक्षा करनमें असहाय हो गई है, उसका छोटा-मोटा आवरण-अन्तराल और मर्यादा सब-कुछ मानो अलग जा गिरा है, उसकी तरफ नजर उठाकर देखने तककी किसीको फुरसत नही है।

बिहारी राजलक्ष्मीके कमरेमे पहुँचा। राजलक्ष्मी अकस्मात् श्वास-कष्टके मारे अत्यन्त बेचैन हो उठी थी, अब तकलीफ कुछ घट जानेसे जरा जीमे जी आया है। बिहारीने प्रणाम करके उनके चरणोकी रज माथेसे लगाई; और उनका

इशारा पाकर वह उनके पास बैठ गया। राजलक्ष्मीने कहा, "तू है तो अच्छी तरह? बहुत दिनोंसे मैंने तुझे देखा नही।"

बिहारीने कहा, "अपनी बीमारीकी तुमने मुझे खबर क्यो नही दी, मा? फिर क्या मै एक क्षणकी भी देर कर सकता था?"

राजलक्ष्मीने मृदु स्वरमे कहा, "सो क्या मै नही जानती, बेटा? तुझे सिर्फ अपने गर्भमें ही नही रक्खा, बाकी, तुझसे बढकर दुनियामे अपना मेरा और कौन है बता!" कहते-कहते उनकी आँखोसे आँसू गिरने लगे।

बिहारी चटसे उठकर आलेमे रखी-हुई दवाकी शीशियाँ वगैरह देखनेके बहाने अपनेको सम्हालनेकी कोशिश करने लगा। लौटकर जब वह राजलक्ष्मीकी नाडी देखने लगा तो उन्होने कहा, "मेरी नाडी तो रहने दे, तू अपनी नाडीका हाल बता। इतना दुबला कैसे हो गया?" इतना कहकर राजलक्ष्मी अपना दुर्बल कृश हाथ उठाकर बिहारीके कण्ठमे हाथ फेरकर उसकी दुर्बलताकी परीक्षा करने लगी।

बिहारीने कहा, "तुम्हारे हाथका मछलीका झोर बगैर खाये मेरी ये हड्डियाँ हरगिज नही भर सकती, मा! तुम जल्दीसे अच्छी हो जाओ, मा, मै तब तक रसोईकी तैयारी कर रक्खूँगा।"

राजलक्ष्मी म्लान हँसी हँसकर कहने लगी, "हाँ, अब जल्दी तैयारी कर बेटा, पर रसोईकी नही।" कहते-हुए उन्होने बिहारीका हाथ दबा लिया और कहा, "बेटा, अब तू बहू ले आ,—तेरी सम्हाल करनेवाला कोई नही है। ओ मझली-बहू, अबकी तुम बिहारीका ब्याह करा दो,—देखो-न, लडकेकी कैसी-तो शकल हो गई है!"

अन्नपूर्णाने कहा, "तुम जल्दीसे अच्छी हो जाओ, जीजी! यह तुम्हारा ही काम है। तुम्ही सब करोगी-धरोगी। हम सब तो उसमे शामिल होकर खुशियाँ मनायेंगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुझे अब समय नही मिलनेका, मझली-बहू, बिहारीका भार तुम्हीपर रहा। इसे सुखी बना देना। मै इसका ऋण नही चुका सकी, पर भगवान इसका भला करेगे।" यह कहते-हुए उन्होने अपना हाथ बिहारीके सिरपर फेर दिया।

आशासे अब रहा न गया, वह रोनेके लिए बाहर चली गई। अन्नपूर्णा आँसुओके भीतरसे बिहारीके चेहरेकी तरफ स्नेह-दृष्टिसे देखने लगी।

राजलक्ष्मीको सहसा किसी बातकी याद उठ आई, उन्होने पुकारा, "बहू, ओ बहू !" और आशाके भीतर आते ही उससे कहा, "बहू, बिहारीके लिए तुमने खाने-पीनेका इन्तजाम कर लिया ?"

बिहारीने कहा, "मा, तुम्हारे इस पेटू लडकेको अब सब पहचान गये हैं। ड्योढीमे घुसते ही मैंने देखा कि बामी-दासी बडी-बडी अण्डेवाली कवई-मछलियाँ लिये रसोईकी तरफ दौडी जा रही है। मै समझ गया कि इस घरसे अभी तक मेरी ख्याति मिटी नही है।" इतना कहकर वह हँसता-हुआ आशाकी तरफ देखने लगा।

आशा आज शरमाई नही। बिहारीके हास्यालापको उसने स्नेहके साथ मुसकुराते-हुए ग्रहण किया। बिहारी इस घरका कितना अपना है, आशा इस बातको पहले जानती ही नही थी। कितनी ही बार उसने बिहारीको 'अनावश्यक अगन्तुक' समझकर उसकी अवज्ञा की है, और, कितनी ही बार अपने आचरणसे बिहारीके प्रति स्पष्टत विमुख-भाव प्रकट किया है। आज उन-सब त्रुटियोके लिए अनुतापके धिक्कारसे आशाकी श्रद्धा और करुणा बिहारीकी तरफ जोरोसे दौडने लगी।

राजलक्ष्मीने कहा, "मझली-बहू, महाराजके भरोसे रसोईका काम मत छोड देना, आजकी रसोई तुम अपनी देखरेखमे कराना। देखना, आज बिहारीके मनकी सब चीजें बननी चाहिए। हमारा लडका पूर्व-बगालका है, चटपटे मिर्च-मसालेका पूरा ध्यान रखना!"

बिहारीने कहा, "मा, तुम्हारी मा तो थी विक्रमपुरकी,—तुम नदिया जिलेके शरीफ खानदानके लडकेको पूर्व-बगालका कैसे कह रही हो! यह तो मुझसे नही सहा जायगा।"

इस बातको लेकर बहुत देर तक मजाक होता रहा, और बहुत दिन बाद महेन्द्रके घरका विषाद-भार मानो आज हलका हो गया।

किन्तु बातचीतमे किसी तरफसे किसीने महेन्द्रका नाम नही लिया। पहले राजलक्ष्मीकी बिहारीके साथ महेन्द्रकी ही बाते हुआ करती थी, और इस बातको लेकर खुद महेन्द्रने माकी कितनी ही बार हँसी उडाई है। किन्तु आज उन्ही राजलक्ष्मीके मुँहसे महेन्द्रका नाम एक बार भी न सुनकर बिहारी भीतर-ही-भीतर स्तम्भित रह गया।

राजलक्ष्मीकी जरा आँख झपकते ही बिहारीने बाहर आकर अन्नपूर्णासे कहा, "माकी बीमारी तो सहज नही मालूम होती, चाची !"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो तो दीख ही रहा है।" इतना कहकर वे जगलेके पास बैठ गई। और फिर बहुत देर तक चुप रहकर बोली, "एक बार तू किसी तरह महेन्द्रको नही बुला सकेगा ? अब तो देर करना उचित नही, बेटा !"

बिहारी कुछ देर निरुत्तर रहकर बोला, "तुम जैसी आज्ञा दोगी, मै वैसा ही करूँगा। उनका पता-ठिकाना किसीको मालूम है ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "ठीक पता तो किसीको नही मालूम, पता लगाना पडेगा। हाँ, एक बात तुझसे और कहती हूँ, बिहारी, तू जरा आशाके मुँहकी तरफ देख। देखते ही तू समझ जायगा, उसकी छातीमे कैसा मरण-वाण चुभा-हुआ है।"

बिहारी मन-ही-मन तीव्र हँसी हँसकर सोचने लगा, 'दूसरोका उद्धार करने तो मै जाऊँगा, भगवान, पर मेरा उद्धार कौन करेगा ? उसने कहा, "विनोदिनीके आकर्षणसे हमेशा उन्हे बचाये रखूँ, ऐसा मन्त्र क्या मै जानता हूँ, चाची ? माकी बीमारीमे वे दो दिनके लिए शान्त होकर रह सकते है ; किन्तु फिर वे उस तरफ नही मुडेंगे, यह कौन कह सकता है !"

इतनेमे मलिन-वसना आशा आधा घूँघट काढे धीरेसे आई और अपनी मौसीके पैरोके पास बैठ गई। वह जानती थी कि इन दोनोमे राजलक्ष्मीकी बीमारीके बारेमें बातचीत हो रही होगी, इसलिए वह उत्सुकताके साथ सुनने चली आई। पतिव्रता आशाके चेहरेपर निस्तब्ध दु खकी नीरव महिमा देखकर बिहारीके मनमें एक अपूर्व भक्तिका सचार हुआ। दु ख-शोकके तप्त तीर्थ-जलसे अभिषिक्त होकर इस तरुणी रमणीने प्राचीन-युगकी देवियोके समान एक अचचल मर्यादा प्राप्त कर ली है,—इस समय वह साधारण नारी नही मालूम होती, आज मानो उसने दारुण दु खमे पुराण-वर्णिता साध्वियोके समान अवस्था प्राप्त कर ली है।

बिहारीने राजलक्ष्मीके पथ्य और दवाके विषयमें आशाके साथ बातचीत करके जब उसे विदा किया तब एक लम्बी साँस छोडते-हुए अन्नपूर्णासे कहा, "महेन्द्रका मै उद्धार करूँगा ही।"

इसके बाद उसने बैङ्कमे जाकर पता लगा लिया कि कुछ दिनोसे महेन्द्रका लेन-देन इलाहाबाद-ब्राञ्चसे चालू हुआ है।

४६

हावड़ा-स्टेशनपर विनोदिनी अपनी इच्छासे इण्टर-क्लासके जनाने-डब्बेमें बैठ गई। महेन्द्रने कहा, "यह क्या कर रही हो! मैंने तुम्हारे लिए सेकेण्ड क्लासका टिकट लिया है।"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है सेकेण्ड-क्लासकी,—मुझे यहीं ज्यादा आराम रहेगा।"

महेन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। विनोदिनी स्वभावसे ही शौकीन थी। पहले गरीबीका कोई लक्षण ही उसे अच्छा नही लगता था। अपनी सासारिक दीनताको वह अपमानजनक ही समझती थी।

महेन्द्र समझता था कि उसके घरके अमीरी चाल-चलन, विलास-उपकरण और समाजमें धनाढचके रूपमें ख्यातिके गौरवने ही किसी समय विनोदिनीका मन उसकी ओर आकर्षित किया था, और इस कल्पनाने उसके मनको अत्यन्त उत्तेजित कर दिया था कि वह अनायास ही उस धन-सम्पदाकी, सब तरहके आराम और गौरवकी, अधीश्वरी हो सकती है। किन्तु आज जब उसका महेन्द्रपर प्रभुत्व प्राप्त करनेका समय आया, बिना माँगे ही जब वह महेन्द्रकी सारी-धन-सम्पदा अपने भोगमे ला सकती थी तब क्यो वह ऐसी असह्य उपेक्षाके साथ अत्यन्त उद्धत-भावसे कष्टदायक लज्जा-दायक दीनता स्वीकार किये ले रही है?

महेन्द्रके प्रति अपनी निर्भरताको विनोदिनी यथासम्भव सकुचित किये रखना चाहती है। जिस उन्मत्त महेन्द्रने विनोदिनीको उसके स्वाभाविक आश्रय-स्थलसे हमेशाके लिए विच्युत कर दिया है, उस महेन्द्रके हाथसे वह ऐसा कुछ भी नही चाहती जो उसके सर्वनाशके मूल्य-स्वरूप गिना जा सके।

विनोदिनी जब महेन्द्रके घरमे थी तब उसके आचरणमें वैधव्य-व्रतकी कठोरता विशेष-कुछ नही थी, किन्तु इतने दिन बाद वह अपनेको सब प्रकारके भोगोंसे वचित कर रही है। अब वह एक वक्त खाती है, मोटे कपडे पहनती है। और उसका वह अनर्गल हास्य-परिहास अब कहाँ चला गया? अब तो वह ऐसी स्तब्ध, ऐसी आवृत, ऐसी सुदूर और ऐसी भीषण हो उठी है कि महेन्द्रको उससे एक साधारण-सी बात भी जोरसे करनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। महेन्द्र विस्मत होकर क्रुद्ध होकर

बार-बार यही सोचने लगा कि 'विनोदिनीने पहले तो मुझे इतनी कोशिशसे दुर्लभ फलकी तरह इतनी ऊँची डालीसे तोड लिया, और अब वह उसे बिना सूँघे ही इस तरह दूर फेंके दे रही है, इसका कारण क्या ?'

महेन्द्रने पूछा, "तो अब कहाँका टिकट करवाऊँ, बताओ ?"

विनोदिनीने कहा, "पश्चिमकी तरफ जहाँ खुशी हो चलो,—कल सवेरे जहाँ गाडी ठहरेगी वही उतर जाना है।"

इस तरहका भ्रमण महेन्द्रके लिए शोभनीय नही हो सकता। आराममे खलल पडना उसके लिए कष्टदायक है। बडे शहरमे अच्छी जगह न रहना उसके लिए एक मुसीबत है। वह देख-भालकर तलाश करके ठीक इन्तजाम करनेवाला आदमी ही नही। इसलिए वह अत्यन्त क्षुब्ध-विरक्त मनसे गाडीमे सवार हुआ। और फिर थोडी देर बाद बार-बार उसे भय होने लगा कि विनोदिनी उससे बगैर कहे-सुने ही कही बीच ही में न उतर पड़े।

विनोदिनी इसी प्रकार शनि-ग्रहकी तरह खुद घूमने लगी और साथ-साथ महेन्द्रको भी घुमाने लगी। कही भी महेन्द्रको जरा विश्राम नही लेने देती। विनोदिनीमे एक खास गुण यह था कि वह बहुत जल्द लोगोसे हिल-मिल सकती है। इसलिए जल्दी ही वह गाडीकी सहयात्रिनियोसे मेल-जोल कर लेती थी। जहाँ जानेकी उसकी इच्छा होती वहाँके सब हालचाल वह पहलेसे ही जान लेती थी। यात्रीशालामे ठहरती, और जहाँ जो-कुछ देखनेका होता, देख लिया करती। इस तरह महेन्द्र विनोदिनीके लिए अपनी अनावश्यकता देखकर प्रतिदिन अपनेको हतमान अनुभव करने लगा। टिकट खरीद देनेके सिवा उसका और कोई काम ही न था। बाकी समयमे उसकी प्रवृत्ति उसको दशन किया करती और वह अपनी प्रवृत्तिको। शुरू-शुरूमें कुछ दिनो तक वह विनोदिनीके साथ-साथ रास्ते-रास्ते घूमता रहा था, किन्तु बादमे क्रमश यह उसके लिए असह्य हो उठा। अब तो वह खा-पीकर सोनेकी कोशिश किया करता है, और विनोदिनी दिन-भर घूमा करती है। इसके पहले इस बातकी कभी कोई कल्पना भी नही कर सकता था कि माका लडका महेन्द्र किसी दिन इस तरह इधरसे उधर मारा-मारा फिरा करेगा।

एक दिन, इलाहाबाद स्टेशनपर दोनो जने गाडीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी आकस्मिक कारणसे गाडी आनेमें देर हो रही थी। इस बीचमे विनोदिनी और-और

गाडियोंके यात्रियोको घूम-फिरकर देख रही थी। पश्चिममें घूमते-घूमते और चारो तरफ देखते-देखते अकस्मात् कही कोई दिखाई दे जायगा, शायद यही उसे आशा थी। कमसे कम बन्द गलीमे जन-हीन घरमे निश्चल उद्यमसे अपनेको प्रतिदिन दबाकर मारनेकी अपेक्षा इस नित्यकी अनुसन्धान-प्रवृत्तिमे, इस उन्मुक्त मार्गके जन-कोलाहलमे, अधिक शान्ति है।

अचानक स्टेशनकी एक काँचकी ढक्कनदार सूचना-पेटिकापर दृष्टि पडते ही विनोदिनी चौक पडी। डाकखानेकी उस पेटीमे जिन लोगोका ठीक पता नही चलता उनके पत्र प्रदर्शित किये जाते है। विनोदिनीने देखा कि उसमे एक पत्र बिहारीके नामका भी है। 'बिहारीलाल' नाम कोई असाधारण नही, और उस पत्रका बिहारी विनोदिनीका अभीष्ट बिहारी ही हो ऐसा समझनेका भी कोई कारण नही था, फिर भी ,बिहारीका पूरा नाम देखकर उसके मनमे अपने एकमात्र बिहारीके सिवा और किसी बिहारीका सन्देह ही नही हुआ। पत्रपर लिखे-हुए पतेको उसने कण्ठस्थ कर लिया। और फिर जिस बेञ्चपर महेन्द्र अत्यन्त अप्रसन्न-मुखसे बैठा था उसपर आकर बैठ गई , और उससे बोली, "मै तो कुछ दिन इलाहाबादमे ही रहूँगी।"

विनोदिनी महेन्द्रको अपनी इच्छाके अनुसार चला रही है, किन्तु उसके क्षुधित अतृप्त हृदयको जरा भी खुराक नही दे रही, इसीसे महेन्द्रका पौरुषाभिमान प्रतिदिन आहत हो-होकर उसके हृदयमे विद्रोह पैदा कर रहा था। इलाहाबादमें कुछ दिन रहकर जरा विश्राम ले ले तो वह जी जाय ; किन्तु इच्छाके अनुकूल होनेपर भी विनोदिनीकी खामखयालीपर सम्मति देनेमे सहसा उसका मन विद्रोही हो उठा। उसने कुछ गुस्सेसे कहा, "जब चलनेके लिए निकल ही पडे है तब चलेंगे ही! रुकेंगे नही।"

विनोदिनीने कहा, "मै नही जाऊँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तो तुम अकेली रहो,—मै जाता हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छी बात है।" और उसी वक्त इशारेसे कुली बुलाकर अपने सामानके साथ वह स्टेशनसे बाहर चल दी।

महेन्द्र अपने पुरुष-कर्तृत्व-अधिकारको लिये बेञ्चपर बैठा रहा। और जब तक विनोदिनी दीखती रही तब तक वह स्थिर होकर बैठा रहा। विनोदिनीने

जब एक बार भी पीछे मुडकर नही देखा और सीधी बाहर निकल गई तब वह जल्दीसे कुलियोके सरपर अपना सामान लादकर लपकता-हुआ उसके पीछे-पीछे चल दिया।

बाहर जाकर उसने देखा, विनोदिनी एक घोडा-गाडीमे बैठ चुकी है। महेन्द्र मुँहसे कुछ बोला नही, गाडीकी छतपर अपना सामान रखवाकर खुद कोचबक्सपर बैठ गया। अपने अहङ्कारको छोटा करके गाडीके भीतर विनोदिनीके सामने बैठने-लायक उसका मुँह ही नही रहा।

किन्तु गाड़ी तो चलती ही चली जा रही है! करीब एक घण्टा हो चुका, क्रमश शहरकी बस्ती छूट गई, और फिर चारो तरफ खेत दिखाई देने लगे। कोचवानसे कुछ पूछनेमे महेन्द्रको शरम मालूम होने लगी , कारण, इससे वह समझ जायगा कि भीतर जो मालिकिन बैठी हैं, उसने इस अनावश्यक पुरुषसे इतनी भी सलाह नहीं की कि कहाँ जाना है। महेन्द्र अपने रुष्ट अभिमानको भीतर ही भीतर हजम करके चुपचाप कोचबक्सपर बैठा रहा।

गाडी निर्जन यमुनाके किनारे एक शानदार बगीचेके भीतर जाकर ठहरी। महेन्द्र आश्चर्यसे दग रह गया। सोचने लगा, 'यह किसका बगीचा है, इस बगीचेका ठिकाना विनोदिनीको कैसे मालूम हुआ ?'

बगीचेके भीतरका मकान बन्द था। कई बार पुकारनेके बाद एक बूढा दरवान बाहर निकल आया। विनोदिनीके प्रश्नका उत्तर देते-हुए उसने कहा, "बगीचेके मालिक यहाँके बडे रईसोमेंसे हैं , उनका मकान यहाँसे बहुत ज्यादा दूर नही है। आपलोग उनकी मजूरी ले आइये, फिर आप शौकसे यहाँ रह सकते है।"

विनोदिनी महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखने लगी। महेन्द्रका मन इस मनोहर स्थानको देखकर मुग्ध और लुब्ध हो रहा था। लम्बे समयके बाद कुछ दिन स्थितिकी सम्भावना देखकर वह प्रफुल्लित हो उठा , और विनोदिनीसे बोला, "तो चलो, वही चले चले। तुम बाहर गाडीमे बैठी रहना, मै भीतर जाकर किराया वगैरह तय करके रहनेकी मजूरी ले आऊँगा।"

विनोदिनीने कहा, "मुझसे अब घूमा नही जायगा। तुम जाओ, तब तक मैं यहाँ आराम करूँ। डरनेकी कोई बात नही।"

महेन्द्र गाडी लेकर चला गया। विनोदिनी उस बूढे ब्राह्मण दरवानको अपने पास बुलाकर उससे बाल-बच्चोके बारेमे पूछ-ताछ करने लगी। बात करते-करते

जब उसने सुना कि उसकी स्त्री भी मर चुकी है तब वह यह कहकर सहानुभूति प्रकट करने लगी कि 'अरे रे, तब तो तुम्हे बड़ी-भारी तकलीफ होती होगी। बोलो भला, इस उमरमें तुम अकेले रह गये! तुम्हारी देख-भाल करनेवाला कोई भी नही?' इसके बाद बातचीतके सिलसिलेमे विनोदिनीने पूछा, "बिहारी-बाबू यहाँ रहते थे-न?" बूढेने कहा, "हाँ, कुछ दिन रहे तो थे यहाँ। तो, आप उन्हे जानती है क्या?" विनोदिनीने कहा, "मेरे तो मेरे रिश्तेदार है।"

विनोदिनीको दरवानके मुँहसे बिहारीका जो-कुछ विवरण और वर्णन मालूम हुआ उससे उसके मनमे कोई सन्देह नही रहा कि वह उसीका बिहारी है। उसने बूढेसे कहकर वे कमरे खुलवाकर देखे जिनमे बिहारी सोता था और बैठता था। बिहारीके चले जानेके बादसे वे कमरे बन्द पडे थे, इससे उसे ऐसा लगने लगा कि मानो अदृश्य बिहारीका सचरण अब भी उन कमरोमे जमा-हुआ है, हवा उसे अभी भी उडाकर ले नही जा सकी है। विनोदिनीने घ्राणसे उसे सूँघकर अपना हृदय भर लिया, स्तब्ध हवाके स्पर्शसे अपने सर्वाङ्गको पुलकित कर लिया। किन्तु बिहारी कहाँ गया है, इसका पता वह नही लगा सकी। हो सकता है कि वह फिर यहाँ आवे, किन्तु स्पष्ट कुछ नही जान सकी। दरवानने यह आश्वासन दिया कि वह अपने मालिकसे पूछकर बतायेगा।

इतनेमे पेशगी किराया देकर और रहनेकी मजूरी लेकर महेन्द्र वापस आ गया।

५०

हिमालय-शिखर जिस यमुनाको तुषार-स्रुत अक्षय जल-धारा दे रहा है और युग-युगके कवियोने मिलकर जिस यमुनामें कवित्व-स्रोत बहाया है वह अक्षय है, वह चिरस्थायी है। इसकी कल-ध्वनिमे न-जाने कितने विचित्र छन्द ध्वनित हो रहे है और इसकी तरङ्ग-लीलामे न-जाने कितने युगोका पुलकोच्छ्वसित भावावेग उद्वेलित हो रहा है, कौन कह सकता है!

प्रदोष-कालमे महेन्द्र उस यमुनाके तटपर आकर जब बैठा तब घनीभूत प्रेमके आवेशने उसकी दृष्टिमे, उसके नि श्वासमें, उसकी शिराओंमे, उसकी अस्थियोमे प्रगाढ़ मोह-रसका प्रवाह सचारित कर दिया। आकाशमे सूर्यास्त-किरणोकी स्वर्ण-वीणा वेदनाकी मूर्च्छनामें एक अश्रुतपूर्व सङ्गीतमें झकृत हो उठी।

विस्तीर्ण निर्जन बालू-तटपर विचित्र वर्णच्छटामे दिन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। महेन्द्र मानो काव्य-लोकमे पहुँच गया, और अर्ध-निमीलित नेत्रोंसे बृन्दावनके गोधूलि-जालमें अपने-अपने गोष्ठको लौटनेवाली धेनुओका हम्बारव सुनने लगा।

वर्षाके मेघोंसे आकाश आच्छन्न हो आया। अपरिचित स्थानका अन्धकार केवल कृष्णवर्णका आवरण ही नही होता किन्तु विचित्र रहस्यसे परिपूर्ण होता है। उसमेंसे जो थोडी-सी आभा अथवा आकृति दिखाई देती है वह अज्ञात अनुच्चारित भाषामें बाते करती है। उस पारकी रेतीकी अस्फुट पाण्डुरताने, निस्तरङ्ग जलकी मसी-कृष्ण कालिमाने, बगीचेके घन-पल्लव सुविशाल निम्ब-वृक्षकी पुञ्जीभूत निस्तब्धताने तरु-हीन म्लान धूसर तटकी बङ्किम रेखाने, सब-कुछने आषाढ़-सन्ध्याके उस प्रदोष-अन्धकारमें विविध अनिर्दिष्ट अपरिस्फुट आकारोमें एकसाथ मिलकर महेन्द्रको मानो चारो तरफसे घेरकर बन्दी कर बना लिया।

महेन्द्रको 'पदावली'-साहित्यमे वर्णित 'वर्षाभिसार'की याद उठ आई। अभिसारिका घरसे चल पडी है। यमुनाके उस तटपर वह अकेली आकर खड़ी हुई है। किन्तु पार कैसे होगी ? "पार करौ जी, मोहिं पार करौ"—महेन्द्रके हृदयके भीतर बार-बार यही एक पुकार आ-आकर आघात करन लगी—"पार करौ जी, मोहिं पार करौ।"

नदीके उस पार बहुत दूर अँधेरेमे खड़ी है वह अभिसारिका, किन्तु फिर भी महेन्द्रने उसे स्पष्ट देख लिया। उसका कोई काल नही, उसकी कोई उमर नही, चिरकालीन गोप-बाला है वह, किन्तु फिर भी महेन्द्र उसे पहचान गया। विनोदिनी है वह, अपने सम्पूर्ण विरह सम्पूर्ण वेदना सम्पूर्ण यौवन-भारको लेकर वह उस कालसे यात्रा करके, न-जाने कितने गीत और कितने छन्दोमे होती-हुई आजके कालमें आ पहुँची है। आजके इस निर्जन यमुना-तटके ऊपरके आकाशमे उसीका तो कण्ठस्वर सुनाई दे रहा है, "पार करौ जी, मोहिं पार करौ!" पार पहुँचानेवाली नावके लिए वह इस अन्धकारमे और कब तक इस तरह अकेली खडी रहेगी ?—"पार करौ जी, मोहि पार करौ!"

बादलोके जरा फटते ही आकाशमे कृष्णपक्षकी तृतीयाका चाँद निकल आया। ज्योत्स्नाके माया-मन्त्रसे वह नदी और नदी-तट, वह आकाश और आकाशका

सीमान्त मानो इस पृथ्वीसे बिलकुल बाहर चला गया। मानो अब मृर्त्यका कोई बन्धन ही न रहा। मानो कालकी सम्पूर्ण धारावाहिकता टूट गई, अतीत-कालका समस्त इतिहास लुप्त हो गया, भविष्यत्-कालका समस्त फलाफल अन्तर्हित हो गया, केवल-मात्र यह रजत-धारा-प्लावित वर्तमान-काल ही यमुना और यमुना-तटके बीच महेन्द्र और विनोदिनीको लिये-हुए विश्व-विधानके बाहर चिरस्थायी हो रहा।

महेन्द्र मतवाला हो उठा। विनोदिनी आज उसे अस्वीकार कर देगी, ज्योत्स्ना-रात्रिके इस निर्जन स्वर्ग-खण्डको लक्ष्मीके रूपमें सुसम्पूर्ण नही करेगी, इस बातकी वह कल्पना ही न कर सका। वह उसी क्षण उठकर विनोदिनीकी खोजमे बगलेकी तरफ चल दिया।

शयन-गृहमे जाकर उसने देखा, सारा घर फूलोकी सुगन्धसे भर उठा है। उन्मुक्त वातायत-पथसे ज्योत्स्नाका प्रकाश शुभ्र शय्यापर आकर पड रहा है। विनोदिनीने बगीचेसे फूल चुनकर उनसे मालाएँ गूँथकर जूडेमे लपेटी है, गलेमें पहनी है, करधनीकी तरह कमरसे बाँधी है,—फूलोसे भूषित होकर आज वह वसन्तऋतुकी पुष्प-भारसे झुकी-हुई भू-लुण्ठित लताकी तरह चाँदनीकी शुभ्र शय्यापर पड़ी-हुई है।

महेन्द्रका मोह दूना हो उठा। उसने अवरुद्ध कण्ठसे कहा, "विनोद, मैं यमुना-किनारे तुम्हारी प्रतीक्षामे बैठा था,—तुम यहाँ प्रतीक्षा कर रही हो, आकाशके चाँदने मुझे यह सवाद दिया, और मै चला आया।"

इतना कहकर महेन्द्र बिस्तरपर बैठनेके लिए अग्रसर हुआ।

विनोदिनी चौंककर बडी तेजीसे उठ बैठी, और अपना दाहना हाथ हिलाती-हुई बोली, "जाओ, तुम जाओ। तुम इस बिछौनेपर मत बैठना।"

तीव्रगतिसे बहती-हुई पाल-शुदा नाव सहसा बालू-चरसे टकराकर जहाँकी तहाँ रुक गई। महेन्द्र स्तम्भित होकर खडाका खडा ही रह गया। बहुत देर तक उसके मुँहसे कोई बात ही नही निकली। और विनोदिनी इस डरसे कि कही महेन्द्र उसका कहा न माने, बिछौनेसे उठकर उसके सामने आ खडी हुई।

महेन्द्रने कहा, "तो फिर तुमने किसके लिए यह शृङ्गार किया है? यहाँ पड़ी-पड़ी तुम किसकी प्रतीक्षा कर रही थी?"

विनोदिनीने दोनो हाथोसे अपनी छातीको दबाते-हुए कहा, "जिसके लिए शृङ्गार किया है वह मेरे हृदयके भीतर है।"

महेन्द्रने कहा, "कौन है वह ?—बिहारी ?"

विनोदिनीने कहा, "उसका नाम तुम अपने मुँहसे उच्चारण न करो।"

"उसीके लिए तुम पश्चिममे घूमती-फिरती हो ?"

"हाँ, उन्हीके लिए।"

"उसीके लिए तुम यहाँ प्रतीक्षा कर रही थीं ?"

"हाँ, उन्हीके लिए।"

"उसका पता मालूम कर लिया है ?"

"नही, किन्तु जैसे भी होगा, मै उनका पता लगाकर ही रहूँगी।"

"किन्तु मै तुम्हे हरगिज नही लगाने दूँगा।"

"न लगाने दोगे तो न सही, किन्तु याद रखना, मेरे हृदयसे उन्हें तुम किसी भी तरहसे नही निकाल सकोगे।" इतना कहकर विनोदिनीने आँखें मीचकर अपने हृदयमें फिर एक बार बिहारीका अनुभव कर लिया।

महेन्द्र उस पुष्पाभरणा विरह-विधुर-मूर्ति विनोदिनीके द्वारा एक-ही-साथ प्रबल वेगसे आकृष्ट और प्रत्याख्यात होकर अकस्मात् भीषण हो उठा। और अपनी मुट्ठी उठाकर कहने लगा, "छुरीसे चीरकर मै तुम्हारी छातीके भीतरसे उसे निकाल बाहर करूँगा !"

विनोदिनीने अविचलित-मुखसे कहा, "तुम्हारे प्रेमकी अपेक्षा तुम्हारी छुरी मेरे हृदयमें आसानीसे घुस जायगी।"

"तुम मुझसे डरती क्यो नही ? यहाँ तुम्हारा रक्षक कौन है ?"

"तुम मेरे रक्षक हो। तुम खुद अपने-आपसे मेरी रक्षा करोगे।"

"इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास, क्या अब भी तुम्हारे अन्दर बाकी है ?"

"इतना अगर न होता, तो मै आत्मघात करके मर जाती,—तुम्हारे साथ नहीं निकलती।"

"फिर मर क्यो नहीं गई ? इतने-से विश्वासकी फाँसी मेरे गलेमें डालकर मुझे देश-देशान्तरमें क्यो घसीटती फिरती हो ? तुम्हारे मर जानेसे कितना मङ्गल होता, जरा सोच तो देखो !"

"मैं सब जानती हूँ,—किन्तु जब तक बिहारीकी आशा है तब तक मै मर नहीं सकती।"

"किन्तु जब तक तुम नही मरती तब तक मेरी प्रत्याशा भी नहीं मर सकती। और उसके बिना मरे मै भी छुटकारा नही पा सकता। आजसे मै सर्वान्त करणसे भगवानसे कामना करूँगा कि तुम मरो। तुम मेरी भी न होना और बिहारीकी भी न होना। तुम जाओ। मुझे छुट्टी दो। मेरी मा रो रही है, मेरी स्त्री रो रही है। उनके आँसू मुझे दूरसे दग्ध कर रहे है। जब तक तुम नही मरती, जब तक तुम मेरी और ससारके और-सबोकी आशाके अतीत नही चली जाती, तब तक मुझे उनके आँसू पोछनेका अवसर नहीं मिलनेका।"

इतना कहकर महेन्द्र दौडता-हुआ बाहर चला गया। विनोदिनी अकेली पडी अपने चारो तरफ जो मोह-जाल रच रही थी उसे वह छिन्न-विच्छिन्न कर गया।

विनोदिनी चुपचाप खडी-खडी बाहरकी तरफ देखती रही। आकाश-भरी चाँदनी बिलकुल सूनी हो गई? उसका सारा-का-सारा सुधा-रस क्षणमे कहाँ बिला गया? सामनेका वह क्यारियोवाला बगीचा, उसके आगेका वह बालू-तट, उसके आगेकी यमुना, उसके आगेकी उस पारकी अस्फुटता, सब-कुछ मानो एक बड़े कागजपर पेन्सिलसे अङ्कित चित्र मात्र है, सब-कुछ नीरस और निरर्थक है।

महेन्द्रको विनोदिनीने कैसे प्रबल वेगसे आकर्षित किया है और प्रचण्ड आँधी बनकर कैसे उसे वह जडसे उखाड लाई है, इस बातका अनुभव करके आज उसका हृदय और भी ज्यादा अशान्त हो उठा। विनोदिनी सोचने लगी, 'मुझमे तो ये सभी शक्तियाँ है, फिर क्यो नही बिहारी पूर्णिमा-रात्रिके उद्वेलित समुद्रकी तरह मेरे सामने आकर गिर पडता? क्यो एक अनावश्यक प्रेमका प्रबल अभिघात प्रतिदिन मेरे ध्यानमे आकर रो रहा है? और एक आगन्तुक क्रन्दन बार-बार आकर क्यो मेरे अन्त.करणके क्रन्दनको परिपूर्ण अवकाश नही दे रहा? उसने जो इस तरहसे एक प्रचण्ड आन्दोलनको जगा रखा है उसे लेकर मै क्या करूँगी?'

आज जिन फूलोकी मालाओसे विनोदिनीने अपनेको विभूषित किया था उनपर महेन्द्रकी मुग्ध दृष्टि पड जानेसे उसने उन-सबको तोड-मसलकर अलग फेंक दिया। वह सोचने लगी, उसकी सारी शक्ति वृथा है, उसकी सारी चेष्टाएँ वृथा है, उसका

जीवन वृथा है,—यह कानन, यह चाँदनी, यह यमुना-तट, यह अपूर्व-सुन्दर ससार, सब-कुछ वृथा है, वृथा है।

इतनी व्यर्थता है, तो भी, जो जहाँ है वह वही खडा है,—संसारमे किसीका भी लेशमात्र परिवर्तन नही हुआ। कल फिर सूर्यका उदय होगा और ससार अपना छोटेसे छोटा काम करना भी नही भूलेगा। और बिहारी जैसे दूर था वैसे ही दूर रहकर अपने उस ब्राह्मण-बालकको रोजकी तरह 'बोधोदय'का नया पाठ पढायेगा।

विनोदिनीकी आँखे फट गई और उनमेसे आँसू निकल पडे। आखिर वह अपने सम्पूर्ण बल और आकाक्षाको लिये-हुए किस पत्थरको ढकेल रही है? उसका हृदय रक्तमे बह गया, किन्तु उसका अदृष्ट सूच्याग्र-प्रमाण भी टससे मस नही हुआ।

५१

महेन्द्रको रात-भर नीद नही आई और अन्तमे श्रान्त-क्लान्त शरीर जब शिथिल हो आया तब भोरके वक्त उसकी आँख लग गई। काफी दिन चढनेके बाद आठ-नौ बजे उसकी आँख खुली तो वह भडभडाकर उठ बैठा। गत रात्रिकी कोई-एक असमाप्त वेदना मानो नीदके भीतर-ही-भीतर प्रवाहित हो रही थी। सचेतन होते ही महेन्द्र उसकी व्यथा अनुभव करने लगा। कुछ देर बाद ही रातकी सारी घटना उसके मनमे स्पष्ट होकर जाग उठी। सवेरेकी सूर्य-किरणोमे अपनी अतृप्त निद्राकी क्लान्तिसे उसे समस्त जगत् और जीवन अत्यन्त नीरस मालूम होने लगा। घर छोडनेकी ग्लानि, धर्म त्यागनेका गभीर सन्ताप और अपने इस उद्भ्रान्त जीवनका सम्पूर्ण अशान्ति-भार महेन्द्र किसके लिए वहन कर रहा है? मोहावेश-शून्य प्रभातके प्रकाशमे महेन्द्रको ऐसा लगने लगा कि वह विनोदिनीसे प्रेम नही करता। सडककी तरफ उसने आँख उठाकर देखा कि सारा जाग्रत ससार व्यस्तताके साथ अपने काममें जुट पडा है। और उसी क्षण महेन्द्रकी दृष्टिके आगे सम्पूर्ण आत्म-गौरवको पङ्कमें डुबोकर एक विमुख नारीके चरणोमे अकर्मण्य जीवनको प्रतिदिन आबद्ध रखनेकी जो मूढता थी वह सुस्पष्ट हो उठी।

असलमे, प्रबल आवेगके उच्छ्वासके बाद हृदयमे एक तरहका अवसाद आ जाता है, और क्लान्त हृदय तब अपनी अनुभूतिके विषयको कुछ समयके लिए दूर हटाये रखना चाहता है। भाव-समुद्रके इस भाटेके समय तलेका सारा-का-सारा

दबा-हुआ पङ्क बाहर निकल आता है,—जो मोह लाता था उससे वितृष्णा हो जाती है। महेन्द्र किसलिए अपनेको इस तरह अपमानित कर रहा है सो आज वह नही समझ सका। आज वह अपने मनमे कहने लगा, 'मै सब तरहसे विनोदिनीसे श्रेष्ठ हूँ, फिर भी आज मै सब तरहकी हीनता और लाछना स्वीकार करके घृणित भिक्षुककी तरह उसके पीछे-पीछे अहोरात्र दौडता फिर रहा हूँ! ऐसा अद्‌भुत पागलपन किस शैताननें मेरे दिमागमे भर दिया?' विनोदिनी महेन्द्रके लिए आज एक नारीके सिवा और कुछ नही। विनोदिनीके चारो तरफ समस्त पृथ्वीके सौन्दर्यसे, समस्त काव्योसे, समस्त कहानियोसे जो एक लावण्य-ज्योति आकृष्ट हो रही थी, आज वह माया-मरीचिकाकी तरह अन्तर्धान हो गई, और तब मात्र एक साधारण नारी बच रही, उसमें किसी तरहकी अपूर्वता या विशेषता नही रही।

तब महेन्द्र इस धिक्कृत मोह-चक्रसे अपनेको छुडाकर घर जानेके लिए व्यग्र हो उठा। जो शान्ति, जो प्रेम और जो स्नेह उसके पूर्व-जीवनमे था, आज वही उसे दुर्लभतम अमृत-सा मालूम होने लगा। बिहारीका आशैशव अटल-निर्भर बन्धुत्व उसे आज महामूल्य मालूम होने लगा। वह मन-ही-मन कहने लगा, 'जो वास्तवमे गभीर और स्थायी है उसमें बिना-चेष्टाके बिना-बाधाके अपनेको सम्पूर्णत निमग्न रखा जा सकता है, इसीसे हम उसके गौरवको नही समझ पाते। और जो चचल छलना-मात्र हैं, जिसकी परितृप्तिमे भी लेशमात्र सुख नही, वह पीछेसे खदेड-खदेडकर हमे घुडदौडके घोडेकी तरह दौडाती रहती है,—इसीलिए उसे हम कामनाकी वस्तु समझते है।'

महेन्द्र मन-ही-मन कह उठा, 'आज ही मै घर लौट जाऊँगा। विनोदिनी जहाँ भी रहना चाहेगी वहाँ उसके रहनेकी व्यवस्था करके मै मुक्त होऊँगा।' ये अन्तिम शब्द, 'मै मुक्त होऊँगा', उसके मुँहसे दृढताके स्वरमे निकल पडे, और उससे उसके मनमे एक अपूर्व आनन्दका अविर्भाव हुआ। इतने दिनोसे लगातार जिस दुबिधाके भारको वह वहन करता आ रहा था वह हलका हो आया। इतने दिनोसे, एक क्षणमे जो उसे अत्यन्त अप्रीतिकर मालूम होता था और दूसरे ही क्षण उसे करनेके लिए उसे बाध्य होना पडता था, जोरके साथ उससे 'ना' या 'हाँ' करते नहीं बनता था, उसके अन्त:करणमे जो आदेश उठता था, बराबर जबरदस्ती उसका मुँह दबोचकर वह दूसरे रास्ते चलता था,—अब जैसे ही उसने दृढ कण्ठसे

कहा कि 'मैं मुक्त होऊँगा', वैसे ही उसके मनकी सारी दुबिधाएँ दूर हो गई, और उसी क्षण दुबिधाके झूलेमे झूलता-हुआ उसका पीडित हृदय एक आश्रय पाकर उत्फुल्ल होकर उसका अभिनन्दन करने लगा।

महेन्द्र उसी वक्त उठकर हाथ-मुँह धोकर विनोदिनीसे मिलने चल दिया। जाकर देखा कि उसके कमरेका दरवाजा बन्द है। उसने दरवाजा खटखटाते-हुए कहा, "सो रही हो क्या?"

विनोदिनीने कहा, "नही। अभी तुम जाओ।"

महेन्द्रने कहा, "तुमसे मुझे एक खास बात करनी है। मैं ज्यादा देर नही ठहरूँगा।"

विनोदिनीने कहा, "बाते अब मुझसे नही सुनी जाती। तुम जाओ, मुझे परेशान न करो, मुझे जरा अकेलेमे रहने दो।"

और-कोई समय होता तो इस प्रत्याख्यानसे महेन्द्रका आवेग और-भी बढ जाता, किन्तु आज उसे अत्यन्त घृणा मालूम होने लगी। वह सोचने लगा, 'इस मामूली एक स्त्रीके लिए मैंने अपनेको इतना हीन कर डाला है कि जब-है-तब इस तरह अवज्ञा करके मुझे दुरदुरा देनेका इसे अधिकार पैदा हो गया है! यह अधिकार इसका स्वाभाविक अधिकार नही है। मैंने ही इसे अधिकार देकर इसके गर्वको इस तरह अनुचित-रूपसे बढा दिया है।' इस लाञ्छनाके बाद महेन्द्रने अपनेमे श्रेष्ठता अनुभव करनेकी चेष्टा की, और फिर अपने मनमें कहने लगा, 'मैं विजयी होऊँगा, इसके बन्धनको तोडकर मैं चला जाऊँगा।'

खा-पीकर महेन्द्र रुपया लेनेके लिए बैङ्क चला गया। वहाँसे रुपया लेकर वह आशाके लिए और माके लिए कुछ अच्छी-अच्छी नई चीजें खरीदनेके लिए बाजारमे घूमने लगा।

अब, फिर किसीने विनोदिनीका दरवाजा खटखटाया। पहले तो वह झुँझला उठी, और कुछ जवाब ही नही दिया,—बादमे फिर बार-बार दरवाजा खटखटाये जानेपर वह झल्लाकर उठ बैठी और गुस्सेमे जोरसे किबाड़ खोलकर कहने लगी, "क्यो तुम मुझे बार-बार परेशान करने आते हो?—" किन्तु बात पूरी कह भी न हो पाई कि उसने देखा, सामने बिहारी खडा है!

कमरेमे महेन्द्र है या नही, यह देखनेके लिए बिहारीने एक बार चारो तरफ

निगाह दौडाई। देखा कि घर-भरमे सूखे-हुए फूल और टूटी-हुई मालाएँ बिखरी पडी है। उसका मन उसी क्षण प्रबल वेगसे उससे विमुख हो उठा। जब वह दूर था तब विनोदिनीकी जीवन-यात्राके सम्बन्धमे कोई सन्देह-जनक चित्र उसके मनमें उदित न हुआ हो सो बात नही , किन्तु कल्पनाकी लीलाने उस चित्रको ढककर उसकी जगह एक उज्ज्वल मोहिनी छबि खडी कर दी थी। बिहारी जब बगीचेमें प्रवेश कर रहा था तब उसका हृदय कॉप रहा था। इस डरसे कि कहीं उसकी कल्पनाकी प्रतिमापर अकस्मात् आघात न आ लगे, उसका चित्त सकुचित हो रहा था। अब विनोदिनीके शयनगृहके दरवाजेपर आकर खड़े होते ही उसे वही आघात लगा।

दूर रहकर बिहारीने किसी समय सोचा था कि वह अपने प्रेमाभिषेकसे विनोदिनीके जीवनकी समस्त पङ्किलताको अनायास ही धो डालेगा। किन्तु पास आकर उसने देखा कि ऐसा करना सहज नही है। आज उसके मनमे करुणाकी वेदना कहाँ आई ? सहसा घृणाकी तरङ्गोने उठकर उसे अभिभूत कर डाला। बिहारीने विनोदिनीको अन्यन्त मलिन-रूपमे देखा।

दूसरे ही क्षण बिहारी लौट पडा , और 'महेन्द्र' 'महेन्द्र' पुकारने लगा। इस अपमानके बाद भी विनोदिनीने अत्यन्त नम्र मृदु-स्वरमे कहा, "महेन्द्र यहाँ नही है, शहर गया है।"

बिहारी जब जानेको उद्यत हुआ तो विनोदिनीने कहा, "बिहारी-लालाजी, मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ, तुम्हे जरा बैठना होगा।"

बिहारी अनुनय-विनय कुछ भी न सुननेका निश्चय कर चुका था, इस घृणाके दृश्यसे वह इसी क्षण अपनेको दूर ले जाना चाहता था, किन्तु विनोदिनीका करुण अनुनय-स्वर सुनते ही मानो क्षण-भरके लिए उससे पैर उठाये नही उठे।

विनोदिनीने कहा, "आज अगर तुम विमुख होकर इस तरह चले जाओगे तो मै तुम्हारी सौगन्द खाकर कहती हूँ, मै आत्मघात करके मर जाऊँगी।"

तब बिहारी घूमकर खडा हो गया ; और बोला, "विनोदिनी, तुम अपने जीवनके साथ मुझे लपेटनेकी कोशिश क्यो करती हो, मैने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? मैने तो कभी तुम्हारी राहमें रोडे नही अटकाये, मैने तो कभी तुम्हारे सुख-दु खमें किसी तरहका हस्तक्षेप नही किया ?"

विनोदिनीने कहा, "तुमने मुझपर कितना अधिकार कर लिया है, यह बात एक बार तुमसे मै कह चुकी हूँ, किन्तु तुमने विश्वास नही किया। तो भी, आज फिर मै तुम्हे इस विरागके मुँहपर वही बात कहती हूँ। तुमने तो मुझे बिना कहे जतानेका, लज्जा करके जतानेका, समय नही दिया। तुमने मुझे ढकेलकर फेक दिया है, तो भी तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ, मै तुम्हे—"

बिहारीने बीचमे ही टोकते-हुए कहा, "अब यह तुम मत कहो, उस बातको अब तुम जबानपर भी न लाओ। उसपर विश्वास करनेका अब कोई रास्ता ही नही रह गया।"

"हो सकता है कि मेरी बातपर कोई नीच आदमी विश्वास न करे, किन्तु तुम जरूर करोगे। इसीलिए मै तुमसे बैठनेके लिए कह रही हूँ।"

"मै विश्वास करूँ या न करूँ, उससे किसीका क्या बनता-बिगडता है! तुम्हारा जीवन जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहेगा।"

"मै जानती हूँ कि तुम्हारा उससे कुछ भी बनेगा-बिगडेगा नही। मेरा भाग्य ही ऐसा है कि तुम्हारे सम्मानकी रक्षा करके तुम्हारे पास खडे होनेका मेरे लिए कोई उपाय ही नही। हमेशा तुमसे मुझे दूर ही रहना पडेगा। किन्तु, मेरा मन तुमसे सिर्फ इतनी-सी माँगको नही छोड सकता कि मै कही भी रहूँ, मुझे तुम जरासे माधुर्यके साथ याद करना। मै जानती हूँ, मेरे प्रति तुम्हारे मनमे थोड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, उसीको मै अपने जीवनका एकमात्र सम्बल बनाये रखूँगी। इसलिए आज तुम्हे मेरी सब बाते सुननी होगी। मै तुमसे हाथ जोडकर कहती हूँ, लालाजी, तुम जरा बैठ जाओ।"

"अच्छा, चलो।"—कहकर बिहारी वहाँसे अन्यत्र कही जानेको उद्यत हुआ।

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, तुम जो अपने मनमे समझ रहे हो, सो बात नही। इस घरको किसी कलङ्कने स्पर्श नही किया। इसी घरमे एक दिन तुम सोये थे,—इस घरको मैने तुम्हारे ही लिए उत्सर्ग कर रखा है,—ये फूल तुम्हारी ही पूजा करके आज सूखे पडे है। तुम्हें यही बैठना होगा।"

यह सुनकर बिहारीका मन पुलकित हो उठा। वह कमरेके भीतर गया। विनोदिनीने दोनो हाथोसे उससे शय्यापर बैठनेका अनुरोध किया। बिहारी पलगपर जा बैठा, और विनोदिनी उसके पैरोके पास नीचे बैठ गई। बिहारी व्यस्त हो

उठा, विनोदिनीने कहा, "लालाजी, तुम बैठे रहो। मेरे गलेकी सौगन्ध है तुम्हे, तुम उठना नही। मै तुम्हारे पैरोके पास बैठनेके भी योग्य नही। तुमने दया करके ही मुझे यह स्थान दिया है। दूर रहनेपर भी इस अधिकारकी मै रक्षा करूँगी ही करूँगी।" इतना कहकर विनोद्दिनी कुछ देर तक चुप रही। उसके बाद अकस्मात् चौककर कह उठी, "तुम भोजन कर चुके हो क्या ?"

बिहारीने कहा, "मै स्टेशनपर खा-पी आया हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "मैंने गाँवसे तुम्हे जो पत्र लिखा था उसे खोलकर बिना कुछ जवाब दिये ही तुमने महेन्द्रके हाथ उसे वापस क्यो कर दिया था ?"

बिहारीने कहा, "तुम्हारा कोई पत्र मुझे नही मिला।"

विनोदिनीने कहा, "अबकी बार कलकत्तेमे महेन्द्रसे तुम्हारी भेट हुई थी क्या ?"

बिहारीने कहा, "तुम्हे गाँव पहुँचा आनेके दूसरे दिन महेन्द्र मेरे घरपर गया था, और उसके बाद ही मै कलकत्ता छोडकर इधर घूमने निकल पड़ा था। उससे फिर मेरी भेट नही हुई।"

विनोदिनीने फिर पूछा, "उसके पहले और-किसी दिन मेरी चिट्ठी बिना उत्तर दिये तुमने वापस कर दी थी ?"

बिहारीने कहा, "नही, ऐसा कभी नही हुआ।"

विनोदिनी स्तम्भित होकर बैठी रही। उसके बाद एक दीर्घ-नि श्वास छोडकर बोली, "अब मै सब समझ गई। अब मै अपनी सब बाते तुमसे कहती हूँ। अगर विश्वास करो तो मै अपना सौभाग्य समझूँगी, और अगर न करो, तो तुम्हें कोई दोष न दूँगी। मुझपर विश्वास करना कठिन है।"

बिहारीका हृदय उस समय आर्द्र हो गया था। इस भक्ति-भारसे विनम्र विनोदिनीकी पूजाका वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। उसने कहा, "भाभी, तुम्हे अब कुछ भी कहनेकी जरूरत नही, बिना कुछ सुने ही मै तुम्हारा विश्वास करता हूँ। मै तुमसे घृणा नही कर सकता। अब तुम एक भी शब्द मत कहो।"

इतना सुनते ही विनोदिनीकी आँखोसे आँसू गिरने लगे, उसने बिहारीके पाँवोकी धूल माथेसे लगा ली। बोली, "सब बाते बिना बताये मै जी नही सकती। जरा धीरज रखके तुम्हे सुनना ही होगा। तुमने मुझे जो आदेश दिया था उसे मैने शिरोधार्य कर लिया। यद्यपि तुमने मुझे एक पत्र भी नही दिया, फिर भी मै अपने

गाँववालोकी निन्दा और हँसीको सहती-हुई गाँवमे ही अपना जीवन बिता देती, तुम्हारे स्नेहके बदले तुम्हारे शासनको ही अपना लेती ; किन्तु विधाताको यह स्वीकार न था। मैंने जिस पापको जगाया था उसने मुझे निर्वासनमें भी नही टिकने दिया। महेन्द्रने गाँवमे जाकर, मेरे घरके दरवाजेपर जाकर, मुझे सबके सामने लाञ्छित किया। उस गाँवमे फिर मेरे लिए स्थान ही नही रहा। दूसरी बार फिर तुम्हारे आदेशके लिए मैंने तुम्हे बहुत खोजा, पर, किसी भी तरह मैं तुम्हे पा न सकी। महेन्द्रने तुम्हारे पीछे मेरी खुली-हुई चिट्ठी तुम्हारे घरसे वापस लाकर मुझे धोखा दिया। मैंने समझा कि तुमने मुझे बिलकुल ही त्याग दिया। इसके बाद मैं बिलकुल ही नष्ट हो सकती थी। किन्तु मालूम नही, तुममे क्या गुण है, तुम दूर रहकर भी रक्षा कर सकते हो। तुम्हें मैंने अपने मनमे स्थान दिया है, इसीसे मैं पवित्र हो गई हूँ। एक दिन तुमने मुझे दूर करके अपना जो परिचय दिया है, तुम्हारा वही कठोर परिचय, कठोर सोनेकी तरह, कठोर माणिककी तरह, मेरे मनमे विराज रहा है। उसने मुझे महामूल्य कर दिया है। देव, आज मै तुम्हारे इन चरणोको छूकर कहती हूँ, मेरा वह मूल्य नष्ट नही हुआ है।"

बिहारी चुप बैठा रहा। विनोदिनी भी फिर कोई बात न कर सकी।

अपराह्नका प्रकाश क्रमश म्लान होता जा रहा था। इतनेमे महेन्द्र घरके द्वारके पास आकर बिहारीको देखकर चौक पडा। विनोदिनीके प्रति उसके मनमें जो एक उदासीनता पैदा हो रही थी वह ईर्षाकी ताडनासे दूर हो चली। विनोदिनी बिहारीके पैरोके पास स्तब्ध बैठी-हुई है, यह देखकर प्रत्याख्यात-अस्वीकृत महेन्द्रके गर्वको बडी गहरी चोट पहुँची। अब उसे जरा भी सन्देह न रहा कि बिहारीका विनोदिनीके साथ जरूर पत्र-व्यवहार चल रहा था, और उसीका यह नतीजा है। अब तक बिहारी विमुख था, अब अगर वह खुद आकर पकडाई दे, तो विनोदिनी किसके रोके रुक सकती है? आज बिहारीको देखकर महेन्द्र इस बातको समझ गया कि वह विनोदिनीको छोड सकता है, किन्तु और-किसीके हाथ नही छोड सकता।

व्यर्थ रोषसे तीव्र व्यगके स्वरमे महेन्द्रने विनोदिनीसे कहा, "तो अब रङ्गभूमिसे महेन्द्रका प्रस्थान और बिहारीका प्रवेश है! दृश्य बहुत सुन्दर है, तालियाँ पीटकर अभिनन्दन करनेको जी चाहता है। किन्तु आशा है कि यही शेष अङ्कका शेष दृश्य होगा। अब इसके बाद और कुछ भी अच्छा नही लगेगा।"

विनोदिनीका चेहरा सुर्ख हो उठा। महेन्द्रका आश्रय लेनेके लिए जब कि उसे बाध्य होना पडा है तब इस अपमानका उत्तर उसके पास कुछ भी नही है। वह व्याकुल-दृष्टिसे सिर्फ एक बार बिहारीकी तरफ देखकर रह गई।

बिहारी पलगसे उठा और आगे बढकर महेन्द्रसे बोला, "महेन्द्र, विनोदिनीका तुम कापुरुषोकी तरह अपमान न करो। तुम्हारी भद्रता अगर तुम्हे न रोक सके तो तुम्हे रोकनेका अधिकार मुझे है।"

महेन्द्र हँस दिया, बोला, "इस बीचमे अधिकार भी तय हो गया! तो आज तुम्हारा नया नामकरण कर दिया जाय,—विनोद-बिहारी।"

बिहारीने अपमानकी मात्रा बढते देख महेन्द्रका हाथ पकड लिया; और कहा, "सुनो, महेन्द्र, विनोदिनीसे मै विवाह करूँगा, मै तुम्हे जताये देता हूँ। इसलिए अबसे तुम सयत होकर बात करना।"

सुनकर महेन्द्र मारे विस्मयके निस्तब्ध हो गया, और विनोदिनी चौंक उठी, उसकी छातीका भीतरका रक्त उथल-पुथल होने लगा।

बिहारीने कहा, "तुम्हे और-एक सवाद देना है, तुम्हारी मा मृत्यु-शय्यापर पडी है, उनके जीनेकी कोई आशा नही। मै आज रातकी गाडीसे ही चला जाऊँगा। विनोदिनी भी मेरे साथ जायेगी।"

विनोदिनी फिर चौक उठी, बोली, "बुआजी इतनी बीमार है?"

बिहारीने कहा, "अच्छी होनेवाली बीमारी नही है वह। कब क्या हो जाय, कहा नही जा सकता।"

इसके बाद महेन्द्र और-कोई बात न कहकर चुपचाप बाहर चला गया।

विनोदिनीने बिहारीसे कहा, "जो बात तुमने अभी कही है वह तुम्हारे मुँहसे निकली कैसे? यह क्या उपहास कर रहे हो?"

बिहारीने कहा, "नही, मै सच कह रहा हूँ, तुमसे मै विवाह करूँगा।"

"इस पापिष्ठाका उद्धार करनेके लिए?"

"नही। मै तुमसे प्रेम करता हूँ, श्रद्धा करता हूँ, इसलिए।"

"बस बस, यही मेरे लिए चरम पुरस्कार है। इतना जो तुमने मुझे स्वीकार किया है, इससे ज्यादा मै और कुछ भी नही चाहती। और मिले भी, तो वह रहेगा नही। धर्म उसे कभी बरदाश्त नही करेगा।"

"क्यो नही करेगा ?"

"छी छी, ऐसी बात मनमे लानेमे भी लज्जा मालूम होती है। मै विधवा हूँ, मै निन्दिता हूँ। सारे समाजके आगे मै तुम्हे लाञ्छित करूँ, यह कभी नही हो सकता। छी-छी, ऐसी बात फिर कभी तुम जबानपर मत लाना।"

"तो तुम मुझे त्याग दोगी ?"

"त्यागनेका अधिकार मुझे नही है। तुम गुप्त-रूपसे न-जाने कितनोका कितना भला करते रहते हो। तुम अपने किसी-एक व्रतका कोई-एक भार मुझपर छोड देना, उसीका निर्वाह करके मै अपनेको तुम्हारी सेविका समझकर जीवन बिता दूँगी। किन्तु, छी-छी, विधवासे तुम विवाह करोगे! तुम्हारी उदारताके लिए सब-कुछ सम्भव हो सकता है, किन्तु मै अगर ऐसा काम करूँ, तुम्हे समाजकी दृष्टिमे नष्ट कर दूँ, तो इस जीवनमें मै कभी भी सिर नही उठा सकती।"

"किन्तु, विनोदिनी, मै तुमसे प्रेम करता हूँ।"

"उस प्रेमके अधिकारसे मै आज सिर्फ एक स्पर्धा प्रकट करूँगी।"—यह कहते-हुए विनोदिनीने जमीनसे सिर छुआकर विहारीको प्रणाम किया और उसके पाँवकी उँगलियाँ चूम ली। और फिर पैरोके पास बैठकर कहने लगी, "दूसरे जन्ममे तुम्हे पानेके लिए मै तपस्या करूँगी, इस जन्ममे मै और कुछ आशा नही रखती, अपना और-कुछ प्राप्य भी नही समझती। मैने बडा दु ख दिया है और बडा दु ख पाया है, मुझे काफी शिक्षा मिल चुकी है। उस शिक्षाको अगर भूल जाती, तो मै तुम्हे हीन बनाकर और भी हीन हो जाती। किन्तु तुम ऊँचे हो, इसीलिए आज मै अपना मस्तक उठा सकी हूँ। अपने इस आश्रयको मै धूलमे नही मिला सकती।"

बिहारी गम्भीर होकर चुप बैठा रहा।

विनोदिनीने हाथ जोडकर कहा, "तुम गलती मत करो। मुझसे ब्याह करके तुम सुखी न हो सकोगे। तुम्हारा गौरव चला जायगा, और मै भी अपना गौरव खो दूँगी। तुम चिरकालके निर्लिप्त हो, प्रसन्न हो। आज भी तुम वैसे ही बने रहो। मै दूर रहकर तुम्हारा काम देखूँगी। तुम प्रसन्न होओ, तुम सुखी होओ।"

५२

महेन्द्र अपनी माके कमरेमे जाना ही चाहता था कि इतनेमें आशा जल्दीसे बाहर निकल आई, और बोली, "अभी तुम माके पास मत जाओ।"

महेन्द्रने पूछा "क्यो ?"

आशाने कहा, "डाक्टरने कहा है, अचानक माके मनमे सुख या दु ख किसी भी बातका धक्का लगनेसे तुरत खतरा हो सकता है।"

महेन्द्रने कहा, "मैं एक बार चुपके-से उनके सिरहानेके पास जाकर देख आऊँगा,—उन्हे मालूम भी नही पडेगा।"

आशाने कहा, "वे जरा-सा खटका होते ही चौक उठती है। तुम्हारे घुसते ही उन्हे मालूम हो जायगा।"

"तो तुम अब क्या चाहती हो ?"

"पहले बिहारी-लालाजी एक बार आकर देख जायें,—वे जैसी सलाह देगे वैसा किया जायगा।"

कहते-कहते बिहारी आ गया। आशाने उसे बुला भेजा था।

बिहारीने कहा, "भाभी, तुमने मुझे बुलाया था ? मा अच्छी है तो ?"

बिहारीको देखकर आशाको मानो सहारा मिल गया। उसने कहा, "तुम्हारे चले जानेके बादसे वे और भी चचल हो उठी है। पहले दिन जब उन्होने तुम्हे नही देखा तो मुझसे पूछने लगी, 'बिहारी कहाँ है।' मैंने कहा, 'वे एक खास कामसे गये है, वृहस्पतिको आनेकी बात है।' तबसे वे रह-रहकर चौक उठती है। मुँहसे कुछ भी नही कहती, पर भीतर-ही-भीतर मालूम होता है किसीकी बाट देख रही हैं। कल तुम्हारा तार पाकर मैंने उन्हे जता दिया था कि आज तुम आओगे। तुम्हे जो-जो चीज अच्छी लगती है वे सब चीजे मँगवाई है उन्होने, सामनेके बरण्डेमें रसोई बनेगी, वे देखेगी। डाक्टरकी मनाही उन्होने बिलकुल नही सुनी। कुछ देर पहले मुझे बुलाकर उन्होने कहा था कि 'बहू, आज तुम अपने हाथसे रसोई बनाना, बिहारीको मैं अपने सामने बिठाकर खिलाऊँगी'।"

यह सुनकर बिहारीकी आँखोमे आँसू भर आये। उसने पूछा, "माकी तबीयत कैसी है ?"

आशाने कहा, "तुम एक बार खुद चलकर देख लो। मुझे तो लगता है, रोग बढता ही जाता है।"

बिहारी कमरेके भीतर चला गया। महेन्द्र बाहर खडा-खडा आश्चर्य करने लगा, आशाने अनायास ही घरका कर्तृत्व ग्रहण कर लिया है! उसने उसे भीतर जानेसे कितनी स्वाभाविकतासे रोक दिया! न सङ्कोच किया, न अभिमान! महेन्द्रका बल आज कितना घट गया है, आज वह अपराधी है, वह चुपचाप बाहर खडा रहा, माके कमरेमे भी न घुस सका।

उसपर यह भी एक बडे आश्चर्यकी बात है कि बिहारीके साथ आशा कैसी नि सङ्कोच होकर बात करने लगी है। सब सलाह उसीसे होती है, वही आज घरका एकमात्र रक्षक है, सबका हितू है, मित्र है। उसकी गतिविधि सर्वत्र है, उसीके उपदेशसे सब चल रहा है। महेन्द्र कुछ दिनोके लिए जिस जगहको छोडकर चला गया था, वापस आकर देखता है कि वह जगह ठीक पहले-जैसी नही रही।

बिहारीके भीतर घुसते ही राजलक्ष्मीने अपनी करुण दृष्टि बिहारीके मुँहपर रखते-हुए कहा, "आ गया बेटा!"

बिहारीने कहा, "हाँ, मा, आ गया।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तेरा काम पूरा हो गया?" इतना कहकर वे एकाग्र दृष्टिसे उसके मुँहकी तरफ देखने लगी।

बिहारी प्रफुल्ल मुखसे बोला, "हाँ, मा, मेरा काम पूरा हो गया, अब मुझे कोई चिन्ता नही।" इतना कहकर उसने एक बार बाहरकी तरफ देखा।

राजलक्ष्मीने कहा, "आज मेरी बहू-रानी तेरे लिए अपने हाथसे रसोई बनायेगी, मै यहीसे पडी-पडी बताती रहूँगी। डाक्टर मना करते हैं, पर, अब मनाही किसलिए, बेटा! मै क्या जी भरकर तुमलोगोको एक बार अपने सामने बिठाकर खिला भी न जाऊँ?"

बिहारीने कहा, "इसमे डाक्टरकी मनाहीका तो कोई कारण नही मालूम होता मुझे। मा, तुम नही बताओगी तो काम कैसे चलेगा? बचपनसे ही तुम्हारे हाथकी रसोई हमलोगोको अच्छी लगती आई है,—और महेन भइयाका तो पश्चिमकी दाल-रोटी खाते-खाते जी ऊब गया होगा,—आज तुम्हारी बहू-रानीके हाथका मछलीका झोर खाकर उनका क़ायापलट हो जायगा। आज हम दोनो भाई

बचपनकी तरह होड लगाकर खायेंगे,—देखें आज तुम्हारी बहू-रानी कहाँ तक खिला सकती है ।"

यद्यपि राजलक्ष्मी समझ गईं थी कि बिहारी महेन्द्रको अपने साथ लेता आया है, फिर भी उसका नाम सुनते ही उनके हृदयका स्पन्दन क्षण-भरके लिए बढ गया और साँस लेनेमे कष्ट होने लगा ।

कष्ट कुछ उपशम होनेपर बिहारीने कहा, "पश्चिम जाकर महेन-भइयाका स्वास्थ्य तो कुछ अच्छा हो गया है । सफरकी वजहसे चेहरेपर आज कुछ थकान जरूर है, नहाने-खानेके बाद ही सब ठीक हो जायगा ।"

राजलक्ष्मी फिर भी महेन्द्रके सम्बन्धमे कुछ नही बोली । और तब बिहारी कहने लगा, "मा, महेन-भइया बाहर खडे है, तुम्हारे बुलाये बिना उनसे आते नही बन रहा है ।"

राजलक्ष्मी मुँहसे कुछ न कहकर दरवाजेकी तरफ देखने लगी । देखते ही बिहारी पुकार उठा, "महेन-भइया, भीतर आओ ।"

महेन्द्रने धीरे-धीरे घरमे प्रवेश किया । राजलक्ष्मी इस डरसे कि कही सहसा उनका हृदय-स्पन्दन बन्द न हो जाय, महेन्द्रके मुँहकी तरफ तत्काल देख न सकी । आधी-आधी आँखे मीचे रही । महेन्द्र माके बिस्तरकी तरफ देखते ही चौक उठा । मानो किसीने उसे तमाचा मार दिया हो ।

महेन्द्र माके पाँवोके पास सिर रखकर पाँव पकडे पडा रहा । हृदयके स्पन्दनसे राजलक्ष्मीका सारा शरीर काँप उठा । कुछ देर बाद अन्नपूर्णाने धीरेसे कहा, "जीजी, महेनको तुम उठनेके लिए कहो, नही-तो वह उठेगा नही ।"

राजलक्ष्मीने मुश्किलसे मुँहसे शब्द निकालते-हुए कहा, "महेन, उठ ।"

महेन्द्रका नाम उच्चारण करते ही बहुत दिन बाद उनकी आँखोसे झरझर आँसू झरने लगे । भीतरके आँसुओने बाहर निकलकर उनके हृदयकी वेदनाको कुछ हलका कर दिया । तब महेन्द्र उठा और जमीनपर घुटने टेककर पलगकी पाटीपर छाती रखकर अपनी माके पास आकर बैठ गया । राजलक्ष्मीने मुश्किलसे करवट बदलकर दोनो हाथोसे महेन्द्रका सिर अपनी तरफ खीचकर उसके माथेको सूँघा और चूम लिया । महेन्द्र गद्‌गद कण्ठसे बोला, "मा, मैंने तुम्हे बहुत कष्ट दिये है, अब मुझे माफ कर दो ।"

हृदय शान्त होनेपर राजलक्ष्मीने कहा, "ऐसी बात तू न कह, महेन, तुझे माफ किये बिना क्या मै जी सकती हूँ !—बहू, बहू ! कहाँ गई बहू ?"

आशा बगलके कमरेमे पथ्य बना रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लाईं।

तब राजलक्ष्मीने महेन्द्रको जमीनसे उठकर पलगपर बैठनेके लिए इशारा किया। महेन्द्रके पलगपर बैठ जानेपर राजलक्ष्मीने आशाको उसके पास बैठनेके लिए जगह दिखाते-हुए कहा, "बहू, तुम यहाँ बैठो,—आज मै तुम दोनोको एक बार एकसाथ बिठाकर देखूँगी, इसीसे मेरा सब दुख जाता रहेगा, बहू ! बेटी, अब मुझसे तुम शरमाओ मत, और महेनसे भी अपने मनमे किसी तरहका अभिमान न रखकर एक बार यहाँ बैठ जाओ, आज मुझे अपनी आँखे ठण्डी कर लेने दो, बेटी !"

तब आशा घूँघट काढे लज्जाके साथ धीरे-धीरे कम्पित हृदयसे महेन्द्रके पास आकर बैठ गई। राजलक्ष्मीने अपने हाथमे आशाका दाहना हाथ लेकर महेन्द्रके हाथमें रखते-हुए कहा, "मै अपनी इस रानी-बेटीको तेरे हाथ सौपे जाती हूँ,—मेरी एक बात याद रखना, ऐसी लक्ष्मी और कही भी तुझे नही मिलनेकी। मझली-बहू, आओ, इन्हे एक बार आशीर्वाद दो, तुम्हारे पुण्यसे इनका कल्याण हो।"

अन्नपूर्णाके सामने आकर खडे होते ही दोनोने अश्रुपूर्ण नेत्रोसे उन्हें प्रणाम किया और पाँवकी धूल माथेसे लगाई। अन्नपूर्णाने दोनोका माथा चूमते-हुए कहा, "भगवान तुमलोगोका कल्याण करे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बिहारी, आओ बेटा, तुम भी महेनको क्षमा कर दो।"

बिहारीके उसी क्षण महेन्द्रके सामने जा खड़े होते ही महेन्द्रने उठकर दृढ बाहुओसे उसे अपनी छातीसे लगा लिया।

राजलक्ष्मी बोली, "महेन, मै तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि बचपनसे बिहारी तेरा जैसा मित्र रहा है, हमेशा वैसा ही बना रहे। इससे बढ़कर तेरा सौभाग्य और कुछ भी नही हो सकता।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी अत्यधिक क्लान्तिके कारण निस्तब्ध हो गईं। बिहारी एक उत्तेजक दवा उनके मुँहके पास ले गया तो उन्होने उसका हाथ हटा दिया, और कहा, "अब दवाका क्या होगा, बेटा ! अब मुझे भगवानका स्मरण करने दे, वे ही मुझे मेरे समस्त ससार-दाहकी आखिरी दवा देगे। महेन, अब तुमलोग जाकर ज़रा आराम करो। बहू, जाओ, रसोई चढ़ाओ।"

शामके वक्त बिहारी और महेन्द्र दोनो राजलक्ष्मीके सामने भोजन करने बैठे। आशापर परोसनेका भार था, वह परोसने लगी।

महेन्द्रकी छातीके भीतरसे ऑसू उमडे आ रहे थे, उसके मुँहमे कौर नही जाता था। राजलक्ष्मी उससे बार-बार कहने लगी, "महेन, तू कुछ खा क्यो नही रहा है? अच्छी तरह खा, मै देखूँ।"

बिहारीने कहा, "जानती हो, मा, महेन-भइया हमेशासे ही ऐसे है, कुछ खा ही नही सकते। —भाभी, छैनेकी कढी जरा और देना, बडी अच्छी बनी है।"

राजलक्ष्मी प्रसन्न होकर जरा हँसती-हुई बोली, "मैंने कहा था-न, बिहारीको छैनेकी कढी अच्छी लगती है। अरे, इतनेसे उसका क्या होगा, बहू, जरा अच्छी तरह परोसो।"

बिहारीने कहा, "तुम्हारी यह बहू बडी कजूस है, मा, हाथसे जल्दी कुछ निकलता ही नही।"

राजलक्ष्मी हँसती-हुई बोली, "देखो तो, बहू, बिहारी तुम्हारा ही नमक खाकर तुम्हारी ही निन्दा कर रहा है!"

अबकी बार आशाने बिहारीकी थालीमें बहुत-सी कढी परोस दी। बिहारी कहने लगा, "हाय हाय, सिर्फ कढी खिलाकर ही पेट भर दोगी मालूम होता है। बाकीकी सब अच्छी-अच्छी चीजे भाई-साहबकी थालीमे परोसी जायेगी!"

आशा अस्पष्ट स्वरमे कह गई, "निन्दकका मुँह किसी भी तरह बन्द ही नही होना चाहता!"

बिहारीने मृदु स्वरमे कहा, "मिठाई देकर परीक्षा कर देखो, बन्द होता है या नही!"

दोनो मित्र एकसाथ बैठकर भोजन कर चुके तो राजलक्ष्मीको बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होने कहा, "बहू, अब तुम जल्दीसे खा-पी लो।"

राजलक्ष्मीके आदेशसे आशा जब खाने चली गई, तो उन्होने महेन्द्रसे कहा, "महेन, जा तू, आराम कर जाके।"

महेन्द्रने कहा, "अभीसे सो जाऊँ जाकर?"

महेन्द्रने निश्चय किया था कि आज वह माकी सेवा करेगा। किन्तु राजलक्ष्मीने ऐसा नहीं करने दिया। उन्होने कहा, "तू रास्तेका थका-हुआ है, जा, सो जाकर।"

आशा खा-पीकर पखा हाथमे लिये राजलक्ष्मीके सिरहाने बैठने लगी तो उन्होने धीरेसे कहा, "बहू, महेन्द्रके बिस्तर वगैरह ठीकसे हुए कि नही, जरा देख तो आओ। वह अकेला होगा।"

आशा मारे शरमके गड-गड गई और किसी तरह कमरेसे बाहर निकलकर ऊपर चली गई। राजलक्ष्मीके पास अन्नपूर्णा और बिहारी रह गया। राजलक्ष्मीने बिहारीसे पूछा, "तुझसे एक बात पूछती हूँ, बेटा! तू बता सकता है, विनोदिनीका क्या हुआ? अब वो कहाँ है?"

बिहारीने कहा, "कलकत्तेमे ही है।"

राजलक्ष्मी नीरव दृष्टिसे बिहारीसे कुछ पूछने लगी। बिहारी समझ गया। बोला, "विनोदिनीके बारेमे अब तुम्हे कोई डर नही, मा!"

राजलक्ष्मीने कहा, "उसने मुझे बडे दु ख दिये है, बिहारी, फिर भी मै उसे भीतरसे चाहती हूँ।"

बिहारीने कहा, "वह भी भीतरसे तुम्हे बहुत चाहती है, मा!"

राजलक्ष्मी बोली, "मुझे भी ऐसा मालूम होता है। दोष-गुण सभीमे होते है, पर वो मुझे चाहती जरूर थी, वैसी सेवा कोई कपटसे नही कर सकता।"

बिहारी बोला, "तुम्हारी सेवा करनेके लिए वह व्याकुल हो रही है।"

राजलक्ष्मीने एक गहरी साँस ली और कहा, "महेन्द्र वगैरह तो अब सोने चले गये है,—रातको उसे एक बार यहाँ ले आनेमे हर्ज क्या है?"

बिहारीने कहा, "मा, वो तो बाहरवाले घरमे छिपी बैठी है। मैने बहुत कहा, पर उसने आज दिन-भर पानी तक नही छुआ। उसने प्रतीज्ञा की है कि जब तक तुम उसे बुलाके माफ नही कर दोगी तब तक वह अन्न-जल कुछ भी नही छुएगी।"

राजलक्ष्मी चचल हो उठी, बोली, "दिन-भरसे उपास किये बैठी है! अब तक तैने मुझसे कहा भी नही! जा, बुला ला उसे, बुला जल्दी।"

विनोदिनीने धीरे-धीरे राजलक्ष्मीके कमरेमे प्रवेश किया। उसे देखते ही वे बोल उठी, "छी छी, बहू, यह तुमने क्या किया! दिन-भरसे उपास किये बैठी हो। जाओ जाओ, पहले खा-पी आओ,—पीछे बात होगी।"

विनोदिनीने राजलक्ष्मीके पाँवकी धूल माथेसे लगाई और कहा, "पहले तुम मुझ-पापिनको माफ कर दो, बुआजी, तब मै खाऊँगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैंने तुझे माफ कर दिया, बेटी, माफ कर दिया। मेरा अब किसीपर भी रोष नही है।" और फिर विनोदिनीका दाहना हाथ पकडकर बोली, "बहू, तुमसे किसीका बुरा न हो, और तुम भी सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हारा आशीर्वाद झूठा नही होगा, बुआजी! मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ, मुझसे अब ससारमे किसीका भी बुरा न होगा।"

अन्नपूर्णाके पॉव लागकर विनोदिनी खाने चली गई।

जब वह खाकर वापस आई तब राजलक्ष्मीने उससे कहा, "बहू, तो अब तुम जा रही हो?"

विनोदिनीने कहा, "बुआजी, मैं तुम्हारी सेवा करना चाहती हूँ। ईश्वर साक्षी है, अब मुझसे तुम किसी भी अनिष्टकी आशङ्का मत करो।"

राजलक्ष्मी बिहारीके मुँहकी ओर देखने लगी। बिहारीने जरा सोचकर कहा, "इन्हे तुम अपने पास रक्खो, मा, अब कोई हर्ज नही।"

रातको बिहारी विनोदिनी और अन्नपूर्णा तीनोने मिलकर राजलक्ष्मीकी सेवा-शुश्रूषा की।

उधर आशा इस शरमके मारे कि रात-भर वह सासके पास न आ सकी, पौ फटते ही उठ बैठी। महेन्द्रको सोता-हुआ छोडकर झटपट हाथ-मुँह धोकर कपडे बदलकर नीचे चली आई। उस समय कुछ-कुछ अँधेरा था। राजलक्ष्मीके कमरेके पास आते ही उसने जो-कुछ देखा, उससे वह दग रह गई। सोचने लगी, 'यह क्या सपना देख रही हूँ!'

विनोदिनी स्पिरिटका लैम्प जलाकर पानी गरम कर रही थी। बिहारी रातको सो नही सका था, उसके लिए चाय बनेगी।

आशाको देखते ही विनोदिनी उठ खडी हुई। बोली, "आज मैं अपने सारे अपराधोके साथ तुम्हारा आश्रय ले रही हूँ, और-कोई मुझे यहाँसे नही हटा सकता, किन्तु तुम अगर कहो कि "जाओ", तो मुझे इसी घड़ी चला जाना होगा।"

आशा कुछ जवाब न दे सकी। उसका मन क्या कह रहा था, सो भी वह न समझ सकी, वह अभिभूत-सी हो रही।

विनोदिनी बोली, "मुझे तुम कभी भी माफ़ नही कर सकोगी,—उसकी कोशिश

भी मत करना। किन्तु अब मुझसे बिलकुल डरना मत। जितने दिन बुआजीको जरूरत होगी उतने दिन मुझे जरा काम करने दो, उसके बाद मैं चली जाऊँगी।"

कल राजलक्ष्मीने जब आशाका हाथ लेकर महेन्द्रके हाथमे दिया था तब आशाने अपने मनसे सम्पूर्ण अभिमान पोछकर सम्पूर्ण-रूपसे महेन्द्रको आत्म-समर्पण कर दिया था। किन्तु आज विनोदिनीको सामने देखकर उसके खण्डित प्रेमके 'दाह'ने शान्ति माननेसे इनकार कर दिया। आशाके मनमें यह बात तरङ्गोकी तरह बार-बार उठने लगी कि 'इसे उन्होने एक दिन चाहा था, और अब भी अगर चाहते हों तो आश्चर्य नही! कुछ ही देर बाद उनकी आँख खुलेगी, फिर वे विनोदिनीको देखेंगे। किस दृष्टिसे देखेंगे, कौन जाने!' कल रातको आशाने अपने सम्पूर्ण घर-संसारको निष्कण्टक देखा था, और आज तडके ही उठकर देखा कि काँटेका झाड़ उसके घरके आँगनमें ही मौजूद है! ससारमे सुखका स्थान ही सबसे ज्यादा सङ्कीर्ण होता है, कहीं भी उसे सम्पूर्णत निर्विघ्न रखनेका अवकाश नही।

आशा अपने हृदय-भारको लिये-हुए ही भीतर गई, और अत्यन्त लज्जाके साथ बोली, "मौसी, तुम सारी रात जगती रही हो, जाओ, थोडा सो लो।"

अन्नपूर्णाने आशाके मुँहकी तरफ एक बार अच्छी तरह देखा, और फिर वे सोने न जाकर आशाको अपने कमरेमें ले गईं। अन्नपूर्णाने कहा, "चुन्नी, अगर तू सुखी होना चाहती है तो बीती बातोकी याद मत कर। दूसरोको दोषी माननेमें जितना सुख है, दोष याद रखनेमें उससे बहुत ज्यादा दु ख होता है।"

आशाने कहा, "मौसी, मै अपने मनमें किसी बातको पालकर नहीं रखना चाहती, मै भूलना ही चाहती हूँ,—पर भुलाये भूलती जो नही!"

अन्नपूर्णाने कहा, "बेटी, तू ठीक कहती है। उपदेश देना सहज है, उपाय बता देना ही कठिन है। फिर भी मै तुझे एक उपाय बताये देती हूँ। कमसे कम बाहरसे इस भावकी रक्षा करनी ही होगी कि भूल गई हूँ। पहले बाहरसे भूलना शुरू करना, फिर भीतरसे भी भूल जायेगी। इस बातको याद रखना, बेटी, तू अगर खुद न भूली तो दूसरोको भी याद दिलाती रहेगी। तू अपनी इच्छासे न भूल सके तो मै तुझे आज्ञा देती हूँ, विनोदिनीके साथ तू ऐसा व्यवहार कर कि जैसे उसने तेरा कोई अनिष्ट किया ही न हो और उससे तेरे अनिष्टकी कोई आशङ्का ही नहीं।"

आशाने नम्र मुखसे कहा, "मुझे क्या करना होगा, बताओ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "विनोदिनी अभी बिहारीके लिए चाय बना रही है। तू दूध-चीनी प्याला सब ले जा,—दोनो जनी मिलकर काम करो।"

आशा आदेश पालनके लिए उठने लगी। अन्नपूर्णाने कहा, "यह तो सहज है,—किन्तु मेरी एक बात और सुननी होगी, वह और भी कठिन है, उसका पालन तुझे करना ही होगा। बीच-बीचमे महेन्द्रके साथ विनोदिनीकी भेट होगी ही, तब तेरे मनमे क्या होगा सो मैं समझ सकती हूँ। किन्तु उस समय तू छिपकर, या कनखियोसे भी, महेन्द्रका या विनोदिनीका भाव देखनेकी चेष्टा न करना। छाती फट जानेपर भी इसमें तुझे अडिग रहना पडेगा। महेन्द्रको यह मालूम होना चाहिए कि तू उसपर सन्देह नही करती, शोक नही करती, तेरे मनमे कोई डर नही है, चिन्ता नही है,—जोड टूटनेके पहले जैसा था, जोड लगनेके बाद फिर ठीक वैसा ही हो गया है,—टूटनेका चिह्न तक मिट गया है। महेन्द्र अथवा और कोई भी तेरा मुँह देखकर अपनेको अपराधी न समझने पावे। चुन्नी, यह मेरा अनुरोध या उपदेश नही है, यह तेरी मौसीकी आज्ञा है। मै जब काशी चली जाऊँगी तब भी मेरे पीछे तू एक दिनके लिए भी कभी मेरी बातको मत भूलना।"

आशा दूध-प्याले वगैरह लेकर विनोदिनीके पास पहुँच गई, और बोली, "पानी गरम हो गया क्या? मै दूध लाई हूँ।"

विनोदिनीने विस्मित होकर आशाके मुँहकी ओर देखा, और कहा, "बिहारी-लालाजी बरण्डेमें बैठे है, चाय तुम उनके पास भिजवा देना,—मै तब तक बुआजीके लिए मुँह-हाथ धोनेकी तैयारी कर रखूँ। वे अब उठने-ही-वाली है।"

विनोदिनी चाय लेकर बिहारीके पास नही गई। बिहारीने उसका प्रेम स्वीकार करके उसे जो अधिकार दिया है उस अधिकारको इच्छानुसार काममे लानेमें उसे सङ्कोच मालूम होने लगा। अधिकारकी अपनी एक मर्यादा होती है, उस मर्यादाकी रक्षा करनेके लिए अधिकार-प्रयोगको सयत रखना पडता है। जितना मिले उतना पानेके लिए खीचातीनी करना कङ्गालको ही शोभा दे सकता है। भोगको सीमित और कम करनेमें ही सम्पदका यथार्थ गौरव है। अब बिहारी यदि स्वय उसे न बुलावे तो किसी-एक बहानेसे विनोदिनी उसके पास नही जा सकती।

दोनोमें बात हो रही थी कि इतनेमें महेन्द्र आ पहुँचा। आशाका हृदय यद्यपि उसी क्षण काँप उठा, फिर भी उसने अपनेको संयत करके स्वाभाविक स्वरमें महेन्द्रसे

कहा, "तुम इतनी जल्दी कैसे उठ बैठे ? मै तो इस डरसे खिड़की-किवाड़ सब बन्द कर आई थी कि कही धूप लगनेसे तुम्हारी नीद न उचट जाय।"

विनोदिनीके सामने ही आशाको ऐसे सहज-स्वाभाविक-भावसे बात करते देख महेन्द्रकी छातीपरसे मानो एक बडा-भारी पत्थर-सा उतर गया। उसने आनन्दित चित्तसे कहा, "आँख खुलते ही मै माको देखने चला आया,—मा अभी क्या सो रही है ?"

आशाने कहा, "हॉ, अभी सो रही है, अभी तुम मत जाना। बिहारी-लालाजीने कहा है, आज उनकी तबीयत कुछ अच्छी है। बहुत दिन बाद कल रात-भर उन्हें अच्छी तरह नीद आई है।"

महेन्द्रने निश्चिन्त होकर पूछा, "चाची कहाँ है ?"

आशाने इशारेसे उनका कमरा दिखा दिया। आशाकी इस दृढता और सयमको देखकर विनोदिनी भी आश्चर्यमे रह गई। महेन्द्रने पुकारा, "चाची !"

अन्नपूर्णा भोरमे ही नहा-धो ली थी ; और पूजामे बैठना ही चाहती थी कि इतनेमे महेन्द्रकी आवाज सुनकर बोली, "आ महेन, आ।"

महेन्द्रने उन्हे प्रणाम करते-हुए कहा, "चाची, मै पापी हूँ, तुम्हारे पास बैठनेमे मुझे शरम मालूम होती है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "छी छी, ऐसी बात मुँहसे नही निकालते, बेटा ! बच्चे धूल-मिट्टीमे भी खेलते है और माकी गोदमे भी बैठते है।"

महेन्द्रने कहा, "पर मेरी यह धूल-मिट्टी अब किसी तरह पुँछ नही सकती।"

अन्नपूर्णाने कहा, "दो-एक बार झाडते ही सब झड जायगी, बेटा ! यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ। अपने अच्छेपनका तुझे अहङ्कार हो गया था, अपनेपर तुझे बहुत ज्यादा विश्वास था,—पापकी आँधीने सिर्फ तेरे उस गर्वको तोड दिया है, और कोई अनिष्ट नही किया।"

महेन्द्रने कहा, "चाची, अब मै तुम्हे नही छोड़नेका, तुम्हारे चले जानेसे ही मेरी ऐसी दुर्गति हुई है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "मै यहाँ रहकर जिस दुर्गतिको रोके रखती उस दुर्गतिका एक बार हो जाना ही अच्छा रहा। अब तुझे मेरी कोई जरूरत नही होगी।" .

इतनेमे द्वारके पाससे आवाज़ आई, "चाची, पूजा करने बैठी हो क्या ?"

अन्नपूर्णा बोली, "नही, तू आ।"

बिहारी कमरेमे आ गया। इतने सवेरे महेन्द्रको जाग्रत देखकर उसने कहा, "महेन-भइया, आज तुमने अपने जीवनमें शायद प्रथम सूर्योदय देखा है!"

महेन्द्रने कहा, "हाँ, बिहारी, आज मेरे जीवनमे यह प्रथम सूर्योदय है। चाची, बिहारीको शायद तुमसे कुछ सलाह करनी है, मै जाऊँ।"

बिहारी हँस दिया, बोला, "न-हो-तो, तुम्हे भी कैबिनेटका मिनिस्टर बना लिया जाता है। तुमसे मैंने कभी कोई बात छिपाई नही। अगर आपत्ति न करो तो आज भी न छिपाऊँगा।"

महेन्द्रने कहा, "मै आपत्ति करूँगा! पर हाँ, अब मै तुमसे दावा नही कर सकता। तुम अगर मुझसे कुछ न छिपाओ, तो मैं भी शायद अपनेपर फिरसे श्रद्धा कर सकूँगा।"

आजकल महेन्द्रके सामने सब बात बिना सङ्कोचके कहना कठिन हो गया है। बिहारीका मुँह रुक-सा आया, फिर भी उसने जोर लगाकर कहा, "मै विनोदिनीसे विवाह करूँगा, ऐसी एक बात उठी थी,—उस बातको पूरी करनेके लिए चाचीके पास आया हूँ।"

महेन्द्र अत्यन्त सकुचित हो उठा। अन्नपूर्णा चकित होकर कह उठी, "अब तू यह कैसी बात कर रहा है, बिहारी!"

महेन्द्रने प्रबल शक्तिका प्रयोग करके अपना सङ्कोच दूर कर दिया, बोला, "बिहारी, अब उसकी कोई जरूरत नही रही।"

अन्नपूर्णा बोली, "इस प्रस्तावसे विनोदिनीका भी कोई सम्बन्ध है क्या?"

बिहारीने कहा, "बिलकुल नही।"

अन्नपूर्णाने कहा, "वो क्या इसपर राजी होगी?"

महेन्द्र बोल उठा, "विनोदिनी क्यो नही राजी होगी, चाची? मुझे मालूम है, वह एकाग्र मनसे बिहारीकी भक्ति करती है। ऐसा आश्रय क्या वह स्वेच्छासे छोड़ सकती है?"

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, मैंने विनोदिनीसे विवाहका प्रस्ताव किया था, उसने लज्जाके साथ उसे अस्वीकार कर दिया है।"

सुनकर महेन्द्र चुप रह गया।

५३

कष्टके उतार-चढावमे किसी तरह राजलक्ष्मीके दो-तीन दिन गुजर गये। एक दिन सवेरे उनका कष्ट बहुत-कुछ उपशम हो गया, और उनके चेहरेपर प्रसन्नताकी झलक दिखाई दी। उस दिन उन्होनें महेन्द्रको बुलाकर कहा, "अब मेरे ज्यादा दिन नहीं रह गये, बेटा, पर अब मैं सुखसे मरूँगी। अब मुझे कोई भी दु.ख नहीं है। तू जब छोटा था तब तुझे लेकर मुझे कितना आनन्द था, मै कह नही सकती। आज उसी आनन्दसे मेरी छाती भर उठी है। तू मेरा गोदका लडका है, मेरे हृदयका धन है,—तेरी सारी बलाएँ लेकर मैं चली जा रही हूँ, यह मेरे लिए सबसे बडा सुख है।" इतना कहकर वे महेन्द्रके मुँहपर देहपर हाथ फेरने लगी। महेन्द्रका रोना बाधा न मानकर उच्छ्वसित हो उठा। राजलक्ष्मीने कहा, "रो मत, बेटा! लक्ष्मी घरमें रही। बहूको मेरी चाभी दे देना। सब-कुछ मैंने सम्हालकर रख दिया है, तुमलोगोकी गृहस्थीमे किसी चीजका अभाव नही होगा। एक बात मैं और कहती हूँ, महेन, मेरे मरनेसे पहलेकिसीसे कुछ मत कहना। मेरे बकसमे दो हजार रुपयेके नोट अलग किये-हुए रक्खे है। उन्हें मैं विनोदिनीको दिये जाती हूँ। वो विधवा है, अकेली है, उन रुपयोकी ब्याजसे उसका गुजारा हो जायगा। पर, उसे तू अपनी गृहस्थीमें मत रखना,—तुझसे मेरा इतना अनुरोध रहा।"

इसके बाद फिर उन्होने बिहारीको बुलवाया, और कहा, "बेटा बिहारी, कल महेन्द्र कह रहा था कि तैंने देशके गरीब भाइयोके इलाजके लिए एक बगीचा लिया है। भगवान तुझे दीर्घजीवी बनाकर गरीबोका हित करे। मेरे ब्याहके समय ससुरजीने मुझे एक गाँव दिया था, वो गाँव मै तुझे दिये जाती हूँ। उसे तू गरीबोके काममे लगाना, उससे मेरे ससुरको पुण्यकी प्राप्ति होगी।"

५४

राजलक्ष्मीकी मृत्युके बाद यथारीति उनका श्राद्ध भी हो गया। एक दिन महेन्द्रने बिहारीसे कहा, "भाई बिहारी, मै डाक्टरी जानता हूँ,—तुमने जो काम शुरू किया है उसमें मुझे भी शामिल कर लो। चुन्नी जिस ढगकी गृहणी हो गई है, वह भी उसमें सहायता कर सकेगी। हम सब वही रहेंगे।"

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, तुम जरा अच्छी तरह् विचारकर देख लो, यह काम क्या तुम्हे हमेशा अच्छे लगेगा? वैराग्यके आवेगमे कोई भी स्थायी भार अपन ऊपर न ले बैठना।"

महेन्द्रने कहा, "बिहारी, तुम भी विचार देखो,—मैंने अपना जीवन जैसा बना डाला है उसे अब आलस्य-पूर्ण ढगसे नही भोगा जा सकता। कर्मके द्वारा उसे अगर आगे न बढाया गया, तो किसी दिन वह मुझे ही खीचकर अवसादके गड्ढेमे डाल देगा। तुम्हें अपने काममें मुझे स्थान देना ही होगा।"

अन्तमे यही बात तय हो गई।

इधर अन्नपूर्णाके काशी जानेके दिन निकट आ रहे थे। अन्नपूर्णा और बिहारी शान्त विषादके साथ पहलेकी बातोकी चर्चा कर रहे थे। इतनेमें विनोदिनी दरवाजेके पास आकर बोली, "चाचीजी, मै भी जरा आकर बैठ सकती हूँ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "हाँ हाँ, आओ बेटी, बैठो।"

विनोदिनीके बैठनेके बाद उससे दो-चार बात करके अन्नपूर्णा बिछौना उठानेके बहाने बरण्डेमे चली गई। विनोदिनीने बिहारीसे कहा, "अब मेरे लिए तुम्हारा क्या आदेश है, बताओ?"

बिहारीने कहा, "भाभी, तुम्ही बताओ, अब तुम क्या करना चाहती हो?"

विनोदिनीने कहा, "सुना है, गरीबोके इलाजके लिए तुमने गङ्गाके किनारे कही बगीचा लिया है,—मै वहाँ तुम्हारा ही कोई काम करना चाहती हूँ। और कुछ न हो तो, रसोई तो बना ही सकती हूँ।"

बिहारीने कहा, "भाभी, मैने बहुत सोच देखा है। नाना घटनाओसे हमारे जीवन-जालमे अनेक उलझने पड गई है। अब एकान्तमे बैठकर उन्हे सुलझानेके दिन आ गये हे। पहलेसे सब बाते हमे स्पष्ट कर लेनी पडेंगी। अब, हृदय जो चाहता है उसे प्रश्रय देनेका साहस नही होता। अब तक जो-कुछ हुआ है, जो-कुछ सहा है, उसके सम्पूर्ण आवर्तनको, सम्पूर्ण आन्दोलनको यदि शान्त न किया गया, तो जीवनकी समाप्तिके लिए प्रस्तुत नही हो सकूँगा। यदि हमारा सम्पूर्ण अतीत-काल अनुकूल होता, तो संसारमे एकमात्र तुम्हारे ही द्वारा मेरा जीवन सम्पूर्ण हो सकता था,—अब तुमसे मुझे वञ्चित होना ही होगा। अब सुखके लिए चेष्टा करना वृथा है, अब तो मुझे धीरे-सुस्ते जीवनके टूटे-फूटे अशोको जोडनेका काम करना होगा।"

इतनेमे अन्नपूर्णा आ गईं। विनोदिनीने उनसे कहा, "मा, तुम्हें अपने चरणोमें मुझे भी स्थान देना पडेगा। पापिन होनेसे तुम मुझे ठुकराना मत।"

अन्नपूर्णाने कहा, "चलो, बेटी, तुम मेरे ही साथ चलो।"

अन्नपूर्णा और विनोदिनीके काशी जानेके दिन, किसी मौकेसे, बिहारी विनोदिनीसे एकान्तमे मिला। उसने कहा, "भाभी, तुम्हारी कोई निशानी मैं अपने पास रखना चाहता हूँ।"

विनोदिनीने कहा, "मेरे पास ऐसी कौनसी चीज है जिसे तुम निशानीके तौरपर अपने पास रख सकते हो?"

बिहारीने लज्जा और सङ्कोचके साथ कहा, "अग्रेजोमे एक प्रथा है, वे अपने प्रियजनोके चिह्न-स्वरूप उनके थोडेसे केश अपने पास रख लेते हैं। यदि तुम–"

विनोदिनी बोल उठी, "छी छी, कैसी घृणाकी बात है। मेरे केशोका तुम क्या करोगे! वह तो मृत वस्तु होगी। ऐसी अपवित्र चीज मेरी ऐसी क्या निशानी होगी जिसे मै तुम्हे दूँ? मै अभागिन हूँ, तुम्हारे पास नही रह सकती। मै ऐसी कोई चीज तुम्हे देना चाहती हूँ जो मेरी तरफसे तुम्हारा काम करेगी। बताओ, तुम लोगे उसे?" बिहारीने कहा, "हाँ, लूँगा।"

सुनते ही विनोदिनीने उसी क्षण अपने आँचलसे दो हजार रुपयेके नोट खोलकर बिहारीके हाथमे दे दिये। बिहारी सुगभीर आवेगके साथ स्थिर दृष्टिसे विनोदिनीके चेहरेकी तरफ देखता रहा। फिर थोडी देर बाद बोला, "मै क्या तुम्हें कुछ भी नही दे सकता?" विनोदिनीने कहा, "तुम्हारी निशानी मेरे पास है। वह मेरे अङ्गका भूषण है, उसे कभी कोई छीन ही नही सकता। मुझे अब और-किसी भी चीजकी जरूरत नही।" इतना कहकर उससे अपनी कोहनीका वह निशान दिखा दिया जो एक दिन बिहारी के धक्केसे सीढीपर गिरकर कट जानेसे बन गया था।

बिहारी आश्चर्यसे देखता रह गया। विनोदिनीने कहा, "तुम्हे नही मालूम, यह तुम्हारे ही तिरस्कार-पूर्ण आघातका चिह्न है,–और यह तुम्हारे ही योग्य है। इसे अब तुम भी वापस नही ले सकते।"

मौसीका उपदेश होते हुए भी आशा विनोदिनीके सम्बन्धमें अपनेको निष्कण्टक न कर सकी। दोनोने मिलकर राजलक्ष्मीकी एकसाथ सेवा की है, पर आशाने जब भी विनोदिनीको देखा है तभी उसके हृदयको चोट पहुँची है, उसके मुँहसे

सहज-स्वभावसे बात नहीं निकली, और हँसनेकी चेष्टाने तो और भी पीड़ा पहुँचाई है। विनोदिनीसे साधारण-सी कोई सेवा ग्रहण करनेमे भी उसका सम्पूर्ण चित्त विमुख होता रहा है। विनोदिनीके हाथका लगा पान बहुधा उसे शिष्टताके नाते ग्रहण करना पडा है, किन्तु आडमे जाकर उसने उसे फेंक दिया है। किन्तु आज जब विदाईका समय आया, मौसीको इस घरसे दूसरी बार जाते देख उसका हृदय जब आँसुओसे आर्द्र हो आया, तब फिर विनोदिनीके प्रति भी उसके मनमें करुणा उमड़ आई। जो हमेशाके लिए चला जा रहा हो उसे क्षमा न कर सके, ऐसे कठोर मन बहुत कम ही होगे। आशा समझती है कि विनोदिनी महेन्द्रसे प्रेम करती है। 'भला महेन्द्रको कौन नही चाहेगा?' महेन्द्रसे प्रेम करना कैसा अनिवार्य है, अ शा इस बातको अपने हृदयके भीतरसे ही जानती है। अपने प्रेमकी उस वेदनाकी अनुभूतिसे ही विनोदिनीपर आज उसे अत्यन्त दया आने लगी। विनोदिनी महेन्द्रको हमेशाके लिए छोड़कर जा रही है, यह एक ऐसा असह्य दु ख है कि आशा बडेसे बडे शत्रुके लिए भी इस दु'खकी कामना नही कर सकती। ये-सब बातें सोचते-सोचते आशाकी आँखोमें आँसू भर आये। किसी समय उसने जो विनोदिनीसे प्यार किया था, उस प्यारने उसके हृदयका स्पर्श करके उसे द्रवित कर दिया। वह धीरे-धीरे विनोदिनीके पास जाकर अत्यन्त करुणाके साथ, स्नेहके साथ, विषादके साथ, मृदु स्वरमें बोली, "बहन, तुम जा रही हो?"

विनोदिनीने आशाकी ठोडी छूकर कहा, "हाँ, बहन, मेरे जानेका समय आ गया है। किसी दिन तुमने मुझसे प्यार किया था,—अब सुखके दिनोंमें उस प्यारका कुछ अंश मेरे लिए भी रखना, बहन! और सब भूल जाना।"

इतनेमें महेन्द्र भी आ गया, और विनोदिनीको प्रणाम करके बोला, "भाभी, मुझे क्षमा करना।" उसकी आँखोंसे आँसूकी दो बूंदें ढलक पड़ीं।

विनोदिनीने कहा, "तुम भी मुझे क्षमा करना, लालाजी, भगवान तुम-दोनोंको चिरसुखी रखें।"

बगला-रचना : सवत् १९५९
हिन्दी-अनुवाद : पौष २००८